वर्ष: 43, अंक: 1-2, जनवरी-अप्रैल 2020 (संयुक्तांक)

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

जयंती स्मरण

जयशंकर प्रसाद

30 जनवरी, 1889

दो बूँद

शरद का सुंदर नीलाकाश
निशा निखरी, था निर्मल हास
बह रही छाया पथ में स्वच्छ
सुधा सरिता लेती उच्छवास
पुलक कर लगी देखने धरा
प्रकृति भी सकी न आँखें मूँद
सुशीतलकारी शशि आया
सुधा की मनो बड़ी सी बूँद!

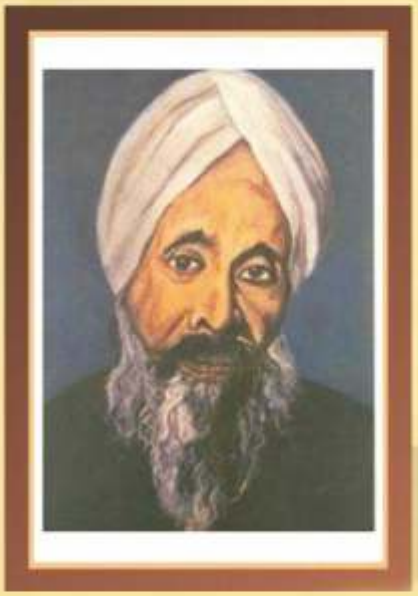

जयंती स्मरण

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

15 अप्रैल, 1865

साहित्य

भाव गगन के लिए परम कमनीय कलाधर।
रस उपवन के लिए कुसुम कुल विपुल मनोहर।
उक्ति अवनि के लिए सलिल सुरसरि का प्यारा।
ज्ञान नयन के लिए ज्योतिमय उज्ज्वल तारा।
है जन मन मोहन के लिए मधुमय मधुऋतु से न कम।
संसार सरोवर के लिए है साहित्य सरोज सम।

जाति जीवनी शक्ति देश दुख जड़ी सजीवन।
जीवन हीन अनेक जीवितों का नवजीवन।
बुधा जन का सर्वस्व अबुधा जन बोधा विधाता।
निर्जीवों का जीव सजीवों का सुख दाता।
है घनीभूत तम-पुंज में लोकोत्तार आलोक वह।
है लौकिक विविधा विधान का सकल अलौकिक ओक वह

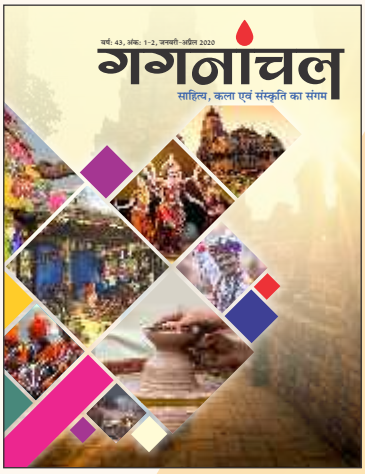

ISSN : 0971-1430

वर्ष: 43, अंक: 1-2, जनवरी-अप्रैल 2020

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : spdawards.iccr@gov.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक :		₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक :		₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक

स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि.

दिल्ली

इस अंक के आकर्षण

कहानी : दूब-धान

लोक संस्कृति में सूरज

वकील न होने की पीड़ा

कृष्ण मनु की लघुकथाएँ

व्यंग्य, जीवन की विद्रूपता से संघर्ष

ओरछा : पग-पग में छिपी हैं कथाएँ

रमेश पोखरियाल 'निशंक' की कविताएँ

सूर्य नमस्कार : समग्र स्वास्थ्य की पद्धति

ऐतिहासिक गाथाओं का साक्षी माउंट आबू

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

गगनांचल

अनुक्रम

वर्ष 43, अंक 1-2, जनवरी-अप्रैल 2020

प्रकाशकीय

4 **भाषा : समदृष्टि का आधार**
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

5 **साहित्य : सामाजिक समुत्थान का सांस्कृतिक माध्यम**
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-विश्व

8 **लोक संस्कृति में सूरज**
डॉ. मृदुला सिन्हा

सांस्कृतिक-विरासत

12 **ओरछा : पग-पग में छिपी हैं कथाएँ**
डॉ. निधि अग्रवाल

कथा-सागर

16 **दूब-धान**
उषाकिरण खान

18 **मांसखोर**
संजय कुमार सिंह

20 **कौन सी डोर**
रामनगीना मौर्य

23 **ठेस**
अश्विनी कुमार आलोक

25 **माँ की अलमारी**
डॉ. शशि गोयल

29 **माँ की वजह से ज़िंदा हूँ**
अर्चना पैन्यूली (डेनमार्क)

32 **सरोज रानियाँ**
वंदना मुकेश शर्मा (इंग्लैंड)

34 **डोली के उस पार**
रामझीतन नारायण करिश्मा देवी (मॉरीशस)

चिंतन-मंथन

62 **मॉरीशस के राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की काव्य यात्रा**
डॉ. कमल किशोर गोयनका

66 **मध्यकालीन कविता में आधी आबादी का पूर्ण साहित्य**
डॉ. हरीश अरोड़ा

69 **महाराष्ट्र में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की चुनौतियाँ**
डॉ. पुरुषोत्तम कुंदे

शोध-संसार

74 **वेदों में पर्यावरण की चिंता और चिंतन**
प्रो. (डॉ.) दिनेश चमोला 'शैलेश'

80 **वंचित वर्ग : गाँधीजी का अंतिम जन**
डॉ. प्रियंका मिश्रा

86 **अवधी लोकगीतों में रामकथा की परंपरा**
डॉ. प्रदीप सिंह

90 **सुषम बेदी के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना**
डॉ. गुरमीत सिंह

रेणु जन्म शताब्दी वर्ष पर विशेष

99 **रेणु की कहानियाँ : शब्द-चित्र और चेतना की त्रिवेणी**
प्रो. विनोद कुमार मिश्र

103 **जाति ही पूछो रेणु की**
भारत यायावर

व्यक्ति-विशेष

114 **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कला उद्धारक राजर्षि शाहू महाराज**
डॉ. वाढेकर रामेश्वर महादेव

सांस्कृतिक-इतिहास

118 **अन्वेषक महानायक राजा भोज और उनकी ज्ञान साधना**
प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा

गगनांचल

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

अनुक्रम

वर्ष 43, अंक 1-2, जनवरी-अप्रैल 2020

यात्रा-वृत्तांत

128 **अद्वितीय श्रीनगर और वहाँ का ट्यूलिप गार्डन**
सीताराम गुप्ता

कला-वैविध्य

137 **वर्तमान में संघर्ष से गुजरता हुआ नटों का गौरवशाली अतीत**
सुरेंद्र अग्निहोत्री

व्यंग्य-वीथिका

140 **वकील न होने की पीड़ा**
गोपाल चतुर्वेदी

ज्ञान-कलश

144 **शिक्षा की संस्कृति का देश—ऑस्ट्रेलिया**
डॉ. मीनाक्षी जोशी

पुस्तक-समीक्षा

147 **सूरज के नौ दीपक-देवेंद्र दीपक**
विनय त्रिपाठी

तकनीकी-साहित्य

150 **पावरप्वाइंट में बनाइये कार्टून और केरीकेचर**
बालेंदु शर्मा 'दधीच'

सिनेमा-संसार

152 **सामाजिक दायित्व के प्रति सचेत हिंदी सिनेमा की ऐतिहासिकता**
डॉ. विजय कुमार मिश्र

साक्षात्कार

157 **व्यंग्य, जीवन की विद्रूपता से संघर्ष : सूर्यबाला**
संतोष विश्नोई

लघुकथा-सरोवर

161 कृष्ण मनु
163 अरुण अर्णव खरे
165 पुष्पेश कुमार पुष्प
166 पवन शर्मा
167 रेनू शर्मा

काव्य-मधुबन

169 डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'
171 डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'
173 डॉ. विवेक गौतम
175 आभा चौधरी
177 हर्षवर्धन आर्य
179 अंजलि हजगैबी बिहारी (मॉरीशस)
180 अरविंद सिंह नेकित सिंह (मॉरीशस)
181 गुलशन सुखलाल (मॉरीशस)

पर्यटन-परिभ्रमण

182 **ऐतिहासिक गाथाओं का साक्षी माउंट आबू**
विभा खरे

योग एवं उपचार

185 **स्वास्थ्य एवं सौंदर्य का रहस्य**
वरुण आर्य

स्वर-संगीत

188 **फिल्मी गानों में हिंदी साहित्यकारों का अवदान**
राजेंद्र बोड़ा

192 **परिषद की गतिविधियाँ**

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

प्रकाशकीय

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

भाषा : समदृष्टि का आधार

प्राचीन काल से ही भारतीय ज्ञान परंपरा ने न केवल विचार और चिंतन की एकता को विकसित करने का कार्य किया बल्कि भाषा के माध्यम से एक समदृष्टि का आधार भी तैयार किया। प्राचीन वैदिक संस्कृत से लेकर आर्यों की भाषा के रूप में संस्कृत के स्वरूप और भारतीय भाषाओं के विकास की निरंतरता को अगर हम ठीक से देखें, तो पाते हैं कि भारत की बहुसंख्य वर्तमान भाषाएँ संस्कृत से ही उद्‌बुद्ध हैं और यहाँ की द्रविड़ भाषाओं पर भी संस्कृत का बहुत अधिक प्रभाव है। वर्णमाला, व्याकरण और शब्दकोश की दृष्टि से भारत में भाषा संबंधी एकरूपता और समानता वर्तमान में भी विद्यमान है। वर्तमान समय से पूर्व जब भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रवेश नहीं हुआ था संस्कृत ऐसी भाषा थी जिसने इस देश के विभिन्न प्रदेशों में घनिष्ठ संबंध स्थापित किया हुआ था। जिसका साहित्य सभी प्रदेशों के विद्वानों द्वारा समान रूप से पढ़ा जाता था। आज हिंदी लगभग उसी स्थान पर खड़ी है जहाँ पहले संस्कृत थी। हिंदी ने आज राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हम सबको एक सूत्र में बाँध रखा है।

'गगनांचल' के नए अंक के साथ मैं आप सबका अभिनंदन करता हूँ। हाल में विश्व में एक ऐसी आपदा आई जिससे भारत भी अछूता नहीं रहा। आप बिल्कुल ठीक समझे मैं बात कर रहा हूँ एक ऐसी महामारी की जिसने पूरे विश्व को अपने बाहुपाश में समेटकर थमने के लिए मजबूर कर दिया। इस संकटपूर्ण स्थिति से उबरने के लिए हम लोग निरंतर संघर्ष कर रहे हैं। परंतु यहाँ पर मैं मुख्य रूप से उस वर्ग के बारे में जरूर चिंता करना चाहता हूँ जो रोज कमाते थे, रोज खाते थे। लगभग सभी वर्ग के लोग इस संकट से संघर्ष कर रहे हैं परंतु मजदूरों, किसानों और रोज कमाने वाले लोगों के लिए स्थिति अत्यंत चुनौतीपूर्ण हो गई।

ऐसी विकट परिस्थिति में आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियाँ भी लगभग रुक सी गई थीं। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि अभी भी भारत जैसे सांस्कृतिक देश में जहाँ रोज कोई न कोई त्यौहार होता है, कोई उत्सव होता है, सब कुछ ठहर सा गया। असामान्य परिस्थितियों के कारण भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की गतिविधियाँ भी स्थगित रहीं।

वैश्विक तथा राष्ट्रीय स्तर पर सांस्कृतिक जागरण, अंतरराष्ट्रीय संबंधों को संस्कृति के माध्यम से मजबूत करना तथा भाषाई कूटनीति के लिए निरंतर प्रयासरत रहना भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद का मूल उद्देश्य है। अपने उद्देश्य के विस्तार और प्रसार के लिए तथा साहित्य, संस्कृति एवं भाषाई चेतना को विश्व स्तर पर पहुँचाने के लिए विगत 42 वर्षों से आईसीसीआर 'गगनांचल' का प्रकाशन करती आई है। देश विदेश का एक बहुत बड़ा लेखक वर्ग पत्रिका के साथ निरंतर जुड़ा हुआ है और अपने रचनात्मक योगदान से इसे समृद्ध भी करता है। विश्व के अनेक देशों में इस पत्रिका के पाठक मौजूद हैं और भारतीय मिशन के माध्यम से पत्रिका उन तक पहुँचती है।

अगस्त महीने में डॉ. आशीष कंधवे ने संपादक के रूप में गगनांचल का दायित्व सँभाला है। मुझे आशा है कि उनके कुशल संपादन में पत्रिका नई ऊँचाइयों को छुएगी।

शुभकामनाएँ।

दिनेश कुमार पटनायक

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

साहित्य : सामाजिक समुत्थान का सांस्कृतिक माध्यम

यह अटल सत्य है कि भारत हर युग में कर्मयोगी मनीषियों से सुशोभित रहा है। इन्हीं मनीषियों ने समस्त कालचक्र को चार युगों में विभक्त किया है। भारतीय सनातन वैज्ञानिकों का ध्यान मुख्य रूप से मनुष्य के जन्म, कर्म और कर्म-साधना पर केंद्रित रहा है। 'राजा हरिश्चंद्र' सतयुग के प्रतीक हैं। जन्म और कर्म की उच्चता के साथ-साथ राजा हरिश्चंद्र का जीवन कर्म-साधना की उच्चता का मापदंड बना। 'श्री राम' त्रेता युग के नायक हैं। रामराज में जन्म और कर्म की न्याय-संगतता में कोई संदेह नहीं है पर कर्म-साधना कहीं न कहीं निर्बल दिखाई पड़ती है। द्वापर के नायक 'श्रीकृष्ण' हैं। इस युग में कर्म का औचित्य तो सुरक्षित रहा पर साधना की मर्यादा में बिखराव बहुत तेजी से हुआ। जन्म के अनुपात में कर्म का महत्व विशेष हो गया और कर्म-साधना भी स्वार्थानुगामी हो गयी। पर आज तो हम सब कलयुग में जी रहे हैं। इस युग में तो स्वार्थ ही सबसे ऊपर हो गया और जन्म, कर्म तथा कर्म-साधना सब गौण हो गए। हम सब स्वार्थवश कहीं न कहीं कलियुग को चरितार्थ करने में भागीदार रहे हैं।

आइये, चर्चा की शुरूआत समकालीन पत्रकारिता के आदर्शों एवं मूल्यों से करते हैं। स्वाधीनता के बाद आधुनिक पत्रकारिता का चहुँमुखी विकास भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह एक महत्वपूर्ण आधार है जिससे हमारी राष्ट्रीयता को अंतरराष्ट्रीय मंच पर नई प्रतिष्ठा मिली है। विज्ञान ने भूगोल को छोटा कर दिया है और हम एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं। नए मूल्यों की नए सन्दर्भों में स्थापना हो रही है। सजातीय-विजातीय विचार से विरत होकर हम उदारता की उस भूमिका की ओर उन्मुख हैं जो शुद्ध मानवीय भूमिका है और जहाँ पहुँचने के लिए सांप्रदायिक कलुष-प्रक्षालन एक अनिवार्य शर्त है। समस्त मानसिक सीमाओं और संकोचों को तोड़कर शुद्ध मानवीय धरातल को पाने की हमारी अभीप्सा आज प्रबल हो गई है। विडंबना यह है कि इस महती अभीप्सा के बावजूद हम भीतर से टूटते-बिखरते और छोटे होते जा रहे हैं। मानव-मूल्यों में विघटन शुरू हो गया है। हमें यह ध्यान रखना है कि नए मूल्यों के आविर्भाव के साथ ही हमारी सनातन उपलब्धियों पर प्रश्नचिह्न न लगे।

स्वाधीनता मिलते ही हमारा संघर्ष ठंडा हो गया और हमारे सामने एक गतिरोध आ गया। हमारे आदर्श बदल गए और राष्ट्र की ओर से उदासीन होकर हम निजी अस्तित्व की चिन्ता में डूब गए। दीर्घ पराधीनता से उबरने के बाद राष्ट्र-निर्माण की आकुल आकांक्षा और कर्मठता की जो अपेक्षा थी वह दिखाई न पड़ी। इस तरह हम आश्वस्त हो गए जैसे हमारा कोई दायित्व राष्ट्र के प्रति शेष न रहा हो। कुछ अपवादों को छोड़कर।

इस नए परिवेश ने भारतीय पत्रकारिता को भी प्रभावित किया और पराधीनता-काल की पत्रकारिता का आदर्श टूट गया, सारी तेजस्विता धूमिल हो गई। इसके लक्षण कुछ पहले ही दिखाई पड़ने लगे थे जिन्हें लक्ष्य कर गणेश शंकर विद्यार्थी ने कहा था—"जिन लोगों ने पत्रकारिता को अपना काम बना रखा है उनमें बहुत कम ऐसे लोग हैं जो अपने चित्त को इस बात पर विचार करने का अवसर देते हों कि हमें सच्चाई की भी लाज रखनी चाहिए, केवल अपनी मक्खन-रोटी के लिए दिन-भर में कई रंग बदलना ठीक नहीं। इस देश में दुर्भाग्य से समाचार-पत्रों और पत्रकारों के लिए यही मार्ग बनता जा रहा है। अब बहुत से समाचार-पत्र सर्वसाधारण के कल्याण के लिए नहीं रहे, सर्वसाधारण उनके प्रयोग की वस्तु बनते जा रहे हैं। इस देश में भी पत्रकारिता का आधार धन हो रहा है। धन से ही वे निकलते हैं, धन ही के आधार पर वे चलते हैं और बड़ी वेदना के साथ कहना पड़ता है कि उनमें काम करने वाले बहुत से पत्रकार भी धन की ही अभ्यर्थना करते हैं।"

स्वतंत्रता दिवस, 15 अगस्त 1947 के 'आज' में छपे एक लेख में पं. बाबूराव विष्णु पराडकर ने सचेत किया था कि स्वतंत्र होने के साथ-साथ हमारे कंधों पर जितना भारी उत्तरदायित्व आ गया है उसे हमें नहीं भूलना चाहिए। हमारी लेश मात्र की असावधानी का परिणाम घातक हो सकता है। हम जरा चूके नहीं कि सर्वनाश हमारे सामने उपस्थित होगा। यदि समाचार-पत्र स्वतंत्रता के आंदोलन को आगे न बढ़ाते तो क्या इतनी जल्दी शासन की बागडोर इन नेताओं के हाथ आती और इनकी कथनी और करनी की यह आलोचना करनी पड़ती? यह राष्ट्र के लिए एक कठिन परिस्थिति है। राजनीति के क्षेत्र में जिस प्रकार देश-सेवकों ने अपने त्याग और कष्ट सहन का भुगतान पदों और सत्ता-केन्द्रों के क्षेत्र में कर लिया, वही बात पत्रकारिता के क्षेत्र में हुई। सरकारी विज्ञापनों की गाढ़ी कमाई, विधानसभाओं और संसद की सीटों, विदेश-यात्रा की चकाचौंध और ढेर सारे सरकारी सम्मानों को लेने की होड़ ने पत्रकारिता के सम्पूर्ण जगत पर ऐसा कुप्रभाव डाला कि लोकतंत्र का चौथा खंभा जनता-जनार्दन के सामने हिल रहा है।

किसी भी समाज में अमूमन आम आदमी की क्या भूमिका और सोच होती है? क्या आम आदमी के पास कोई परिपक्व अथवा स्थाई विचार नहीं होता या हम यह भी कह सकते हैं कि अमूमन आम आदमी विचार शून्यता में जीता है। ऐसा मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जिसके पास विचार होता है क्या वह आम आदमी नहीं होता है? यह अलग बात है कि उसके पक्ष या विपक्ष में कितने लोग या समाज का कौन सा वर्ग खड़ा है।

आम आदमी एक पारंपरिक ढांचे में ही जीवन जीना पसंद करता है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह बदलाव या परिवर्तन नहीं चाहता। यहाँ एक बात बहुत उल्लेखनीय है कि सबसे धैर्यवान भी समाज में आम आदमी ही होता है। जब तक उसके धैर्य की परीक्षा न ले ली जाए आम आदमी प्रतिक्रिया नहीं करता। विषय चाहे भूख हो, भ्रष्टाचार हो, सत्ता हो, संविधान हो, न्याय हो, बलिदान हो, शिक्षा हो, संवाद हो, भाषा हो, साहित्य हो, धर्म हो वह कोशिश करता है अपने आपको विवादों से दूर रखने की।

फिर भी, आम आदमी का इस प्रकार से साधारणीकरण नहीं किया जा सकता। मैं ये जानता हूँ और यह मानता भी हूँ कि एक ही तराजू पर सबको तोल देना भी ठीक नहीं है। मैं ये सभी बातें राजनीतिक परिदृश्य से नहीं बल्कि साहित्यिक परिदृश्य को ध्यान में रख कर रहा हूँ। इसलिए मेरे विचार से साहित्य, भाषा और पत्रकारिता को लेकर अभी भी आम आदमी के एक बड़े वर्ग में विचार-शून्यता बनी हुई है। भाषा, साहित्य, संस्कृति और पत्रकारिता को लेकर अभी तक राष्ट्रीय/राजकीय/जिला स्तर पर कोई ऐसा नेतृत्व नहीं दिखाई पड़ता जो किसी भी राष्ट्र के इन प्राणतत्वों की रक्षा के लिए आम आदमी के मन में आंदोलन पैदा कर पाने में सक्षम हो।

चूँकि 'साहित्य सामाजिक समुत्थान का सांस्कृतिक माध्यम है' और निश्चित रूप से इस माध्यम को बल पत्रकारिता से प्राप्त होता है इसलिए यहाँ पर मैं थोड़ी सी चर्चा साहित्यिक पत्रकारिता पर भी करना चाहूँगा। सिर्फ अच्छे लेख, कहानी, कविता आदि के चयन, संकलन या संपादन को कदापि साहित्यिक पत्रकारिता नहीं कहा जा सकता है और न ही साहित्य को आनंदसिद्धि के मंगलमार्ग का सिर्फ माध्यम माना जा सकता है। साहित्यिक पत्रकारिता को अपने राष्ट्र, निज भाषा और निज संस्कृति का हिताकांक्षी होना चाहिए, शुभ का संधान करने वाला होना चाहिए, मनुष्यता का बीजारोपण उसकी प्राथमिकता होनी चाहिए, समाज को दिशा देना उसका मूल एजेंडा होना चाहिए न कि वह आम आदिमवृत्तियों का गुलाम होकर एक खूँटे से बँध जाए।

खूँटा परतंत्रता का प्रतीक है, गुलामी का हामी है परन्तु आज की पत्रकारिता केवल साहित्यिक हो या व्यावसायिक अपने आपको एक खूँटे से बाँधना आन-बान और शान समझने लगी है। निश्चित रूप से ऐसे किसी भी व्यक्ति या संस्था से निष्पक्ष पत्रकारिता की उम्मीद करना गलत होगा जो किसी एक खूँटे से या गुट से बँधा हो, या फिर किसी एक वाद के प्रभाव में हो। वह अपना खूँटा मजबूत करने की चेष्टा में औरों के खूँटों को उखाड़ने-हिलाने में ही अपनी सारी ऊर्जा खर्च कर देता है। ऐसी परिस्थिति में स्वस्थ और समाज उपयोगी पत्रकारिता के भविष्य पर अनेक प्रश्नचिह्न हैं।

ऐसे में समाज वैसे लोगों के पीछे ही चलता दिखाई पड़ता है जो काट और बदले के तेवर से युक्त तात्कालिक तौर पर सफल दिखाई देते हैं। यही आम प्रवृत्ति है जिसे आम आदमी बहुत आसानी से ग्रहण कर लेता है। इसलिए समाज की प्रवृत्ति और प्रभाव को बदलने के लिए 'समाज में व्याप्त समाज' को प्राप्त करने और उसके शिवत्व को सार्थक करने के लिए उसे निष्पक्षता के बाँध में बाँधना पड़ता है। बाँध बाँधने के लिए कड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है। अधोगामी वृत्तियों को उर्ध्वगामी संस्कृति में बदलने के लिए जीवन को संस्कारित करना पड़ता है। व्यक्तिपरक वृत्तियों को त्यागना पड़ता है और चित्त की विकृतियों को सुसंस्कृत करना

पड़ता है तब जाकर एक स्वस्थ समाज की नींव पड़ती है। शायद यही साहित्यिक पत्रकारिता का मूल भाव भी होना चाहिए। समाज में पत्रकारिता यानी खबरों का समुचित समाकलन, पत्रकारिता यानी विचारों का संतुलित विवेचन, पत्रकारिता यानी विरोधों से सामंजस्य। कहने का तात्पर्य यह है कि समाकलन, समेकन और सामंजस्य के उचित अनुपात में जब किसी विषय को तोल-मोल कर परोसा जाता है तो नि:संदेह उसमें नयापन, न्याय, संवेदनशीलता और सामाजिक निर्माण के पुट दिखाई पड़ते हैं। पत्रकारिता के इस आयाम को छूने के लिए यह आवश्यक है कि हम और आप अपनी सम्पूर्ण निष्ठा, सामर्थ्य, लगन और पारदर्शिता के साथ अपने कार्य को संपन्न करें।

आज अराजकता तो है पर स्थिति ऐसी नहीं है कि इसे संभाला न जा सके। लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ की गरिमा से आभूषित पत्रकारिता आज अपने मूल उद्देश्य से भटक कर बाजारवादी प्रवृत्तियों के मकड़जाल में बुरी तरह से जरूर उलझ गयी है, लेकिन इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि आगे के सभी रास्ते बंद हो गए। संपादक से एडिटर और पत्रकारिता से मीडिया के बीच की दूरी को हमें खत्म करना पड़ेगा। खत्म न कर पाए तो कम से कम समझना तो पड़ेगा ही कि आज के संदर्भ में मीडिया और एडिटर की क्या भूमिका है? खबरों को सिर्फ सनसनीखेज बनाना ही पत्रकारिता नहीं है।

मेरे संपादन में छपने वाला 'गगनांचल' का यह प्रथम अंक है। मुझसे पूर्व के संपादकों ने अपने व्यापक दृष्टिकोण से गगनांचल को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने में महती भूमिका निभाई है। मेरा सौभाग्य है कि मैं पिछले तीन वर्षों तक सह-संपादक के रूप में पत्रिका को अपना योगदान देता रहा।

मेरे सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। प्रभाव की चुनौतियाँ हैं, दबाव की चुनौतियाँ हैं, संकल्प की चुनौतियाँ हैं, समर्पण की चुनौतियाँ हैं, सामर्थ्य की चुनौतियाँ हैं और उसके साथ-साथ संपादन की चुनौतियाँ हैं। अर्थात दबाव को भी सहना है और पत्रकारिता के मूल्यों को ध्यान में रखकर निष्पक्ष निर्णय भी करना है। मेरी कोशिश होगी कि पत्रिका में छपने वाली रचनाओं की गुणवत्ता के साथ किसी भी तरह का समझौता न किया जाए। कृति को प्रतिष्ठित करने के लिए मैं कृत संकल्पित हूँ न कि कृतिकार को। कहना जितना आसान है, उतना ही कठिन है कंटकों से भरे इस मार्ग पर चलना। रचनाओं की संख्या के अनुपात में पृष्ठों की संख्या बहुत कम है इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि जितनी रचनाएँ हमें प्राप्त होती हैं उन सबका प्रकाशन संभव हो सके। यही वह पड़ाव होता है जहाँ से चुनौतियों का आरंभ होता है अर्थात हजारों रचनाओं के बीच में से कुछ रचनाओं का चयन करके प्रकाशन के लिए अंतिम रूप से निर्णय लेना। एक विशेष प्रकार का दबाव भी आजकल देखने को मिल रहा है जिसकी चर्चा मैं यहाँ करना चाहता हूँ, वह है शोध आलेखों के प्रकाशन का। चूँकि पत्रिका यूजीसी केयर लिस्ट में है इसलिए शोध आलेखों के प्रकाशन का भी दायित्व हमारे ऊपर है। इसमें शोधार्थियों के साथ-साथ वरिष्ठ आचार्य भी सम्मिलित हैं। हमारा यह प्रयास है कि यथायोग्य शोध आलेखों को पत्रिका में स्थान मिले।

मित्रो, मैं सकारात्मक प्रवृत्तियों के साथ जीने का अभ्यस्त हूँ इसलिए आशान्वित हूँ कि मुझे रचनाकारों के साथ-साथ पाठकों का भी सकारात्मक सहयोग एवं मार्गदर्शन प्राप्त होता रहेगा।

'गगनांचल' के अपने प्रथम संपादकीय में मैं उन लोगों का आभार प्रकट करना भूल नहीं सकता जिनके मार्गदर्शन और सकारात्मक प्रभाव के कारण ही आज मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ। सर्वप्रथम माँ की पावन स्मृतियों को नमन। पिता का आशीर्वाद कठिन से कठिन मार्ग को भी प्रशस्त कर देता है। सभी आत्मीय स्वजनों, मित्रो का हृदय से आभार।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्रबुद्धे और सभी वरिष्ठ व्यक्तित्वों का विशेषकर परिषद के महानिदेशक श्री दिनेश कुमार पटनायक का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. आशीष कंधवे
मोबाइल : +91-9811184393
ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

लोक संस्कृति में सूरज

— डॉ. मृदुला सिन्हा

वेद में सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है। समस्त चराचर जगत की आत्मा सूर्य ही है। सूर्य से ही इस पृथ्वी पर जीवन है, यह आज एक सर्वमान्य सत्य है। वैदिक काल में आर्य सूर्य को ही सारे जगत का कर्ता-धर्ता मानते थे। सूर्य का शब्दार्थ है सर्वप्रेरक। यह सर्वप्रकाशक, सर्वप्रवर्तक होने से सर्वकल्याणकारी है। वैदिक साहित्य में ही नहीं आयुर्वेद, ज्योतिष, हस्तरेखा शास्त्रों में भी सूर्य का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। लोकरीति और इन अवसरों पर गाए जाने वाले गीत वेदों के मंत्र के अनुवाद ही लगते हैं। इन गीतों के माध्यम से ही सूर्य के प्रति लोक द्वारा कृतज्ञता जताई जाती है।

इतना तो सबको ज्ञान है कि जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, वह सौरमंडल का एक बड़ा हिस्सा है। सारे ग्रह-नक्षत्र सूर्य की ही परिक्रमा करते हैं। दिन-रात सुहाने मौसम, अन्न, फल-फूल और जल ही नहीं, सारा जीवन सूर्य के कारण है। सूर्य है तो जीवन है। चाँद-तारे आसमान में चमकते हैं तो सूर्य के कारण। हम कृष्णपक्ष-शुक्लपक्ष का आनंद लेते हैं, इसमें सूर्य की भूमिका है। हमारे समाज में ज्ञान और व्यवहार के लिए एक शास्त्रीय पक्ष है और दूसरा लोकपक्ष। शास्त्रों ने जीवन जीने के कुछ सूत्र दिए। उन सूत्रों में सूर्य, पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र के महत्व तो हैं ही, जीवन को सुखमय बनाने में जिन नीति मार्गों का निर्माण है, उनमें भी सूर्य की मुख्य भूमिका है। उन सूत्रों पर चलते हुए शास्त्रपक्ष के विज्ञान से सूर्य को निकालकर लोकपक्ष में डाल दिया गया और सूर्य लोकजीवन में महत्वपूर्ण हो गए। लोकजीवन के करीब आकर सूर्य उसके आत्मीय हो गए। सहचर।

बाल्मिकी रामायण में राम-रावण युद्ध-क्षेत्र में राम द्वारा रावण के मारने में अपनी सारी शक्ति और कौशल, देवी-देवताओं के भरपूर सहयोग के बावजूद भी जब रावण नहीं मरता, तब अगस्त ऋषि राम को आदित्यहृदयस्त्रोत का पाठ करने का सुझाव देते हैं। वे राम से कहते हैं—''तुम सूर्य का रश्मिमते नमः, समुधते नमः, देवासुरनमस्कृताय नमः, विस्वस्ते नमः, भाष्कराय नमः, भुवनेश्वराय नमः, इन नाम-मंत्रों द्वारा पूजा करो।'' राम आदित्यहृदयस्त्रोत का पाठ करते हैं। सूर्य की सभी शक्तियों को स्मरण करते हुए सूर्यवंशी राम शक्तिपुंज हो जाते हैं। सूर्य की सारी शक्तियों को बाणों में उड़ेल कर चलाते हैं। रावण युद्धभूमि में धराशायी होता है।

आदित्यहृदयस्त्रोत के अनुसार विश्व में कुछ भी दृश्य और अदृश्य शक्ति नहीं है जिसमें सूर्य नहीं है।

लोकजीवन जीने के सूत्रों और व्यवहार को जानने-समझने के लिए, उसके ताने-बाने के रूप में रीति-रिवाज, लोककथाएँ, लोकगीत, संस्कार-गीत जैसे परंपराओं में जाना पड़ता है। और लोकजीवन के इन तत्वों में सूर्य बहुत बड़ी भूमिका में आता है। भारतीय जीवन की

दैनंदिनी में सूर्य की प्रमुख भूमिका है ही। सर्वप्रथम तो एक यही देवता हैं, जो साक्षात हैं, जिसे हम देखते हैं। हमारे लिए देवी-देवता भी वही हैं, जिनसे हमें कुछ मिलता है। जहाँ तक देवी-देवताओं से मिलने का सवाल है, सूर्य एकमेव देव हैं, जिनका दिया सब कुछ दिखता है।

लोक साहित्य की वाचिक परंपरा रही है, उसमें सूर्य सबसे बड़ा बनकर आता है। भोजपुरी के एक लोककाव्य के अनुसार एक चिड़िया दलहन का एक दाना लेकर आती है। चक्की में डालती है। उसका एक दाल बाहर आता है, दूसरा अंदर ही रह जाता है। चिड़िया बहुत परेशान है। एक दाल कैसे निकाले ? वह बढ़ई से कहती है-

बढ़ई, बढ़ई खूँटा चीड़ो, खूँटा में दाल बा,
का खाऊँ, का पीऊँ
काले परदेश गेल, आज मोरा उपवास

बच्चों को सुनाई जाने वाली इस लोरी में बढ़ई, राजा, रानी, साँप, लाठी, अग्नि और समुद्र से भी बढ़कर सूरज को बताया गया है। सब हार मान जाते हैं। अंततः चिड़िया की सहायता सूरज ही करता है। वही सर्वोपरि है।

वेद में सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है। समस्त चराचर जगत की आत्मा सूर्य ही है। सूर्य से ही इस पृथ्वी पर जीवन है, यह आज एक सर्वमान्य सत्य है। वैदिक काल में आर्य सूर्य को ही सारे जगत का कर्ता-धर्ता मानते थे। सूर्य का शब्दार्थ है सर्वप्रेरक। यह सर्वप्रकाशक, सर्वप्रवर्तक होने से सर्वकल्याणकारी है। वैदिक साहित्य में ही नहीं आयुर्वेद, ज्योतिष, हस्तरेखा शास्त्रों में सूर्य का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। वेदों के मंत्र के अनुवाद ही लगते हैं लोकरीति और इन अवसरों पर गाए जाने वाले गीत। इन गीतों के माध्यम से ही सूर्य के प्रति लोक द्वारा कृतज्ञता जताई जाती है।

बेटी विवाह के एक गीत की पंक्तियाँ हैं-

राम-''देवउ रे हजमा, कान दूनू सोनमा
मोहि आगू सीता बखानू हे।''
नाई-''हम कइसे सीता बखानू दुल्हा रामचन्द्र
सीता सूरजवा के जोत हे,
सीता के जोत हे चन्द्र छपित भेल
भूली जायत श्रीराम हे।''

गीत का समय जनकपुरी के मुख्य द्वार पर बरात के स्वागत का है। नाई सिर पर कलश लिए खड़ा है। दूल्हा राम के मन में सीता के रूप के बारे में उत्सुकता होती है। वे नाई से कहते हैं कि मैं तुम्हें दोनों कानों में सोना दूँगा, तुम सीता का बखान करो। उपरोक्त पंक्तियों में नाई कहता है कि वह सीता का बखान नहीं कर सकता। वे तो सूरज की किरणें हैं। जिस प्रकार सूरज के ज्योत में चंद्रमा भी छुप जाता है, वैसे ही श्रीराम 'आप भी' सीता की ज्योति में छुप जाएँगे।

विवाह गीतों में भी खगोल शास्त्र का ज्ञान गाया और समझा जाता रहा है। ज्योतिष शास्त्र में सूर्य का बड़ा महत्व है। इसलिए सोलहों संस्कारों के लिए तिथि और समय उचारते हुए सूरज की सही स्थिति के समय के अनुसार निर्धारित समय को ही देखा जाता है। लड़की के विवाह में पेड़-पौधे, नदी, पहाड़ की भी पूजा होती है। लोकजीवन में एक मात्र देव जो नियत समय पर आता और जाता है। जिसके कारण नियत समय पर मौसम में परिवर्तन आता है। इसलिए लोकजीवन में बिछावन छोड़कर उठते ही पृथ्वी और सूर्य को प्रणाम करने का संस्कार रहा है। यह सच है कि सूर्य की किरणों से कई बीमारियों का अंत हो जाता है। विशेषकर चर्म रोग, जिसमें कुष्ठ रोग भी आता है, सूर्य की रोशनी से खत्म होता है। इसलिए सूर्य की पूजा करते हुए विभिन्न प्रकार के व्रत रखे जाते हैं। लोकमन में सूरज के महत्व को बैठाने के लिए विभिन्न गीतों में इस आशय को पिरोया गया है। बच्चे का जन्म का अवसर एक संस्कार है। उस पूजा विधि में जन्मजात शिशु को माँ की गोद में निहारती हुई सास पूछती है -

''बहू जी कौन-कौन व्रत कइली बालक बड़ा सुन्दर।''

बहू का जबाब है-

''कार्तिक मास गंगा नहइली, सूरज गोर लागली,
सासु व्रत कइली इतवार, बालक बड़ा सुन्दर।''

गर्भवती औरत के लिए सूर्य की रोशनी का विशेष महत्व होता है। इसलिए हमारी लोक संस्कृति में कार्तिक मास में प्रात:काल उठकर स्नान करना, उगते सूर्य को प्रणाम करना प्रचारित-प्रसारित और व्यवहृत रहा है। इतवार का व्रत अर्थात इतवार (रविवार) को नमक नहीं खाना। आज कई गर्भवती महिलाओं को चिकित्सक नमक कम खाने का सुझाव देते हैं। सूर्य के महत्व को हमारे शास्त्रवेत्ताओं ने अच्छी तरह समझा था। या यों कहें कि उसी के अनुरूप जीवन जीने की रूपरेखा बनाई थी। इसलिए लोकव्यवहार और लोकगीतों में सूरज के महत्व को बार-बार स्मरण कराकर लोक द्वारा कृतज्ञता व्यक्त करवाई जाती रही है। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में मनाया जाने वाला सूर्य पूजा छठ व्रत अब बिहारियों के साथ देश के कोने-कोने से लेकर विदेश में भी पहुँच गया है। इन दिनों भारत को विश्वगुरू बनाने के लिए चहुँओर से प्रयास हो रहा है। विश्वगुरू एक भाव है। विश्व के द्वारा अपनी पुरातन मानवहित मान्यताओं को स्वीकार करवाना। गुरू जीवन जीने का संबल देता है। मानवता के हित की बात करता है। भारत यदि पुन: विश्व गुरू बनने के कगार पर है तो इसका मतलब है कि हमारे योग, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, ज्योतिष के पुरातन नियमों को विश्व स्वीकार करेगा। ''हम पूरब हैं, पूरब वाले, हर जान की कीमत जानते हैं।'' 'आत्मवत सर्वभूतेषु'। सूरज ही समदर्शी है। सेवाभावी है।

ग्रह-नक्षत्र की स्थितियों के अनुसार ही व्रत-त्योहारों की तिथियाँ निश्चित की गई हैं। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष के षष्ठी तिथि को सूर्य को अर्घ्य दिया जाता है। अर्घ्य देने का विधान, पानी में खड़े होकर ही प्रथम डूबते सूर्य को अर्घ्य देना, अर्थात उसके पुनरागमन की आशा है। सूरज जाता नहीं है। पश्चिम में डूबता है। पुन: नए जोश, नई ऊर्जा के साथ पूरब में प्रगट होता है। और हम पूरब हैं, इसलिए वह हमारे साथ ज्यादा समय बिताता है। हमें जीवन जीने की विशेष ऊर्जा देता है।

छठ के गीतों में सूर्य की महिमा का बखान है। सूर्य का मानवीकरण है। सूर्य के साथ व्रती महिलाओं के वार्तालाप हैं। सूर्य की किरणों से समाप्त होने वाली विभिन्न बीमारियों का वर्णन है। सूर्य जीवनदाता है। जीवनहर्ता भी। अंत में सूर्य के प्रति कृतज्ञता प्रगट की जाती है।

''अन्न, धन लक्ष्मी हे दीनानाथ, अंहई के देल।''

सूर्य दीनानाथ हैं। दीनों का नाथ। छठ व्रत पर गाए जाने वाले एक गीत में व्रती महिला के तप से प्रभावित होकर सूर्यदेव उससे कहते हैं-

''माँगू, माँगू तिरिया, जेहो किछु माँगव, जे किछु हृदय में समाय''

व्रती महिला प्रसन्न हो जाती है और परिवार की जीविका का आधार कृषि को चलाने के लिए दो बैल माँगती है। हल को चलाने के लिए हलवाहा। सेवा के लिए सेवक-सेविकाएँ माँगती है। और दूध पीने के लिए धेनु गाय। सभा में बैठने योग्य बेटा और घर चलाने के लिए सुगृहिणी बहु माँगती है। रूनकी-झुनकी बेटी और पढ़ा-लिखा दामाद माँगती है। उसका माँग पत्र सुनकर सूर्य जिनका लोकमन ने मानवीकरण किया है, आश्चर्यचकित हो जाते हैं। वे कहते हैं -

''ऐहो जे तिरिया, सभे गुण आगर
सब कुछ माँगे समतुल हे

अर्थात व्रती महिला सब गुणों की भंडार है। एक परिवार चलाने के लिए प्राथमिक जरूरतों की संतुलित माँग करती है। उसके विधाता सूर्यदेव, उसे सब कुछ देते हैं। इस गीत से एक बात निकलती है कि महिला जिसे हम प्रताड़ित और शोषित समझने की भूल करते हैं, और है भी, उसे सूर्यदेव द्वारा 'सब गुण आगर' होने का प्रमाणपत्र मिला है। यह भी कि बेटा, बेटी, बैल, सेवक-सेविका, गाय एक परिवार चलाने के लिए जो प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं वे सब सूर्य ही देते हैं।

छठ व्रत के गीतों के माध्यम से लोकमन में यह बात भी प्रस्थापित की जाती है कि कुष्ठ रोग, आँखों की बीमारी, चर्मरोग सूर्य की रोशनी से ठीक हो जाते हैं।

व्रती से वार्तालाप में व्रती का यह मनोभाव है कि उस दिन सूर्य देर से उगे हैं। वह शिकायत करती है-

सूर्य कहते हैं-

''बाँट भेटिये गेल गे अवला, कोढ़िया एक
काया देअइते गे अवला, लागल अति देर।''

इस प्रकार से रास्ते में दृष्टिहीन, एक पैरविहीन और संतानहीन महिला, कुष्ठ रोग पीड़िता के मिलने और उन्हें जरूरत के अनुसार आँख, पाँव, काया और संतान देने में सूर्य को देर लग जाती है।

छठ पर्व के एक गीत में सूर्य से पूछा जाता है कि आप रात कहाँ बिताएँगे, क्योंकि सुबह भी उन्हें दूसरी बार अर्घ्य दिया जाता है। व्रती महिला द्वारा जब पूछा जाता है-''साँझ भइले सूरज, रहब रउरा कहमाँ।'' सूरज कहते हैं-''गाय के गोबर से लिपन भइले जहमाँ, गाय के घीव से हवन भेल उहमाँ, गाय के दूध स्नान भेल उहमाँ, पीअर धोती पेन्हन भेल उहमाँ।

सूरज के ठहरने की ये सारी स्थितियाँ लोकजीवन के लिए भी स्वास्थ्यवर्द्धक हैं। लोकजीवन के सूरज ज्ञान देते हैं। जीवन जीने की कला बताते हैं। शास्त्रों के ज्ञाता सूर्य की चाल, सूर्य का रथ, सूर्य का अन्य ग्रहों के साथ संबंध का ज्योतिष, हस्तरेखा में सूर्य, अंकशास्त्र में सूर्य तथा सूर्य ग्रह संबंधी अन्य विवरण प्रस्तुत किया जाता है। सारा वैज्ञानिक अध्ययन है। लोकजीवन का अपना विज्ञान होता है और उस विज्ञान के अनुसार सूरज मानव बनकर बातचीत भी करता है। लोक के निकटतम ग्रह है-सूरज। उसके सामने खड़े होने से हमारी पाँचों ज्ञानेंद्रियाएँ सक्रिय हो जाती हैं। हम सूरज को देखते हैं, सुनते हैं, स्पर्श करते हैं। सूर्य की भिन्न-भिन्न तासिर होती है। धूप का भिन्न-भिन्न प्रकार का स्वाद होता है। सूर्य की तीव्रतम रोशनी में लोकमन प्रताड़ित होता है। माघ के गुलाबी धूप को लोग अपने शरीर के हर अंग में सहेज लेना चाहते हैं। लोकजीवन में कहा जाता है कि धूप हमें आलसी बनाती है। तात्पर्य कि सर्दियों में एकबार धूप में बैठ जाओ तो उठने का मन नहीं करता। लोक से दूर होकर भी सूरज कितना नजदीक है। लोक का संस्कार निकटता का ही है। खेतों में फसल लहलहाती है। किसान कृतज्ञता प्रगट करता है।

एक गीत के अनुसार भारत माँ पूछती हैं-

''कौन करेगा मेरा आँगन
हरा भरा खुशहाल
कैसे सुलझाओगे बोलो मेरा एक सवाल''

किसान-

''मैं खेतों में अन्न उगाकर कर दूँगा खुशहाल
माँ मैं हल से हल कर दूँगा तेरा एक सवाल''

सूरज के रोशनी से सागर तपता है, बादल बनता है, बारिश होती है, खेत सिंचित होते हैं, तभी तो अन्न उगते हैं, तभी तो किसान भारत माँ को आश्वस्त कराता है। लेकिन जेठ माह में सूरज के तपने और बारिश नहीं होने पर खेत में हल नहीं चल सकता। दु:खी होकर महिलाएँ गाती हैं-

हाली हुली बरसू हे इंद्र देवता
पानी बिनु परल अकाले हो राम
हरवो न लगई छई, कोदरियो न पड़ई छई,
हेंगवा उचटी आरी लागे हो राम।

इंद्र देवता पर भी सूरज की कृपा होनी चाहिए। सूरज ही सर्वशक्तिमान है। लोकमन ने अपने अंदाज में इस परम शक्ति का बखान किया और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सँजोया है।

वरिष्ठ साहित्यकार एवं पूर्व राज्यपाल।
पी.टी. 62/20, डी.डी. ब्लॉक, कालका जी, नई दिल्ली-110019

ओरछा

पग-पग में छिपी हैं कथाएँ!

— डॉ. निधि अग्रवाल

बताते हैं कि ओरछा के राजा मधुकरशाह कृष्ण के उपासक थे, जबकि उनकी पत्नी रानी गणेश कुँवारी भगवान राम की अनन्य भक्त थी। एक बार रानी द्वारा वृंदावन जाने से इनकार करने पर राजा ने उलाहना देते हुए कहा कि तुम राम को ओरछा ही क्यों नहीं ले आती। रानी ने तुरंत अयोध्या जाने का मन बना लिया। रानी को अपने भगवान पर विश्वास था, इसी कारण जाने से पूर्व उन्होंने भगवान राम के लिए एक भव्य मंदिर के निर्माण का आदेश दिया और गर्भगृह की स्थापना इस प्रकार रखने के लिए कहा कि वह अपने महल के झरोखे से जब चाहे प्रभु के दर्शन कर पाए।

सर्वव्यापक श्री राम के दो निवास हैं खास
दिवस ओरछा रहत हैं शयन अयोध्या वास

प्रभु तो भविष्यद्रष्टा हैं ही, अवश्य ही उन्हें विदित रहा होगा कि कालांतर में उनके जन्मस्थल के होने, न होने का निर्णय कोर्ट के अधीन होगा, तब निश्चित ही वैकल्पिक निवास अनिवार्य होगा। शायद इसी प्रयोजन हेतु रची गई उनकी लीला ने आज ओरछा को वैश्विक पर्यटन के नक्शे पर ला खड़ा किया है।

वीरांगना लक्ष्मीबाई की रियासत झाँसी से मात्र 18 किलोमीटर की दूरी पर स्थित 50 से भी अधिक स्मारकों से संपन्न प्रभु राम, वीर छत्रसाल और कवि केशव की ओरछा नगरी अध्यात्म, इतिहास और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, लेकिन मुझसे पूछिए तो मुझे तो यह जगह नानी-दादी की कहानियों से भरी किसी रहस्यमयी पिटारी सरीखी लगती है। झाँसी-ओरछा मार्ग पर पंक्तिबद्ध वृक्षों तथा बेतवा नदी के आकर्षण के कारण, विगत दस वर्षों में की गई अनेकानेक ओरछा यात्राओं के दौरान यहाँ के खंडहरों से सुनी जो कुछ कहानियाँ मेरे दिल को छूकर स्मृतियों में स्थायी बसेरा पा गईं, उन्हें आप भी अवश्य पढ़िए—

बुंदेला तथा ओरछा नाम की उत्पत्ति

कहते हैं कि वीरभद्र के पुत्र हेमकर्ण को जब उनके भाइयों ने राजगद्दी से उतार दिया, तब वह विंध्यवासिनी देवी के दर्शन के लिए गए और लंबी अवधि की पूजा के बाद स्वयं का सिर देवी को अर्पित करने लगे, लेकिन देवी ने प्रकट होकर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। तब तक रक्त की एक बूँद निकल चुकी थी, जहाँ से बुंदेला शब्द की उत्पत्ति हुई।

इसके विपरीत कुछ लोग मानते हैं कि बुंदेला विंधेला का अपभ्रंश है। पर इस पर सब एकमत हैं कि सन् 1048 में हेमकर्ण ने पंचम विंध्येला की उपाधि अर्जित की और अपना अलग राज्य स्थापित किया। पूर्व में माहोवी तथा कुंडार राजधानी रहे तथा बाद में ओरछा, तदुपरांत टीकमगढ़ बुंदेलों की राजधानी बनी।

कहा जाता है कि रुद्रप्रताप आखेट की तलाश में घूमते हुए ओरछा पहुँचे और जल की तलाश में बेतवा नदी पर आए। महर्षि तुंग के अनुरोध पर उन्होंने इस स्थान पर विराट दुर्ग की नींव डाली। जब वह नगर के नाम की चर्चा करने पुनः ऋषि के पास गए, तब चलते हुए अचानक ठोकर लग जाने से ऋषि के मुँह से निकला 'ओच्छा'। कालांतर में यही 'ओरछा' में परिवर्तित हो गया। सन् 1531 में राजा रुद्र प्रताप ने ओरछा किले का शिलान्यास किया। उनकी मृत्यु के पश्चात् सन् 1539 में भारती चंद ने ओरछा को राजधानी बनाया।

एक अन्य किंवदंती के अनुसार जब रुद्रप्रताप जंगल में गए, तब वहाँ एक सिंह गाय पर आक्रमण करने वाला था। तभी साथ आए शिकारी श्वानों को 'ऊरछा' (उछलों) कह आक्रमण का आदेश देने पर श्वानों ने शेर को मार दिया। राजा ने महसूस किया कि यह इस भूमि का ही प्रताप है कि एक गाय की रक्षा हेतु श्वानों ने भी शेर को हरा दिया। इसी से प्रभावित हो राजा ने यहाँ किला बनवाने का निश्चय किया।

ओरछा की पावन भूमि के इसी सम्मोहन को केशव दास ने इन शब्दों में बाँधा है-

ओरछा के आसपास तीस कोस केशवदास
तुंगारण्य नाम बन बैरी को अजीत है
विंध कैसो बन्धु वर वारन वलित बाघ
बानर, बराह बहु भिल्लन अभीत है
जम की जमाति किधौ जामवंत कैसो दल
महिष सुखद स्वच्छ रिच्छन कौ मीत है
अचल अनलवंत सिंधु सुरसरि युत
शंभु कैसो जटा जूट परम पुनीत है।

अर्थात् केशवदास का कहना है कि ओरछा के आसपास 30 कोस तक तुंगारण्य नाम का जो वन है, उसे कोई शत्रु नहीं जीत सकता। यह जंगल विंध्य वन का भाई जैसा प्रतीत होता है। यहाँ हाथी, बाघ, बंदर और सूअर रहते हैं। यह जंगल भीलों के लिए भी निडर स्थान है।

राजा राम मंदिर

एक बड़े द्वार से ओरछा नगरी में दाखिल होने पर सबसे पहले दर्शन होते हैं रामराजा मंदिर के। सन् 1589 में महाराजा भारती चंद्र द्वारा इसे नौ चौकिया महल के रूप में बनवाया गया था।

एक राजा के कर्तव्यों का पूर्ण रूप से निर्वहन के लिए सीता माता को तज देने वाले राजा राम अपनी प्रजा के हित में अपना संपूर्ण दिन ओरछा में बिता केवल रात शयन के लिए अयोध्या जाते हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि ओरछा में प्रभु राम का दर्जा राजा का माना जाता है और आज भी सरकारी अभिलेखों पर रामराजा सरकार का उल्लेख रहता है। राजा राम के अतिरिक्त किसी भी अन्य को यहाँ शासकीय सलामी नहीं दी जाती।

चार सौ वर्ष पूर्व प्रभु राम की राजा बनने की कहानी भी कम दिलचस्प नहीं है।

मधुकरशाह नरेश की रानी कुँवरि गणेश।
पुक्खन-पुक्खन लाई है, ओरछे अवधनरेश।।

बताते हैं कि ओरछा के राजा मधुकर शाह कृष्ण के उपासक थे, जबकि उनकी पत्नी रानी गणेश कुँवारी भगवान राम की अनन्य भक्त थी। एक बार रानी द्वारा वृंदावन जाने से इंकार करने पर राजा ने उलाहना देते हुए कहा कि तुम राम को ओरछा ही क्यों नहीं ले आती? रानी ने तुरंत अयोध्या जाने का मन बना लिया। रानी को अपने भगवान पर विश्वास था, इसी कारण जाने से पूर्व उन्होंने भगवान राम के लिए एक भव्य मंदिर के निर्माण का आदेश दिया और गर्भगृह की स्थापना इस प्रकार रखने के लिए कहा कि वह अपने महल के झरोखे से जब चाहे प्रभु के दर्शन कर पाए।

अयोध्या पहुँचकर वह सरयू नदी के पास साधना करने लगी। कई महीनों तक साधना के बाद भी भगवान के दर्शन न होने पर रानी ने खाली हाथ लौट उपहास का पात्र बनने से बेहतर नदी में डूब कर अपने प्राण देने का निश्चय किया।

इसी नदी में रानी को प्रभु राम ने दर्शन दिए एवं उन्हें रामलला की एक मूर्ति भी मिली। माना जाता है कि यह वही मूर्ति थी जो श्री राम ने वनवास जाने से पूर्व माता कौशल्या को दी थी और उनके वापस आने पर माता कौशल्या ने उसे सरयू नदी में विसर्जित कर दिया था।

रामलला की मूर्ति गोद में ले रानी ओरछा की ओर चल पड़ी। केवल पुख नक्षत्र में यात्रा करने के कारण यह यात्रा आठ माह और सत्ताईस दिन में पूरी हुई। कहा जा सकता है कि लगभग एक पूरा प्रसवकाल रानी, रामलला को गोदी में लेकर चलती रही-

बैठे जिनकी गोद में मोद मान विश्वेश
कौशल्या सानी भई रानी कुँवर गणेश।

जब रानी ओरछा पहुँची तो मंदिर पूरा बनकर तैयार नहीं हुआ था। रानी ने अपनी रसोई में ही प्रभु की अस्थायी स्थापना कर ली, किंतु जब शुभ मुहूर्त में प्राण-प्रतिष्ठा हेतु मूर्ति को नवनिर्मित भव्य चतुर्भुज मंदिर में ले जाया जाने लगा तो कोई भी मूर्ति को उठा नहीं पाया। तब वही रामलला का स्थायी निवास बन गया।

सप्तधार सरजू बहै नहर ओरछा धाम
फूलबाग नौ चौक में विराजे श्री राजाराम।

रानी महल के सामने बना चतुर्भुज मंदिर आज भी खाली ही पड़ा है। कुछ विद्वानों का कहना है कि प्रभु ने रानी को यह संदेश देना चाहा कि प्रभु-भक्ति का मार्ग बिना कष्ट के संभव नहीं और अपनी सुविधानुसार प्रभु-दर्शन नहीं मिलते, जबकि अन्य विद्वानों का मत है कि रामलला को माँ स्वरूप रानी की रसोई की चहल-पहल छोड़ मंदिर के एकांत में बसना रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ।

एक किंवदंती जहाँ जीवन दर्शन का ज्ञान देती है, वहीं दूसरी हमें सिंचित वात्सल्य से भावविभोर कर देती है। इन किंवदंतियों की सच्चाई की परख तो संभव नहीं किन्तु मानव-जीवन में संवेदनाओं की आदृता बनाए रखने में इन किंवदंतियों की महत्ता अवश्य ही सहजता से स्वीकार्य है।

बताया जाता है कि अयोध्या से ओरछा आते हुए राम ने कृष्ण रूप में भी दर्शन देकर रानी को ईश्वर के एक स्वरूप होने का भी अहसास कराया था। आज पन्ना में इसी स्थान पर जुगलकिशोर मंदिर स्थित है। रानी की भक्ति और रामलला के प्रभाव से राजा मधुकर शाह ने भावविभोर हो अपना राज पाट प्रभु के नाम कर दिया एवं स्वयं उनके सेवक के रूप में राज्य चलाने लगे। राजा मधुकर और रानी कुँवरि गणेश को राजा दशरथ और कैकयी का ही अवतार माने जाने पर भी कैकयी से जुड़ा अपयश बना ही रहता है-

अवध की महारानी ने तो वनवासी बनाए राम
पर मधुकर की रानी ने रामराजा बनाए हैं।

आज भी ओरछा में प्रभु राम का ही राज माना जाता है और सैनिकों द्वारा उन्हें सलामी दी जाती है। आरती के समय मंदिर की रौनक देखते ही बनती है। रामनवमी आदि मुख्य पर्वों पर अपने राजा के दर्शन के लिए भारी जनसैलाब उमड़ता है। मंदिर के प्रांगण में ऐसे अवसरों पर किया जाने वाला राई नृत्य भी मन मोह लेता है। आपको शिशुओं का मुख-सौंदर्य भले ही अभिभूत करता हो, परंतु यहाँ मुख से अधिक महत्व रामलला के बाएँ पैर के अंगूठे के दर्शन का है। कहा जाता है कि कुँवरि गणेश कई-कई घंटों तक खड़े रहकर प्रभु की उपासना किया करती थी। मधुकरशाह के बैठकर उपासना करने के सुझाव को वह यह कहकर अस्वीकार कर देती कि जब उनके आराध्य खड़े हैं तब वह कैसे बैठ सकती हैं? रानी की सुविधा हेतु तब प्रभु राम पद्मासन जैसी मुद्रा बना बायाँ पैर दाएँ पर रख कर बैठ गए। आज भी तीनों समय की आरती के पश्चात बाएँ पैर के अंगूठे पर चंदन तिलक अवश्य ही चढ़ाया जाता है।

हरि अंनत हरि कथा अनंता

जी हाँ, मंदिर से जुड़ी रोचक कथाओं का सिलसिला यहीं नहीं रुकता। माना जाता है कि हर रात ब्यारी की आरती के पश्चात् मंदिर के पुजारियों द्वारा 'ज्योति' पाताली हनुमान जी को सौंप दी जाती है जो इस ज्योति को अयोध्या लेकर जाते हैं और प्रत्येक सुबह प्रभु इसी जोत के रूप में वापस ओरछा आते हैं।

अनन्य कृष्ण भक्त मधुकरशाह ने करा दी थी स्वर्णपुष्पों की वर्षा

जहाँ रानी कुँवरि गणेश की राम के प्रति श्रद्धा उन्हें अयोध्या से ओरछा ले आई वहीं मधुकरशाह की अपने आराध्य जुगल किशोर के प्रति श्रद्धा से जुड़ी भी अनेकों कहानियाँ हैं। कहते हैं कि एक बार मधुकरशाह अकबर के साथ दिल्ली में थे, तब वह रात्रि में "आग-आग" कह चिल्ला कर उठ बैठे। अकबर के पूछने पर उन्होंने कहा कि मेरे आराध्य श्री कृष्ण की पोशाक में आग लग गई है। पुजारी व्यास जी ने जो दीपक रात्रि में जलाया उसकी घी की जलती हुई बाती से मेरे आराध्य श्री कृष्ण की पोशाक में यह आग लगी है और उसी आग को बुझाने के कारण मेरे हाथ जल गए हैं। एक दूत को इस घटना के सत्यापन के लिए ओरछा भेजा गया। तब पता चला कि वाकई उस रात्रि में श्री कृष्ण की पोशाक जली हुई मिली थी। इस घटना का वर्णन वृज वर्तिका में निम्न शब्दों में किया गया है -

मधुकर को तेज काठी की कृपान को विराट जासु
अकबर शाह चक्र चौधित निगाह भौ
दिल्ली बैठि जगदीश जामा की बुझाई अग्नि
याठौ याम श्याम ध्यान धरत उछाह भौ

सेवकेंद्र भक्ति भावना की दिखराई शक्ति
प्रभु की कृपा ते नितनेम को निर्वाह भौ
शोभा सध पावन गुंविद पद पदम् लीन
मधुकर छद्महीन मधुकर शाह भौ।

अकबर से जुड़ी एक और घटना उस समय की है, जब वह अकबर के आदेश के विपरीत तिलक लगा कर ही दरबार में गए थे। उनके द्वारा लगाया गया लंबा तिलक मधुकरशाही तिलक कहलाया जाता है। कुछ लोगों का मानना है कि इसी टीके के कारण मधुकरशाह, टीकमशाह कहलाए और उन्होंने टीकमगढ़ नगरी बसाई। इसके विपरीत अन्य स्थानों पर टीकमगढ़ शब्द की उत्पत्ति भगवान कृष्ण के एक नाम 'टीकम' से भी मानी जाती है। कवि सेवकेंद्र त्रिपाठी की अतुल्य लेखनी इस प्रसंग को कुछ यों बखानती है-

तिलक लगाय मधुकरशाह आज्ञा खण्डि
भक्त भाल तिलक निशंक सीख सीरूयों है
भार रूप देह द्रुम जगत आसार रूप
सेवाकेंद्र सार रूप धर्म फल चीरूयो है
चन्द्रनीय रेख बन्दनीय कीर्ति नन्दिनी है
रूप सिंधु स्याम मंजु पालियें को पुन्य पैज
राधिका समेत नन्दलाल भाल लिक्खों है।

इस घटना को राजनैतिक परिवेश में देखें तो यह कई गूढ़ रहस्य भी सामने लाती है। बुंदेलखंड के ख्याति प्राप्त लेखक गुणसागर सत्यार्थी जी कहते हैं कि इस घटना ने हिंदू साधुओं के समक्ष मधुकरशाह को हिंदुत्व के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया और भारत में मुगलों के बढ़ते प्रभाव और मंदिरों के तोड़े जाने से सशंकित अयोध्या के साधु-संन्यासियों को अराध्य राम की मूर्ति की रक्षा के लिए ओरछा सर्वोचित स्थान प्रतीत हुआ। राजा-रानी की लड़ाई एवं अन्य कथाएँ संभवत: मुगलों को ही भ्रमित करने के लिए फैलाई गईं।

एक अन्य कथा के अनुसार एक बार जुगल किशोर जी का मंदिर बंद होने के पश्चात महाराज इंद्रजीत अपने साथियों के साथ मंदिर के पीछे बैठकर भजन-कीर्तन कर रहे थे। हिंदू धर्म की मान्यता के अनुसार इस मंदिर का मुख्य प्रवेश द्वार भी पूर्व की तरफ था, जो स्वत: ही पश्चिम की तरफ हो गया।

कहते हैं कि इसी मंदिर में प्रभु की आराधना करते हुए एक बार जब मधुकरशाह तल्लीन होकर नाच रहे थे, तभी ओरछा के ऊपर स्वर्ण-पुष्पों की वर्षा होने लगी थी। ऐसा माना जाता है कि यह स्वर्ण-पुष्प आज भी मंदिर के कोष में संरक्षित हैं। स्वर्ण-पुष्पों की वर्षा के संदर्भ में संदेह होने पर भी इतना तो निश्चित ही है कि मधुकरशाह के शासनकाल में ओरछा ने अपना स्वर्ण युग देखा था।

ओरछा किला परिसर

ओरछा फोर्ट कॉम्प्लेक्स के लिए मंदिर से सीधी सड़क जाती है, जिसमें जहाँगीर महल, राजा महल तथा शीश महल शामिल हैं। यहीं पर शाम के समय, ओरछा का इतिहास बताता हुआ लाइट एंड साउंड शो भी हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में टिकट लेकर देखा जा सकता है। यह सड़क आगे बढ़ जाती है उस मैत्री के किस्सों की ओर, जिसने दो धर्मों को नए मायने दिए।

जहाँगीर महल

मधुकरशाह के समय से ही मुगलों और बुंदेलों का वैमनस्य रहा और उन्हें अपना जीवन मुगलों से लड़ते ही बिताना पड़ा। कालांतर में मधुकरशाह के पोते वीरसिंह और अकबर के पुत्र जहाँगीर की मित्रता के फलस्वरूप वीरसिंह देव द्वारा 1518 में मुगल सम्राट जहाँगीर के लिए बनवाया गया यह महल दो धर्मों और शैलियों का सम्मिश्रण है।

जहाँगीर के बगावत करने पर अकबर द्वारा अबुल फजल को जहाँगीर को काबू करने भेजा गया था, लेकिन वीरसिंह द्वारा अबुल का कत्ल करवा उसका कटा सिर जहाँगीर को भेज दिया गया। इसी से प्रसन्न हो जहाँगीर ने ओरछा की कमान वीरसिंह को सौंप दी थी। जहाँगीर के राजा बनने पर वीरसिंह ने उसे ओरछा आमंत्रित किया और हिन्दू तथा मुगल वास्तुशिल्प के सम्मिश्रण से इस महल का निर्माण कराया।

क्रमश: ..... पृष्ठ 56 पर

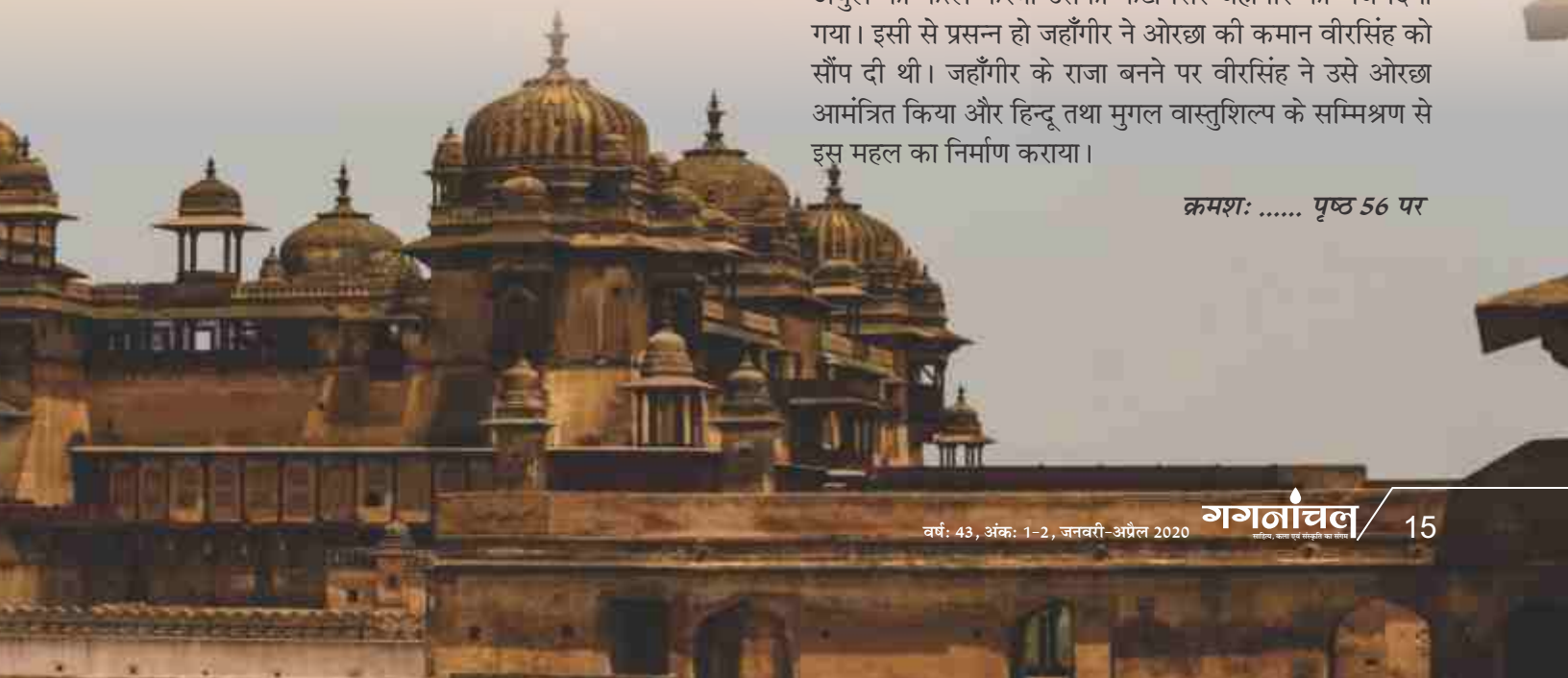

दूब-धान

— उषाकिरण खान

चार दिन की विधि पूरी करने के बाद ही उसकी सास उसे लेकर महानगर चली गई थीं। तब से केतकी ने कभी इधर का मुख नहीं किया। अपने दरबे से नीचे उतरकर सामने कोसी नहीं देखी, सुनहरी-रुपहली अबरकों वाली सिकता नहीं देखी, कास और पटेर के जंगल नहीं देखे, आम की पीपें घिसकर सीटी नहीं बजाई। केतकी ने सींकी की डलिया में मुढ़ी-लाई नहीं खाए और न ही सींकी के बने कंगन, बाजूबंद खेल-खेल में सबुजनी से बनवाकर पहने। क्या सबुजनी जिंदा होगी। केतकी सोचती है और उसका मन दौड़कर धुनिया टोली पहुँच जाता है। गोरे-चिट्टे धुनिया मजदूर और गुलाबी रंगतों वाली उनकी औरतें। केतकी उन्हें देखती ही रह जाती। और यह सबुजनी कितनी सुंदर थी।

मंजिल पर पहुँचने से पहले गाड़ी की रफ्तार तेज हो गई थी और अब एक तीखी आवाज सीटी की अर्थात् स्टेशन नजदीक है। वैसे तो केतकी ने जब से गाँव आने का कार्यक्रम बनाया, तभी से उसकी नींद उड़ गई थी लेकिन छोटी लाइन की गाड़ी पर चढ़ते ही आँखों ने थकान का अनुभव भी भुला दिया था। प्रसन्नता के अतिरेक में केतकी बावरी हो गई थी। रात के लगभग एक बज रहे थे जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँच रही थी। कितने वर्षों के बाद केतकी अपने गाँव की दहलीज पर आ रही थी। यह अवसर बड़ी मुश्किल से मिला था। चार भाइयों की डेउढ़ी में अकेली लड़की केतकी अपनी भतीजियों-भतीजों की हमउम्र थी। पिता के दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी से मात्र चार लड़के थे, दूसरी से केतकी। केतकी माता और पिता के लिए राहु बनकर अवतरित हुई थी। पिता का स्वर्गवास तभी हो गया था, जब केतकी गर्भ में थी और किशोरी माता के संबंध में सुनने में आता है कि विवाह होने के बाद वे केतकी को जन्म देने के लिए ही मात्र जीवित थीं। बड़ी भाभी ने केतकी को अपनी बेटी की तरह पाला था। पालन-पोषण में कोई कमी नहीं आने दी थी। पंद्रह वर्ष की केतकी ब्याहकर ससुराल चली गई थी। उसके श्वसुर महानगर में रहते थे। गाँव-घर से कोई मतलब ही नहीं था। केतकी भी वहीं चली गई। गाँव के एक-एक पंछी से बिछुड़ते केतकी का हृदय फटता था, किंतु नए वातावरण का आकर्षण उसे जीवित रखे था। इस बीच में कितने परिवर्तन आए। केतकी के भाई लोगों का मकान शहरों में बन गया। सभी भाई नगराभिमुख हो गए। सबसे बड़े भाई चीफ इंजीनियर के पद तक पहुँच गए हैं। सभी ब्याह-शादियाँ शहरों में ही हुईं। मुहल्ले की शादियों की तरह केतकी आती और ब्याह का न्योता पूरा कर चली जाती। पशु-पक्षियों और ग्रामीण जन से अधिक घुली-मिली यह दीवानी लड़की यदि गाँव के संबंध में कुछ पूछती भी तो माकूल उत्तर नहीं मिल पाता। एक बार बड़ी भाभी से कहा भी था इसने,—"भाभी, गाँव में कोई समारोह करिए, काफी दिन हो गए।"

तो भाभी ने उत्तर दिया था,—"गाँव में सड़कें बन रही हैं, घर तैयार हो रहे हैं, फिर देखूँगी।"

केतकी ने यूँ ही कई बार अपने पति से भी कहा था कि एक बार अपने गाँव जाने का मन करता है। उन्होंने यह कहकर टाल दिया था कि गाँव में कौन रहता है? केतकी क्या कहे कि गाँव में कौन रहता है उसका। भाई-भाभी और भतीजे-भतीजियाँ नहीं रहते हैं तो क्या, पूरे-का-पूरा गाँव उसका अपना है। वह एक क्षण के लिए भी गाँव को भूल नहीं पाती है। बच्चों की छुट्टियों में संपूर्ण भारत का भ्रमण भी उसको संतुष्ट नहीं करता, महानगर के पास के साफ-सुथरे कंक्रीट की सड़क वाले गाँव उसे नहीं भाते। लोगों द्वारा 'केतिकी' पुकारना याद आता और याद आता कोसी का मिट्टी-पानी, कोर-कछार। उसके समय में जो नवगछुली बंबई और मालदह आम की लगी थी वह कितना विस्तृत हो गई होगी, यह सोचकर केतकी प्रसन्न होती। थोड़ा-सा भी समय मिलेगा तो वह जरूर उस पर झूला लगवा लेगी। क्या हुआ माघ है तो, अब झूला लगाने के लिए कोई सावन का इंतजार तो नहीं करने देगा केतकी को। देखा तुमने, बड़ी भाभी की चिट्ठी आई है कि अबकी समीर के बेटों का जनेऊ गाँव में ही करेंगी। केतकी ने कहा था। अच्छा तो है, अब उनके गाँव तक सड़कें चली गई हैं, घर भी ठाट का बन गया है। ऐसी ही सड़कें? और नहीं तो क्या, पगली! केतकी क्षण भर को उदास हो गई थी। फिर सोचा था, अच्छा ही तो है, अब गाड़ी सीधे दरवाजे पर पहुँचेगी। पहले बैलगाड़ी और नाव की सवारी करनी पड़ती थी। उसे याद आया कैसे गौने के बाद उसकी बारादरी उठाकर नाव पर रखी गई थी और वह नदी पार कर अपनी ससुराल के घर में देवी को शीश नवाने पहुँची थी। चार दिन की विधि पूरी करने के बाद ही उसकी सास उसे लेकर महानगर चली गई थीं। तब से केतकी ने कभी इधर का मुख नहीं किया। अपने दरबे से नीचे उतरकर सामने कोसी नहीं देखी, सुनहरी-रुपहली अबरकों वाली सिकता नहीं देखी, कास और पटेर के जंगल नहीं देखे, आम की पीपें घिसकर सीटी नहीं बजाई। केतकी ने सींकी की डलिया में मुढ़ी-लाई नहीं खाए और न ही सींकी के बने कंगन, बाजूबंद खेल-खेल में सबुजनी से बनवाकर पहने। क्या सबुजनी जिंदा होगी। केतकी सोचती है और उसका मन दौड़कर धुनिया टोली पहुँच जाता है। गोरे-चिट्टे धुनिया मजदूर और गुलाबी रंगतों वाली उनकी औरतें। केतकी उन्हें देखती ही रह जाती। और यह सबुजनी कितनी सुंदर थी। गाँव की बेटी थी, गाँव में ही बस गई थी। सो वह घर-घर मुँह उघारकर घूमती रहती थी। गहरे काले बाल, नीले-हरे-बैंगनी मारकीन के चूने लिखे चूनर, गोरे मुखड़े पर लाल कान और कान में ऊपरी छोर से क्रम से लटकती पाँच-पाँच बालियाँ चाँदी की। छम-छम करते गहने जौसन-बाजू तक और रुपैया का छड़ा जहाँ बैठती झन-झन बजता। सबुजनी की बड़ी पूछ बड़े घरों में थी। वह सींकी की रंग-बिरंगी सुंदर-सुंदर डलिया बनाती थी। उससे सीखने वालों का ताँता लगा रहता। सबुजनी की दो बेटियाँ फूल और सत्तो ब्याहकर ससुराल जाने-आने लगी थीं और बेटा रहीम कुदाल कंधों पर रखने लगा था। उसी से केतकी सींकी का बाला-झुमका बनवाकर पहनती थी और फिर तोड़कर फेंक देती थी। सबुजनी लाड़ भरी झिड़की देकर फिर रंगी सींकी से केतकी के लिए कंगना बनाने लगती थी। केतकी को सबुजनी का जोर से 'कतिकी...ई... ई...' पुकारना याद आता है। उसे याद आता है कैसे इस्लाम धर्म मानते हुए भी सबुजनी जीतिया और छठ करती थी। छठ की डलिया में सिर्फ फल-फूल देखकर एक बार केतकी ने टोका तो उसने कहा था,—"मैं मुसलमान हूँ न, मेरे हाथ का पकाया हुआ भोजन सूर्य देवता कैसे पाएँगे, इसलिए फल-फूल लेकर अर्घ्य चढ़ाती हूँ।"

"ऐसे देवता को क्यों अर्घ्य चढ़ाते हो जो तुम्हारे मुसलमान होने के कारण छूत मानते हैं? मत चढ़ाओ..." केतकी ने आवेश में कहा था। जीभ काटकर कान पकड़ते हुए सबुजनी ने ऐसा बोलने से मना किया। और डाँट भी बताई। कहा, क्षमा माँग लो, देवता-पितर के बारे में ऐसा नहीं कहते। तब लाख यह समझाने पर कि वह कैसे जानती है भगवान् किसका खाते हैं, किसका नहीं, वह कुछ सुनने को तैयार नहीं हुई थी। जैसे ही निर्मल सौंदर्य की स्वामिनी थी वैसा ही हृदय भी था उसका। जाने अब यदि यह जीवित होगी भी तो कैसी होगी? होगी भी या नहीं कौन जाने। उनके पास कोई अपनी जमीन तो होती नहीं थी कि एक स्थान पर टिके रहें, जहाँ रोजी मिली होगी, चली गई होगी। नैहर की मिट्टी

क्रमशः ..... पृष्ठ 37 पर

मांसखोर

— संजय कुमार सिंह

उसने बटन दबाया। न्यूज चैनल। कोई भयानक न्यूज! कुछ लोग, नहीं कुछ कट्टर लोग...एक भारी भीड़ के सामने...एक लड़की को कोड़े से पीट रहे थे...लगातार. .वहीं उस डेजर्ट में उसकी बगल में एक युवा को प्रेम करने के संगीन जुर्म में रेत में जिंदा दफ्न किया जा रहा था...उसकी घिग्घी बँध गई। उसने टी.वी. को ऑफ कर दिया...निकाह से पहले पाप और वही सब कुछ उसके बाद पाक...यह क्या पागलपन है? ओह इतना इनह्यूमन कोई धर्म कैसे हो सकता है?...यह कुछ वहशी लोगों की अपनी पॉलिटिक्स है धर्म और राज्यसत्ता को लेकर... दैट इज नॉट रीयल थॉट ...टोटली फाल्स है यह...तुमने उस लड़की को कोड़े मारकर इसलिए बचा रखा कि फिर से उसे भोगा जाए? क्या कानून है, ...सिर्फ सत्ता का उपभोग...माल असबाब के साथ औरत...प्रभु, अपने इस संसार पर दया करो!

उसे लगा कि कोई उसका पीछा कर रहा है। उसे कुछ बेचैनी-सी हो रही थी। कोई आदमी था, जो प्रतिच्छाया की तरह उसके साथ-साथ चल रहा था। पहली बार पार्क में ऐसा लगा था। फिर वेरायटी चौक से आगे खलील रोड के पास। भीड़ में रपटकर वह उसके पास आ गया था।

तभी वह आगे बढ़ गई थी।

अगर आपको ऐसी आशंका होती है तो उस डर और दुश्चिंता के बीच आपका दिमाग भी अपना काम करता है। अपने वहम को समझने के लिए वह एग्जीबिशन हॉल के बाहर रुकी, पर नहीं वह आदमी सचमुच उसकी ओर...

उसने रिक्शे वाले को हाथ दिया और अपने रेसीडेंस की ओर चल पड़ी। उसे यह सोचकर झुरझुरी-सी हुई कि कहीं वह आदमी भी...पर उसने पलटकर देखा ही नहीं!

उसने वापस आकर अपने कमरे को खोला और फिर अंदर से लॉक कर बैठ गई सोफे पर...भीड़...गर्मी..उमस.. आर्द्र हवाएँ...पसीने की गंध...चिपचिपाहट और घुटन! अब अकेले कहीं निकलना और जीना भी मुहाल हो गया, नहीं वह पुलिस को बोल सकती थी, पर तब उसे भी परेशान होना होता!

उसने पानी पीकर सिर को झटका दिया, आखिर वह आदमी क्या चाहता होगा उससे? उसने कुछ याद करने का प्रयास किया...गोरा रंग, कद्दावर चेहरा...मुँह पर चेचक के दाग.....भेड़िए जैसी जलती आँखें! लोगों की झाड़ीनुमा भीड़ में सरकता हुआ!

वह कुछ उद्विग्न हुई, आखिर चक्कर काटने का मतलब? कुछ तो होगा उसके मन में...? उसके मन की पकड़ से मुक्त होने के लिए वह उठकर बाथरूम चली गई और नहाने लगी। देर तक नहाती रही। बाई के लगातार दरवाजे पीटने पर उसने जल्दी-जल्दी दरवाजा खोला।

"सारा पानी नहाने में खर्च कर दिया?" बाई ने हँसकर अपनी जुबान में कहा।

"सुनो, पानी तो फिर भी आ जाएगा।"

"जी मिस!"

"तुम अकेले रहती हो या... ?"

"नहीं मैम, हमारा परिवार है..."

"मैम नहीं, मिस बोलो।" वह बोली, "रोज भूल जाती हो।"

"सॉरी मिस!"

"तुम्हारे देश का कानून कैसा है?"

"बहुत टाइट मिस!" उसने चौंककर कहा, "अभी फोन करो, अभी पुलिस हाजिर। कुछ हुआ क्या?"

"नहीं तो!"

"तब?"

"वैसे।" वह हँसी, "चलो तुम काम करो।"

"जी!" उसने भी हँसकर कहा, "आप निकाह कर लो, बस सेफ!"

"मैं विवाह नहीं करूँगी।"

"क्यों?"

"मेरा मन।"

"तब दिक्कत है।"

"काहे?"

"है न।"

"तो तुम्हारे धर्म में करुँ?"

"नहीं, अपने में करो!"

"उधर कोई मिला नहीं।"

"...तो फिर कैम्प में देखो।" वह बोली, "तुम डॉक्टर हो, तो..."

"अच्छा,चलो तुम अपना काम करो बाई!" वह कुछ उकताई।

"उतना बाहर मत जाओ मिस!" वह बोली, "तुम लोग अपने लोगों से मतलब रखो..." वह जाने क्या बोल गई।

"तुम लोगों का भी इलाज होता है न?"

"वो अलग बात है।"

★★★

बाई के जाने के बाद हल्का खाना लेकर वह टी.वी. देखने लगी। नाइट में ड्यूटी ऑफ थी उसकी। पराया देश। अकेला जीवन। उदास और...। फौजी कैम्प के पास के मिशन अस्पताल में ड्यूटी थी उसकी। उसका परिवार हिंदू था, कृष्णगंज में। फिर उसके पिता ने क्रिश्चियन धर्म स्वीकार कर लिया। प्रभु यीशू का धर्म! अब वह अगर... नहीं कभी-कभी उसे लगता है, उसमें आधा हिंदू बचा हुआ है। उसने हमेशा महसूस किया है ऐसा। औरत पर तो यह और फिट है, वह पहले से आधा होती है! मुसलमान, हिन्दू, पारसी, क्रिश्चियन, यहूदी जो कहो...कोई-न-कोई पीछा करेगा...औरत और नदी का कोई धर्म नहीं, बस एक जिस्मानी वजूद है उसका...

उसने बटन दबाया। न्यूज चैनल। कोई भयानक न्यूज! कुछ लोग, नहीं कुछ कट्टर लोग...एक भारी भीड़ के सामने...एक लड़की को कोड़े से पीट रहे थे...लगातार...वहीं उस डेजर्ट में उसकी बगल में एक युवा को प्रेम करने के संगीन जुर्म में रेत में जिंदा दफ्न किया जा रहा था...उसकी घिग्घी बँध गई। उसने टी.वी. को ऑफ कर दिया...निकाह से पहले पाप और वही सब कुछ उसके बाद पाक...यह क्या पागलपन है?ओह इतना इनह्यूमन कोई धर्म कैसे हो सकता है?...यह कुछ वहशी लोगों की अपनी पॉलिटिक्स है—धर्म और राज्यसत्ता को लेकर...दैट इज नॉट रीयल थॉट...टोटली फाल्स है यह...तुमने उस लड़की को कोड़े मारकर इसलिए बचा रखा कि फिर से उसे भोगा जाए? क्या कानून है,... सिर्फ सत्ता का उपभोग...माल-असबाब के साथ औरत... प्रभु अपने इस संसार पर दया करो।

उसने प्रभु यीशू को याद किया और बेचैनी की नींद सो गयी।

★★★

सुबह फिर उसे बाई ने ही जगाया।

उसके पीछे बुके लेकर एक लड़का खड़ा था।

"क्या है?"

"बुके।"

क्रमशः ..... पृष्ठ 41 पर

कौन सी डोर

— राम नगीना मौर्य

ऐसी देश-काल-स्थिति-परिस्थिति में अब गौरी आगे क्या करे? बचपन में जिसे हमेशा हँसते-खिलखिलाते देखा था। गौरी का क्लांत, निस्तेज चेहरा मुझे भूल नहीं रहा था। उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो, घर, आस-पड़ोस, गली में खेलते, शोर मचाते, दौड़ते बच्चों के शोर-गुल का उस पर कोई असर नहीं। बैठकखाने की खिड़की से झाँकते शहतूत की डालियों पर चहकते पक्षियों के कलरव पर उसका जरा भी ध्यान नहीं। क्या वो इस कदर मायूस है? नहीं...! गौरी को मजबूत होना होगा। फिर...आज के समय में जब करियर बनाने के ढ़ेर सारे ऑप्शन्स मौजूद हों, तो उसे भी मजबूत बनना होगा।

''गोशे गोशे में सुलगती है चिता तेरे लिए,
फर्ज का भेष बदलती है कजा तेरे लिए,
कहर है तेरी हर एक नर्म अदा तेरे लिए
जहर ही जहर है दुनिया की हवा तेरे लिए,
रूत बदल डाल अगर फलना फूलना है तुझे,
उठ! मेरी जान मेरे साथ ही चलना है तुझे!!''

ये चंद खूबसूरत पंक्तियाँ हैं, 'कैफी आजमी साहब' की मशहूर कविता 'औरत' की और बेशक...मेरी पसंदीदा भी।

अचानक कोई पसंदीदा बात या कुछ पंक्तियाँ जेहन में आ जाएँ, या कुछ लिखते-पढ़ते हुए दिख जाएँ, तो उससे जुड़े कुछ लोग, उनकी बातें, उनसे जुड़े अनुभव कुछ खट्टे-मीठे प्रसंग....आदि बरबस ही स्मृति-पटल पर दस्तक देने लगते हैं।

स्कूली दिनों में गौरी मेरे साथ ही पढ़ती थी। गौरी के पिताजी अक्सर ही ये नज्म सुनाया करते थे। मैं गौरी के पिताजी से शास्त्रीय-संगीत सीखने नियमित रूप से उनके घर जाया करता था। गायन-वादन अभ्यास के दौरान वो गौरी को भी अपने पास बिठा लेते। जाहिर है, मेरे संग गौरी भी अपने पिता से संगीत की बारीकियाँ सीख रही थी। उस संग बचपन में बिताए गए खुशनुमा दिनों की ढ़ेरों खट्टी-मीठी यादें आज भी मेरे जेहन में तरोताजा हैं। उन पलों की जब भी याद आती है, मन-मस्तिष्क में स्मृतियों के ढेरों रंग-बिरंगे कोलाज से बनने-सँवरने लगते हैं।

बहुत दिनों से गौरी की कुछ खोज-खबर नहीं मिली। आज काफी समय बाद जब गाँव आया तो पता चला...वो तो महीनों से अपने मायके में ही रह रही है। मन अनजान आशंकाओं से घिर उठा। उसके बारे में तफसील से जानने की उत्कंठा हुई। सोचा...गौरी के घर ही चल कर पता किया जाय, क्या हाल-चाल हैं गौरी के...?

गौरी और उसके घर वालों से मुलाकत तो हुई, पर गौरी की खोज-खबर लेते, काफी समय से गौरी के यों मायके में पड़े रहने के कारणों के बारे में जानने, उसके प्रति ससुराल वालों के व्यवहार, उनकी बातों-उलाहनों को सुनते-सुनाते... गौरी के चेहरे पर झलकते दर्द, उसकी निस्तेज हो रही आभा को सहज ही समझा, देखा, महसूस किया जा सकता था। मेरे

अतिशय अपनापा दर्शाने पर...थोड़ी-बहुत झिझक-हिचकिचाहट के बाद तो वो और उसके परिवारीजन, जैसे फट ही पड़े।

''मैं तो दिन गिन रहा हूँ...एक-एक दिन। बिलावजह ही कोई रार नहीं ठानना चाहता। आखिर रिश्ते को बचाए रखने की जिम्मेदारी उनकी भी तो है। गौरी अगर हमारी बिटिया है तो उनकी भी तो बहू है। फिर निहोरा-चिरौरी किस बात की? आखिर, हमारी भी इज्जत है बिरादरी में, गाँव-जवार में? अंततः तो उन्हें हँसी-खुशी विदा कराके इसे ले जाना ही होगा।'' गौरी के पिता जी ने कुछ इस तरह अपनी पीड़ा, अपना रोष प्रकट किया।

''मैंने भी कोई कच्ची गोलियाँ नहीं खेली हैं। ईंट-से-ईंट बजा दूँगा। मूँछें मुड़ा लूँगा, नाम बदल दूँगा, पर उन बेशर्मों के आगे हाथ-गोड़ नहीं जोड़ूँगा। समझौतावादी रूख तो कत्तई नहीं अपनाऊँगा। नाक न रगड़वाई अपने दरवज्जे पर...तो मेरा भी नाम उजागिर बाबू नहीं। वो तो गौरी की वजह से चुप हूँ अभी तलक, नहीं तो बता देता उन्हें भी आटे-दाल का भाव। कोरट-कचहरी के इतने चक्कर लगवाता- इतने चक्कर लगवाता कि अब तक पचासों पनहियाँ घिस गई होतीं उनकी। पाला पड़ा है किससे, ठिकाने से समझ में आ जाता।'' गौरी के बड़े भइय्या जो बेहद गुस्से में थे, ने रौब झाड़ते बताया।

''समधन जी ने तो हम सब जन से बहुत बड़ा धोखा किया है। अगर कोई शिकायत थी तो खुल के कह देतीं। हम तो खुल के बातचीत करने और कहने में विश्वास रखते हैं। सच बात के हिमायती हैं। ये क्या कि...मिलने-जुलने वालों से बार-बार गौरी बिटिया के बारे में, कुछ-न-कुछ शिकायतें, उलाहने, ओरहन कहते रहना? अरे...जो कुछ कहना था सबके सामने कहतीं। ई पीठ पीछे का लगाई-बुझाई बतियाती रहती हैं? जाने किस जनम का बदला ले रही हैं ये परपंची समधन जी भी।'' गौरी की अम्मा ने तनिक तल्ख लहजे में ही शिकायत की।

''पर, आप ऐसा क्यों कह रही हैं चाची? आखिर, गौरी का रिश्ता तो देखभाल कर ही किया था आप लोगों ने? सुनते हैं कि ये रिश्ता तो आपके अगुआ-चाचा ने ही बताया था।'' मैंने अपनी चुप्पी तोड़ते बात का सिरा पकड़ना चाहा।

''मति मारी गई थी हमारी जो अगुआ-चाचा की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गए। अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार बैठे हम सब जन। घर-वर ठीक से देखने-सुनने की जहमत में नहीं पड़े, और न लेन-देन...दान-दहेज की ही साफ-साफ बात हुई। न देखा...न देखउव्वल...इधर चट मगनी...उधर पट ब्याह। लड़के वालों के चाल-चरित्तर के बारे में न देखा-ताका ही गया, और न उन्हें ठीक से समझा-बूझा-परखा ही गया। सब कुछ इतनी जल्दी-जल्दी में हुआ कि आगा-पीछा समझने-बूझने-जानने का मौका ही नहीं मिला। उन्हें भी जल्दी थी शादी की और हमें भी चिंता थी, दिनों-दिन बढ़ती-जवान होती अपनी गौरी बिटिया की। ऊपर से रमेश बाबू की नौकरी पक्की है भी या नहीं, ये तक पता नहीं कर पाए गौरी के बापू। लड़के वालों की सामाजिक हैसियत घर-दुवार नौकरी-चाकरी, कुछ भी तो नहीं जान पाए हम लोग।''

''यानी, आप ये कहना चाह रही हैं कि आप लोगों के साथ धोखा हुआ है?'' सब कुछ जानने की मेरी उत्कंठा, अकुलाहट बढ़ती ही जा रही थी।

''बाप रे बाप....एतना बड़ा धोखा किया न! उन दाढ़ी जारों ने हमारे साथ, पूछो ही मत। बज्जर पड़े...आग लगे... ऐसे नासपीटों के। कहाँ आततायियों के घर ब्याह दिया अपनी फूल जैसी बेटी को। बेचारी का तो जैसे किलकना ही बिसर गया। अगर जानती...तो जीते-जी कभी न ढ़केलती, अपनी लाडो...बिटिया रानी को उन मनहूसों-मरदूदों के घर, उस नारकीय अँधेरे कुएँ में। आ जाए अब कभी दरवज्जे पर! ऐसी लानत-मलामत करूँगी कि अकिल ठेकाने आ जाएगी। हाँ नहीं तो।'' गौरी की अम्मा ने लगभग रूआँसे स्वर अपनी पीड़ा, अपना दुखड़ा कह सुनाया।

''मैंने तो कितनी ही बार, कितने ही तरीके से समझाया...देखो दीदी! यों बात-बात में ससुराल से लड़-झगड़कर, महीना-दो-महीना पर...मायके आकर रहने से कोई फायदा-वायदा नहीं होने वाला। उल्टे तुम्हारा ही नुकसान होगा। बात बिगड़ेगी ही।'' बातचीत के बीच में ही शामिल हुई गौरी की भाभी के मुँह से इतना सुनते, गौरी ने डबडबाई आँखों से उनकी तरफ देखा था।

''हाँ-हाँ...मैं कब कह रही हूँ कि...सारी गलती आपकी ही है? पर मानेगा भी कौन? आपकी बात पर कोई

पतियाएगा भी तो भला क्यों और कैसे? देखो दीदी...ताली दोनों हाथों से बजती है, ये तो तुम भी भली-भाँति जानती हो, मानती भी हो? किससे-किससे बताती...फरियौता करती-कराती फिरोगी? इहाँ किसको फुरसत है...फटे में टाँग अड़ाने की? इहाँ भी कउन सुखी है? हम-सब-जन भी तो परेशान ही हैं, अपनी-अपनी गिरस्थी में। मुश्किलों में। रोज-रोज की आपाधापी में। इहाँ तो सभी मगन हैं।...अपने आप में। अपने-अपने खोल में। जो भी सुनेगा, हँसेगा या दो-चार बातें सुनाएगा ही। 'ये कर लेती...वो कर लेती... जुबान खोलने के बजाए दो बात चुपचाप सुन-सह ही लेती...तो इससे आप छोटी...थोड़े न हो जातीं? आखिर, परिवार चलाने के लिए किसे नहीं समझौता करना पड़ता? ये तो आप भी जानती होंगी, जहाँ चार बरतन होते हैं, आवाज होती ही है?'' गौरी की भाभी ने मानो मशविरा दिया हो।

''पर क्या मेरा कोई मान-सम्मान, कोई इज्जत, कोई इच्छाएँ नहीं है भाभी?'' गौरी ने रूआँसे स्वर अपनी भाभी से प्रति-प्रश्न किया।

''इहाँ गाँव-जवार में, मायके के लोगों की हील-हुज्जत कराने से तो अच्छा था, चार बात अपनी ससुराल के लोगों की ही सुन लेतीं। इससे घर की बात घर में ही रहती... यों छीछालेदर तो न होती? ऐसी भद्द पिटने से मायके वालों की भी तो बदनामी होती है कि जाने कैसी कुलच्छिनी जनमी है? ससुराल जाने का नाम ही नहीं लेती। जब देखो... मायके में ही जमीं बैठी रहती है?''

''तो क्या मैं यहाँ अपनी खुशी से हूँ? मेरी हालत बहुत अच्छी है यहाँ? मैं क्या यहाँ के हालात, आप सभी की परेशानियाँ नहीं समझती?'' इस बार गौरी ने लगभग रोष जताते हुए कहा था।

''इहाँ मेरा भी तो यही हाल है। आपने तो देखा ही होगा। आपसे कुछ भी छुपा है क्या? आपके भइय्या और अम्मा जी की चार बातें दिन-भर सुनती नहीं रहती...क्या मैं भी? उनके नाज-नखरे-चोंचले, बर्दाश्त नहीं करती रहती... क्या मैं भी? बात-बात पर समझौता करती नहीं रहती... क्या मैं भी? फिर भी सब-कुछ सहते-सुनते, रह रही हूँ, एडजस्ट कर रही हूँ न! मैं भी? आखिर तो अब वही आपका घर है न!...कहा भी जाता है कि 'लड़की की जहाँ डोली जाती है, अर्थी भी वहीं से निकलती है।' गौरी की भाभी ने इस बार उसे प्यार से समझाना चाहा।

''पर आप लोगों की इस लागडॉट, नाक की लड़ाई में मेरी क्या गलती है?'' गौरी ने प्रतिकार किया था।

''कितनी ही बार, कितने ही मौकों पर, कितने ही तरीकों से समझाया होगा कि कुछ सहना-सुनना भी सीखिए। जरूरी नहीं कि हर बात का जवाब दिया ही जाए। अरे! कुछ बातें तो सिरफ सुनाने के लिए ही कही जाती हैं। कुछ लोगों की तो आदत ही होती है...बात का बतंगड़ बनाने की। बिलावजह ही टाँग-खिंचाई करने की। जब-तक कि अगड़म-बगड़म-सगड़म सा कुछ जद्-बद् बोल-बतिया न लें। किसी से चार बातें लगा-बुझा न लें तो खाया-पिया पचता ही नहीं उनका। जैसे कि...'आज सब्जी में नमक कम है, कल बहुत ज्यादा था।'...'आज सब्जी में पानी ज्यादा है, कल तो इस कदर सूखी थी कि घोंटा ही नहीं जा रहा था।' 'माँड़ ज्यादा हो जाने के कारण चावल गीला हो गया है, खिला-खिला सा नहीं लग रहा है।'...'दाल इतनी पानीदार, पतली क्यों है?'...'सब्जी में खालिस मिर्चा ही झोंक दिया है। मुँह भँभाने लगा, खाया ही नहीं जा रहा है। क्या तुम्हारे घरवालों ने कुछ सिखाया नहीं तुम्हें?'...'आज फलनियाँ तो कुछ ज्यादा ही चमक रही थी।' ...'आजकल त चिलनियाँ के पैर ही जमीन पर नहीं पड़ते।'... 'अलनियाँ को तो शहर की हवा लग गई है, बड़की मेम-साहब बनी मटक-मटक कर चलती-फिरती है।''...ऐसे लोगों की लाग-लपेट बातों को चुपचाप मूड़ी झुकाए सुन लेना चाहिए। ऐसे मीन-मेखी बतियाने वाले लोगों की चार बातें सुन लेने में देह में गड्ढ़ा नहीं पड़ जाता। कुछ समझीं कि नहीं समझीं दीदी?'' गौरी और उसकी भाभी के बीच कुछ देर तक इसी तरह संवाद चलता रहा।

ऐसी देश-काल-स्थिति-परिस्थिति में अब गौरी आगे क्या करे? बचपन में जिसे हमेशा हँसते-खिलखिलाते देखा था। गौरी का क्लांत, निस्तेज चेहरा मुझे भूल नहीं रहा था। उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो, घर, आस-पड़ोस, गली में खेलते, शोर मचाते, दौड़ते बच्चों के शोर-गुल का उस पर कोई असर नहीं। बैठकखाने की खिड़की से झाँकते

क्रमशः ..... पृष्ठ 44 पर

ठेस

— अश्विनी कुमार 'आलोक'

बैलगाड़ी मेरे घर के समीप से गुजरने लगी, तो छेछरा रोने लगा। लोगों से निवेदन किया,—"मुझे जहाँ ले जाना हो, आप लोग ले जाएँ, लेकिन जरा सरजुग से भेंट करा दीजिए। जरा बैलगाड़ी रोक दीजिए।" लोग मान गए, मैं अपने हृदय को ऐसे दृश्यों को देखने में कमजोर समझता हूँ, घर में से जबरन निकल पाया। छेछरा भोक्कार मार कर रो पड़ा, मैंने सांत्वना दी, तो चुप हुआ। उसकी आँखें लाल हो गई थीं, चेहरा भयानक हो गया था। उसने मुझसे कहा,—"जा रहा हूँ, सरजुग! मेरा कोई अपना नहीं, जिंदा ही अर्थी जा रही है। राम-राम!"

शाम हो चुकी थी। लुंगी को ऊपर की ओर बाँधे हुए मैं लंबी-लंबी डगें भरता हुआ हाट की ओर बढ़ा जा रहा था। कल ही सम्मत अर्थात होलिका जलेगी, परसों फगुआ है। क्या पता, अब हाट में हरी मिरचाई बची भी होगी कि नहीं। बगैर हरी मिरचाई के कचरी-फुलौरी किसी करम की नहीं होती। इस बार मिरचाई की फसल बड़ी बोह अर्थात् बाढ़ में बह गई। जहाँ-तहाँ ऊँची भीठों पर लगाई गई मिरचाई ही हो पाई। कहीं से लाकर बेचने वाला तो बेचता ही है और खाने वाला खाता ही है। पहले तो मैं हरी मिरचाई लाने के लिए सुगबुगाया भी नहीं था, क्योंकि सिर्फ हरी मिरचाई के लिए पेठिया अर्थात् हाट जाना मुझे मंजूर नहीं था। मिरचाई को छोड़कर सबकुछ-दाल, तेल, आलू, बैगन, कद्दू हमारे अपने ही खेत से हैं। मिरचाई भी उपज जाती लेकिन गंगा माई जो न करें। मै जब पेठिया जाने के लिए नहीं सुगबुगाया, तो मेरी घरवाली बिगड़ गईं—बिना हरी मिरचाई के कचरी-फुलौरी बेस्वाद होती है, पेठिया जाइए और उधर ही से एक सेर (किलोग्राम) डालडा भी लेते आइएगा। मैं पेठिया जाने के लिए सुरफुरा ही रहा था कि दो साहित्यिक मित्र आ गए और उन्हीं के चाय-पानी में देर हो गई।

"ओ सरजुग!" किसी ने पुकारा। मैंने पीछे घूमकर देखा, तो छेछरा आ रहा था। धोती को लुंगी बनाकर पहने हुए गंजी और गमछे को गर्दन पर रखे हुए हाथ में झोला अर्थात् थैला झुलाता हुआ आ रहा था।

"जल्दी आओ न, तनिक झटको, साँझ हो गई" मैंने भी जोर से कहा।

पंद्रह-सोलह साल के इस किशोर के मुँह में अभी भी बात लगती है। हालाँकि अब बहुत सुधार हुआ है, किंतु कभी-कभी तुतलाहट आ ही जाती है। उसकी तुतलाहट ही ने उसका नाम बदलकर शेखरा से छेछरा कर दिया। कोई नाम पूछे, तो वह शेखर राय के बदले छेछर राय कह दे। अब शेखर राय बोल लेता है, सुधार हुआ है। इस सुधार का श्रेय वह मेरे छोटे भाई रामप्रसाद को देता है, उन्होंने उस पर ध्यान देकर उसका हिज्जे ठीक किया। ठीक ही, इसी कारण रामप्रसाद के लिए उसके मन में आदर कुछ अधिक है। छेछरा मुझे भी बहुत बुद्धिमान समझता है। प्रतिदिन डाक से चिट्ठी-चौपाती और पत्र-पत्रिकाओं को आते हुए देखता है,

उसकी नजर में यह बुद्धिमान और विद्वान होने का प्रमाण है। उसे लगता है कि कविता लिखने वाला आदमी तनिक अधिक होशियार होता है। किसी से यदि कोई बाता-बाती अर्थात विवाद होता है, तो वह मुझ ही से निबटारा या पुरवा साठ (साक्ष्य प्रमाणन) कराने की बात कहकर तब तक थोरथम्ह करा देता है। मेरी बातें वह सभी से ऊँची और अच्छी समझता है। पहले ही से मैं उसके मन में अपने प्रति आदरभाव समझता रहा हूँ। लेकिन मैं उस दिन उस पर और भी हलस गया था, जब वह अपनी बसबारी में खटिया बिछाकर लेटा हुआ था। दिन का कोई एक बज रहा होगा, मैं साइकिल पर कहीं से हकासा-पियासा चला आ रहा था। माथे पर पसीना बहकर सूख चुका था, चेहरा काला-स्याह पड़ गया था, कुरता और गंजी पसीने से बोदरा हो गए थे। मुझे आता हुआ देखा तो छेछरा खाट पर से उतरकर सड़क पर आकर खड़ा हो गया,—"आइए, आइए सरजुग! तनिक सुस्ता तो लीजिए।"

हालाँकि एक-दो घर के बाद ही मेरा घर है, लेकिन उसके मन में अपने लिए अपनापन देखकर मेरा मन रुक जाने का हो गया। लेकिन, मैंने साइकिल पर से ही कहा,—"तुरंत ही कपड़े बदलकर आता हूँ।"

"सुस्ता तो लीजिए, आप से एक बात भी करनी है।" उसने हठ किया।

"तुरंत, हवा खाने यहीं आ रहा हूँ।" मैंने साइकिल बढ़ा दी। वह पुनः अपनी खाट पर लौट गया।

घर आकर मैंने जल्दी से लुंगी पहनी और कुरता खोला। प्यास लगी हुई थी, लेकिन धूप में आने के तुरंत बाद पानी पीने से खाला-खोंखी होने के भय से ऐसा न किया। मैं छेछरा की बसबारी में हवा खाने निकल गया।

जैसे ही मैं बसबारी में गया, लेटा हुआ छेछरा खाट पर से उठकर बैठ गया। पुरवा हवा सनासन देह में लगी तो मन कुछ हरा हुआ। लग तो रहा था जैसे हवा धूप के उकसावे में आकर आग बोकर रही थी, उसके छेंओंक से परेशान शरीर को थोड़ी राहत छेछरा की बसबारी में मिली। थोड़ी देर इधर-उधर की बात हुई, फिर छेछरा ने पूछा,—"सरजुग! पानी पीजिएगा, ला दूँ?"

मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जो छेछरा अपने बाप-भाई को नहीं ठिकता है, वह मेरे लिए इतना उदार हो चला है।

उसके पिता अथवा भाई, उसे कुछ भी अढ़ाकर देखें, मन होगा तो कर देगा, अन्यथा कह देगा,—"मैं किसी का नौकर नहीं हूँ।"

वही छेछरा मेरे बगैर कहे हुए पानी लाने को तैयार है। मैं गदगद हो गया।

छेछरा जब मेरे निकट बैठता है तो मुझे बहुत भुकाता है, बच्चे की भाँति कुछ-से-कुछ पूछता रहता है। उसे लगता है कि उसके सारे प्रश्नों के उत्तर मेरी जुबान पर रहते हैं। उसकी बातों से मुझको पित्त भी चढ़ता है, पर उसका भोलापन देखकर मेरा मन पसीज जाता है।

छेछरा ने निकट आते ही कहा,—"चलिए, कितनी दूर से मैं गदाल पार रहा हूँ और आप अपनी धुन में चले जा रहे हैं।"

"मैं नहीं सुन पाया, शाम हो गई थी, झटककर चला जा रहा था।" मैंने कहा और झटककर आगे-आगे चलने लगा।

"तनिक झोला और गमछा धरिए, गंजी पहिन लूँ।"

छेछरा का झोला और गमछा मैंने पकड़ लिया तो उसने गंजी पहनी।

"क्या लेने चले हो छेछरा?" मैंने चलते-चलते पूछा।

"बस, हरी मिरचाई और तरबूज। दो ही चीजें।" उसने वैसे ही उत्तर दिया।

"तरबूज तो बहुत महँगा होगा, छेछरा!" मैंने कहा।

"कैसे देगा?" उसने पूछा।

"पाँच रुपये सेर से कम न होगा, नया फल है।" मैंने अपना अंदेशा बताया। "तब भी आस्सेर (आधा किलोग्राम) ले लूँगा।" वह बोला।

"उतने बड़े घर में आस्सेर से क्या होगा?" मैंने आश्चर्य से पूछा। "किसी को नहीं दूँगा। माई को दम्मा है, वह खाएगी ही नहीं, पानापुरवाली को रुचता ही नहीं, खाली जंदाहावाली के लिए ले जाना है।"

"क्या बात है, नई भउजी को खूब मानने लगे हो।" मैंने मजाक किया।

क्रमशः ..... पृष्ठ 47 पर

माँ की अलमारी

— डॉ. शशि गोयल

बड़ी भाभी ने खुले पड़े कोठे को खोला और माँ की बड़ी आलमारी में चाबी लगाई। पूरे कमरे की लंबाई की बड़ी-सी आलमारी के दरवाजे के आगे पाँच जन स्तब्ध खड़े थे। पूरी आलमारी खाली थी। एक कोने में पाँच-छः साड़ियाँ कपड़े में लिपटी रखी थीं जिन्हें ही पहनकर माँ ने न जाने कितनी शादी त्योहार निपटा दिए थे। पहनती हाथ से ही सीधी कर-करके लपेटकर रख देती थी। एक आशा का संचार दूसरे कोने में गोटे पटे के खोलों में लिपटे कपड़े में बँधे सामान पर गया। सबसे पहले लाल कपड़े से बँधी थैली खोली गई। सबकी जन्मपत्रियाँ रखी थीं गोल-गोल लिपटी हुई। हरदेव शास्त्री जी ने बनाई थी हमारी जन्मपत्रियाँ। नंदा ने एक-एक कर सब जन्मपत्रियों को थोड़ा-थोड़ा खोलकर नाम देखा।

तीनों बहनें सिर से सिर जोड़कर बैठी थीं। उनकी समस्या थी कैसे पता लगाया जाए कि माँ क्या-क्या छोड़ गई। सामान तो बहुत था-25 तोले की मम्मी की कंधोनी थी।

'अरे सरला तुझे तो अभी चार साल ही हुए हैं गए तूने तो देखी होगी।'

'नहीं, मैंने तो कभी देखी नहीं जिज्जी। मैंने कभी देखने की कोशिश ही नहीं कि क्या सामान है मम्मी के पास। बड़ी भाभी को पता होगा' सरला ने आँखों पर से चश्मा उतारा और झाँककर बड़ी भाभी के कमरे की ओर देखा। नंदा हँसते हुए बोली,—"तू तो ऐसे झाँक रही है कि अभी लिए बैठी होंगी। सब सरक गया होगा। वैसे सरला तू है बेवकूफ। तू तो माँ बीमार थी, तभी आ गई थी। यहीं माँ के पास सोती थी। क्यों नहीं देखा सब? पूछ लेती मम्मी से।"

"क्या पूछती कि तुम्हारे पास क्या है? आँख भी तो खुल नहीं रही थी मम्मी की, ऐसे में माँ से यह पूछती, पागल हो तुम लोग। पता है हर बात का जबाब हूँ-हाँ में देती थी और बहुत जोर से बोलना पड़ता था। पूछती तो सारे घर को मालूम पड़ जाता।" सरला ने माँ के कोठे की ओर देखा जहाँ ताला लटक रहा था।

"इसकी चाबी किसके पास है" नंदा ने कमरे की आलमारी खोलते हुए कहा। उस आलमारी में तीन-चार सूती धोती, दो-तीन सफेद ब्लाउज और दो पेटीकोट रखे थे, बाकी दो खन में पुराने कपड़े तह किए रखे थे।

"इस आलमारी को क्यों देख रही है? इसमें तो वे कभी कुछ रखती ही नहीं थी। रोज की आलमारी थी, जो कुछ था अंदर की आलमारी में ही था।" शोभा बार-बार अपना पल्ला मरोड़ रही थी।

"भाभी से चाबी कैसे माँगी जाए? कुछ तो बहाना चाहिए। अब मैं तो शाम को चली जाऊँगी। तू कब जाएगी," नंदा शोभा ने उत्सुकता से पूछा। 'मैं तो हूँ अभी, तेरहवीं करके जाऊँगी। कौन रोज-रोज आ रही हूँ? अब

बस कब आना है। माँ थी तो एक बहाना था। अब तो दोनों भाभी कब कहें क्या पता' नंदा की आँख में मायके के बिछोह का दर्द छलकने लगा।

'नहीं ऐसी बात नहीं है, भाभियाँ और भैया बुलाएँगे, क्यों नहीं बुलाएँगे?' सरला सबसे छोटी थी और भाभियों के साथ रह चुकी थी। बाद में शादी हुई थी तो उसका लगाव भाभियों से भी था। सरला जरा सी चाय बना ला, कुछ ठंड-सी लग रही है। छोटी थी तो उसे ही उठना था। भाभियाँ कमरे में थीं उनसे कहा नहीं जा सकता था, इसलिए सरला को ही उठना पड़ा।

देखना कुछ खाने का भी हो तो ले आना, दालमोठ ले आना संग में। शोभा को खाली चाय अच्छी नहीं लगती थी और चाय एक-दो बार तो पी नहीं जाती। दिन भर में पाँच तो हो ही जाती। उनके साथ कुछ नमकीन तो हो ही जाता, फिर तीन बार खाना होता ही था। अब नाश्ता बनेगा तो खाया ही जाएगा। रोटी और ब्यालू तो करनी ही होती हैं। नंदा को शाम को मायके की यादें जीवंत हो जातीं तो पुराने ठेले आदि याद आने लगते। तो उनसे भी दोने मँगाने जरूर थे। उठने में मुश्किल होती तो सब कुछ बैठे-ही-बैठे चाहिए था। बहना जरा पानी दे दे। आदि-आदि। सो अब यह तो होगा कि शरीर अपना वजन तो बढ़ाएगा ही, सो भारी शरीर वैसे भी हिलता कम है। कोई कहता भी नहीं है कि हिले क्योंकि फिर एक पकड़ कर उठाने वाला चाहिए तो उठाने वाला खुद ही कह देता, क्या चाहिए मैं ला देता हूँ।

नंदा से रहा नहीं गया। उसने बड़ी भाभी को कमरे से निकलते देखा तो आवाज लगाई? 'भाभी सुनो तो'

'क्या बीबी?' भाभी कम घाघ नहीं थी। समझ गई कि तीनों बहनें किस फिराक में हैं।

'भाभी माँ का कोठा खोल लेतीं तो जरा कुछ यादें हम भी ले जातीं, अब क्या कहूँ भाभी, माँ तो न जाने क्या-क्या कहती रहती थीं, पर कभी कुछ नहीं लिया, पर अब लग रहा है, जरा कुछ हो माँ का हमारे पास', नंदा ने इधर-उधर मुँह घुमाते कहा, जैसे कमरे की एक-एक ईंट उसे बुला रही हो।

'हाँ बीबी क्यों नहीं, वैसे तो अम्माजी के कोठे तो भरे हमारे मायके से थे, खाली तो आप सबने किए, अब क्या कहूँ? जो है, सो ठीक है', कहकर गहरी साँस भरी तो तीनों बहनें सनाका खा गईं। उन्हें लगा अभी कहीं भाभी की एक के बाद एक यादें निकलने लगी तो मुश्किल हो जाएगी। भाभी सबसे बड़ी थी तो उन्होंने माँ का जहाँ तक है, सब देखा था। उनकी आँखों में सारा घर बसा था। सच ही है, माँ का कोठा तीनों बहनों की शादी में खाली होकर एक आलमारी तक सीमित रह गया था। जब वे आतीं, उसी में से कपड़े में लिपटे रूपये निकालकर देती।

'धर ले चुपचाप, बाबूजी को भी मत बताइयो, नहीं तो मिठाई माँ ना मगाएँगे अब जइ से कछु ले अइयो।'

सरला तो माँ के छिपाकर दिए रूपयों को भूल जाती और साड़ी-कपड़ा बच्चों के लिए तरह-तरह का सामान खरीदती,—'अरे छोटी भाभी आज बड़े मंदिर के पास की चूड़ी की दुकान पर चलेंगे।

'अरे हाय इत्ती सुंदर! ये मेरी नीली साड़ी से मैच कर रही हैं! क्यों चुन्नी काका, नगीने वाली नहीं हैं इनके इधर-उधर लगाने को'। सरला हर रंग की चूड़ी खरीद डिब्बा भर लेती फिर सेंडल-चप्पल बैक पिन एक-एक कर बाजार की कई दुकानों पर रुक रुककर बैग भर लेती। भाभी से तो कुछ नहीं बताती पर वह ससुराल में माँ के द्वारा दी गई सारी दुकान दिखा देती। पति का ऊपरी कमाई से कमाया रूपया भी नंबर एक हो जाता। ऊपरी कमाई अर्थात् दुकान में से जब-तब चीजें ऊपर-ही-ऊपर बेच, इधर-उधर का हिसाब बना देता। अकेले जब वह बैठता, तब चाय ही कई बार मँगानी पड़ती। अब कौन पूछे कि कौन आया था, जो दस चाय आ गई। पर छोटी बचत महाबचत, उसकी पत्नी का तो काम हो ही जाता। माल उतर जाता ढुलाई में मार देता। सरला के मायके का मान भी बना रहता।

नंदा को भी किसी चीज की कमी नहीं थी, उसका देवर जेठ का चक्कर ही नहीं था। अकेले ही का काम। काम वजन बनाने की मशीन का था शायद इसीलिए उस पर

वजन बढ़ रहा था। नंदा के पति का कहना था नंदा के लिए तो मुझे अब क्रेन बनाने का काम करना पड़ेगा।

नंदा का कहना था,—"पता नहीं हवा भी शरीर को लगती है, पानी भी पियो तो वजन बढ़ जाता है, कुछ भी तो नहीं खाती। और इससे कम कैसे खाऊँ।"

हाँ, तुम तो सूँघती हो, तभी तो सुबह से दस बार तो तुम्हारे हाथ में कुछ-न-कुछ देखता हूँ। जरा मठरी दीजो बड़ा जी ऊपर को आ रहा है, निम्बू का अचार खाऊँ अब, निम्बू का अचार खाना है तो मठरी का क्या काम?

अभी आगे वो सारी लिस्ट बताते, उसमें दो-एक पहले दिन की भी जोड़ देते कि नंदा हाथ में ली तश्तरी नीचे धर देती,—"लो नहीं खाऊँगी, भूखी मर जाऊँगी, तब उठाने को चार की भी जरूरत नहीं पड़ेगी।" उसके पति हँसकर प्लेट पकड़ाते, कहते,—"खाओ-खाओ कोई बात नहीं क्रेन के लिए लाइसेंस बनवा रहा हूँ, वही उठाकर ट्रेक्टर पर रख देगी।"

बच्चे मुँह घुमाकर हँसते पर बबुआ कहता,—'पापा रहने दो, मम्मा को मत तंग करो। फिर एक बात बताओ आपकी क्रेन घुसेगी कहाँ से खिड़की से'। नंदा रूठ जाती,—'हाँ-हाँ सब मेरे मरने का इंतजार कर रहे हैं तो भूखी क्यों मरूँ खा-पीकर चैन से मरूँगी।' और प्लेट हाथ में उठा लेती।

वही नंदा तीन बार उठंगी होकर भाभी के लिए उझक चुकी थी, क्योंकि जब भी भाभी आती, वो समझती भाभी चाभी लेकर आ रही है। पर भाभी,—'हाँ आई जिज्जी, बस जरा अन्नू जा टयूशन जा रहा है, उसे नाश्ता दे दूँ।' घुमा रही है भाभी और कुछ नहीं। शोभा ने जरा-सी नाक फुलाकर मुँह टेढ़ा किया। मम्मी की आलमारी के तीन बड़े खन तो नए-नए बर्तनों से भरे थे। एक में तो कई चाँदी के बर्तन थे। नंदा पंद्रह साल पीछे लौट गई।

'कहाँ? मैंने तो कभी नहीं देखे चाँदी के बर्तन, एक तश्तरी रखी देखी थी बस। खड़े खन में तो फिर बाबूजी के कोट बगैरह रखे थे। वो भी एक बार कसारी लग गई तो हटा दिए थे।' शोभा माँ का रखना-उठाना करती थी, उसे सबसे अधिक मालूम था, इसलिए उसे अधिक उत्सुकता भी नहीं थी, पर फिर भी बीच का खन तो बंद ताला लगा था, उसकी ओर शोभा ने कभी ध्यान ही नहीं दिया था, अब उसे अफसोस हो रहा था।

सरला कुछ गंभीर सी बोली,—'बाबूजी गए तब तो हमने कुछ देखना ही नहीं चाहा, क्योंकि माँ थी। पर अब तो माँ के ही....कहकर चुप हो गई क्योंकि उसे बड़ी भाभी फिर आती दिख गई, साथ ही छोटी भाभी भी थी।

"हाँ आओ सब, सबके सामने खोलते हैं हम तो आप जानती ही हो, अम्मा जी के जाने के बाद ही आए हैं, चाबी तो छोटी को ही मालूम थी।" अभी बड़ी भाभी की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि छोटी बोल पड़ी,—'ओ बाबा न, हमने अम्माजी की आलमारी कभी छुई भी नहीं। न हमें कुछ अलग से चाहिए। जो हो सब देख लो, बाँट लो, हाँ हमारे मायके का कुछ हो तो वो हम जरूर ले लेंगे और कुछ नहीं, क्योंकि हम तो सब लाकर अम्माजी को ही दे देते थे।'

तीनों बहनें एकदम चुप थी, क्योंकि यह बात तो तीनों को ही पता थी कि उनके नेग-टेले अम्मा आए-गए सामान से ही पूरे करती थीं और आया-गया बाद में तो बंद-सा ही हो गया था। पहले तो बौहार चलन से आ जाता था पर बहुत दिन से बौहार में अम्मा का जाना ही बंद हो गया था, घर बैठे आता नहीं था। बहुत सी रिश्तेदारी ही खत्म हो गई थीं। भाभियों के यहाँ से आया सामान ही उनके घर पहुँचा था, नहीं तो अम्मा कहाँ से लाती, पर एक आशा थी, शायद कुछ तो होना ही चाहिए।

बड़ी भाभी ने खुले पड़े कोठे को खोला और माँ की बड़ी आलमारी में चाबी लगाई। पूरे कमरे की लंबाई की बड़ी-सी आलमारी के दरवाजे के आगे पाँच जन स्तब्ध खड़े थे। पूरी आलमारी खाली थी। एक कोने में पाँच-छः साड़ियाँ कपड़े में लिपटी रखी थीं, जिन्हें ही पहनकर माँ ने न जाने कितनी शादी-त्योहार निपटा दिए थे। पहनती हाथ से ही सीधी कर-करके लपेटकर रख देती थी। एक आशा का संचार दूसरे कोने में गोटे पटे के खोलों में लिपटे कपड़े में बँधे सामान पर गया। सबसे पहले लाल कपड़े से बँधी थैली खोली गई। सबकी जन्मपत्रियाँ रखी थीं। गोल-गोल

लिपटी हुई। हरदेव शास्त्री जी ने बनाई थी हमारी जन्मपत्रियाँ। नंदा ने एक-एक कर सब जन्मपत्रियों को थोड़ा-थोड़ा खोलकर नाम देखा। अपनी-अपनी जन्मपत्री तीनों बहनों ने पकड़ी भाइयों की दोनों भाभियों ने वापस उसी थैली में डाल दी, क्योंकि खुद बाबूजी की भी जन्मपत्री थी।

एक बात है सबकी जन्मपत्री है, माँ की नहीं है, शोभा ने पत्रियाँ बाँधते कहा,—"अरी माँ तो कहती थी मेरी पत्री तो तेरे बाबूजी से बँध गई, अब काहे की पत्री। जन्म देने वाले कब के गए, उनके साथ सब गया।" जिनकी पत्री चाहिए थी, वहीं रखीं थी, क्योंकि हर ब्याह के पहले पत्रियाँ निकलती थीं और फिर रख जातीं।

एक कपड़े में लिपटा गोटा लगा छोटा-सा पीला कुर्ता टोपी और जरी की जैकेट निकली। एक कागज पर छोटे-छोटे दो हाथ हल्दी से छपे थे। ये हाथ के छापे बड़े भैया के होगें ये टोपी कुरता भी नानी घर से आए होगे न, उनके ही होंगे। कहकर सरला कुर्ते को खोलकर देख-देखकर हँसने लगी। भैया आ भैया, ले लेले भइया। तभी पीछे से बड़े भइया आ खड़े हुए,—"क्यों क्या बात है?"

"पहनो, भइया पहनो, आपका कुर्ता टोपी देखो भी माँ ने कैसा सँभालकर रखा था" हँसती हुई भाई के सर पर टोपी रखने लगी तो शोभा बोली,—"रुको फोटो ले लूँ।" रुको, कहकर मोबाइल से फोटो खींचने लगी। एक सैल्फी हो जाए, कहकर सब सिर-से-सिर जोड़ने लगे। कुर्ता भी सिर पर ही लगा दिया। सैल्फी खिच गई तो भइया बोले,—'हाँ तो कुछ माल-वाल मिला क्या? क्या छोड़ गई हमारी मइया हमारे लिए?'

तब तक भाभी ने लाल कपड़े में बँधी एक डिबिया निकाली, उसे खोला। पाँच पुड़िया रखी थीं हर पुड़िया में एक सूखी-सी भूरी-सी खाल का सा टुकड़ा था।

'अरे ये क्या है? माँ ने इत्ते सँभाल कर रखा है।' शोभा बोली।

'आप सबकी नाल है।' भाभी को पता था कि नाल रखी जाती है, क्योंकि माँ ने उनके बच्चों की भी उनसे रखवाई थी। सारी पुड़ियाएँ खोलकर एक-दूसरे को देख रहे थे। कौन-सी किसकी नाल है अब यह कैसे पता लगे?

'तो करना क्या है?' भैया बोले, 'इनका क्या होगा।'

'कहते हैं न हमारी नाल यहाँ गड़ी है। हमारा घर है। घर तो पहले बना है तो आपकी तो किसी की नाल यहाँ गड़ी ही नहीं है। अब सब अपने-अपने घर बनवाओ और वहाँ गड़वाना', बड़ी भाभी ने आलमारी के पल्ले बंद करते कहा।

'पर इसमें से कौन-सी किसकी है यह कैसे पता लगे?' शोभा ने कंधे उचकाए, फिर हँसते हुए बोली,—'मैं अपने घर में जो नाल गड़वाऊँगी। वो छोटा भइया आकर कहेगा, यहाँ तो मेरी नाल गड़ी है?'

'क्या है न हमारे नए मकान बन रहे, बन भी जाएँगे तो घर के बच्चों की नाल गड़ेगी। हमारी कौन गाड़ेगा, कुछ नहीं सब एक ही बात है। एक-एक रख लो। हैं तो एक ही माँ-बाप की औलाद।' नंदा ने एक-एक पुड़िया सबके हाथ पर रख दी।

सब अपने-अपने हाथ की पुड़िया कसकर पकड़े बाहर निकल आए। जैसे सन्नाटा-सा पसर गया हो एकाएक, शोभा बोली, भइया हमारी नाल यहीं रहने दो, इसे आप बनवाओ तो उसी में गाड़ देना, नंदा दीदी सही कह रही हैं, वहाँ हमारी नाल को कौन गाड़ेगा? वहाँ अगर मकान बनेगा तो उनकी नाल गड़ेगी, मेरी नाल थोड़ी गड़ेगी। मैं जानी तो इसी घर की जाती हूँ न तो नाल भी मेरी यहीं रहेगी।' शोभा, सरला ने भी डिबिया में पुड़िया रख दी और बोलीं,—'हाँ भइया, हमें यहीं रहने दो यहाँ कम-से-कम हम रहेंगे तो वहाँ तो पता नहीं कहाँ जाएँगे।' बड़ी भाभी ने कपड़े में लिपटी माँ की साड़ियाँ तीनों बहनों के हाथ पर रख दीं। कुछ देर जैसे एक शांति-सी छा गई। गोद में रखी भाभी की दी माँ की साड़ी पर उनका हाथ कस गया जैसे माँ का मुलायम हाथ उनके हाथ में हो।

❖

सप्तर्षि अपार्टमेंट्स, जी-9, ब्लॉक-3, से-16 बी
सिकन्दरा आवास विकास, आगरा-282010
मोबाइल : 9319943446

माँ की वजह से जिंदा हूँ

— अर्चना पैन्यूली

माँ अठ्ठाइस की और वह अठ्ठावन का। उसकी बेटियाँ माँ की उम्र की थी, और माँ का बाप उसकी उम्र का। "मुझे रंडी नहीं बनना। छोड़ो मेरा हाथ, वरना मैं शोर मचाऊँगी," माँ ने उसे धमकी दी। माँ चिल्लाने को हुई तो उसने डर कर माँ का हाथ छोड़ दिया।

माँ ने यह बात कइयों को बताई, पिताजी को भी। पिताजी माँ पर ही शक करने लगे। उनका आपस में झगड़ा होने लगा। माँ वह घर नहीं छोड़ना चाहती थी, क्योंकि माँ को उस घर की मालकिन से बहुत अच्छे पैसे मिलते थे। साथ में कपड़े-लत्ते और खाना-पीना अलग मिलता था। और उनकी शादीशुदा लड़की जो उनके पड़ोस में रहती थी, वहाँ भी माँ काम करती थी।

"कपड़े महँगे हैं, जला मत देना।"

"जलने की बात बिलकुल मत करो-कतई नहीं,"—गहरी आवाज में, उंगली दिखाता हुआ वह जिस अंदाज में मुझसे बोला, मैं थोड़ा सकपका गई।

वस्त्र चादर में बाँधकर वह चलता बना।

दिल्ली के वसंत कुंज के एक आवासीय परिसर में हमने अपना नया घरोंदा बसाया ही था। बारह सालों बाद भारत लौटकर रहने आए थे। पति की रामबोल्ल बहुराष्ट्रीय कम्पनी ने उन्हें दो वर्षों के लिए डेनमार्क से भारत भेजा था। इतने वर्षों बाद अपने देश में आकर फिर से रहना थोड़ा अपरिचित और अजीब-सा था। बच्चों को तो बिलकुल ही भिन्न परिवेश और सामाजिक मानदंडों से स्वयं को समायोजित करना पड़ रहा था। फिर भी यह अपना देश था, अपनी खूबियों और कमियों के साथ।

वैसे हमें यहाँ अपने नए घर में बसने में समय कम लगा, क्योंकि सेवा प्रदाता कुशल कारीगरों को हम हायर कर सकते थे और पड़ोसी मददगार थे। भारत के प्रत्येक प्रांत के लोग इस आवासीय परिसर में रह रहे थे—गुप्ता, जोशी, शर्मा, नायर, राव, बहुगुणा, भारद्वाज, अय्यर, सेठी, सूरी, सिंह, बनर्जी, जौहरी... दरवाजों की नेमप्लेटों पर गड़ा हुआ था। कुछ परिवार ऐसे भी थे, जो विदेश में रह चुके थे। कोई अमेरिका दस वर्ष बिता कर आया था, कोई दुबई, कोई जापान, कोई यूरोप रह चुका था। सो हमें अपने जैसे लोग मिल गए थे। मगर मेरा ध्यान सोसाइटी में मँडराते-गार्ड, माली, धोबी और बाइयों की तरफ अधिक खिंच जाता, क्योंकि वे मुझे यूरोप में नहीं देखने को मिलते थे।

सोसाइटी में पाँच ब्लॉक थे। हमने बी-ब्लॉक की छठी मंजिल में एक थ्री-बीएचके का फ्लैट कम्पनी लीज पर लिया था। अच्छा, बड़ा, खुला और हवादार फ्लैट, साथ में सर्वेंट रूम जो हम गेस्ट रूम के रूप में इस्तेमाल करते थे। परिसर में बाग, जॉगिंग ट्रैक, जिम, बैडमिन्टन कोर्ट,

स्वीमिंग पुल, ब्यूटी पार्लर, दर्जी वगैरह सभी सुविधाएँ मौजूद थीं।

हर ब्लॉक की इमारत में आठ मंजिलें थीं। सबसे नीचे की मंजिल में लिफ्ट के पास बेचारा गार्ड खाकी वर्दी पहने सुबह से शाम तक एक लकड़ी की कुर्सी पर बैठकर पहरा देता। शिफ्ट बदलती और रात आठ बजे दूसरा गार्ड आ जाता। रात आठ से सुबह आठ बजे तक वह ड्यूटी पर तैनात रहता–पूरे बारह घंटे। वेतन उनका मात्र पाँच–छह हजार रूपये प्रति माह। ब्लॉक में रहने वाली कुछ औरतें सुबह और शाम गार्ड को चाय और बिस्कुट भिजवा देतीं। मैं भी उनकी टोली में शामिल हो गई। अगर किसी ने नहीं भिजवाया तो वह एक प्याली चाय के लिए भी तरस जाता। मेरी अनुपस्थिति में गार्ड अमेजन, फ्लिपकार्ट से आया मेरा कूरियर, पार्सल वगैरह ले लेता। मैं उसे उसकी इस सेवा के लिए जब–तब पचास, सौ रूपये पकड़ा देती।

देखा जाए तो भारत आकर मुझे बहुत आराम था–घरेलू काम करने वाली बाई, कार की सफाई करने वाला, दूध वाला, धोबी, सुरक्षा गार्ड, मोची, इलेक्ट्रिशियन और प्लंबर. ..। विदेश में बारह साल रहकर और वहाँ अपने हाथों से सब काम करने के बाद भारत में यह सब सुविधाएँ अय्याशी लग रही थी। ऐसा नहीं था कि वहाँ ऐसे लोग मौजूद नहीं थे कि जो आपको ऐसी सेवाएँ प्रदान न कर सकें, मगर उनके रेट और मजदूरी इतनी अधिक रहती है कि हम जैसों के लिए वहाँ करना मुश्किल रहता है। कभी–कभी, जब मैं बहुत थकी रहती थी तो डेनमार्क में घर साफ करने वाली श्रीलंकन मैथुली को बुला लेती थी। सौ क्रोनर प्रति घंटा उसके रेट थे, जो कि डेनमार्क में श्रम की जो मानक दरें थी, उससे कम ही थे। तीन घंटे वह मेरा घर साफ करने में लगाती थी। उसकी हर विजिट के मुझे तीन सौ क्रोनर, यानी तीन हजार रूपये उसके हवाले करने पड़ते। यह धनराशि मुझे बहुत अधिक लगती थी। इससे अच्छा तो खुद ही घर साफ कर लूँ। वहाँ समाज के विभिन्न वर्गों के बीच इतनी अधिक विषमता और विसंगति नहीं थी जितनी कि भारत में। मन बहुत कुछ सोचने को मजबूर कर देता।

बहरहाल हमारे अपार्टमेन्ट के ठीक सामने एक अय्यर परिवार था, जहाँ चार पीढ़ियाँ एक साथ रह रही थीं। इतने सारे लोग, विभिन्न आयुवर्ग के कैसे एक साथ पूरे सामंजस्य से रह लेते हैं, यह भी हमारे लिए अब एक कौतुक का विषय था। घर के मुखिया राम कुमार अय्यर थे। उनके बूढ़े माता–पिता, उनके जवान बेटे–बहू और एक पोता। अय्यर जी कोई कम्पनी चलाते थे। बेटे–बहू मल्टीनेशनल कम्पनियों में जॉब करते थे और उनकी पत्नी घर की देखभाल, बूढ़े सास–ससुर की सेवा और सभी के खाने–पीने का इंतजाम। बेटे–बहू की लव मैरिज हुई थी तो बहू मूलत: उत्तराखंड की गढ़वाली थी। इधर मैं भी गढ़वाली। यह कनेक्शन हमें और करीब ले आया। उनका बेटा शाम को ऑफिस से आने के बाद और वीकेंड्स में मेरे बेटों के साथ बैडमिन्टन, वॉलीबॉल खेल लेता। मेरे किशोर बेटों को उनके बहू–बेटे का साथ बहुत भाता।

अय्यर जी का भरा–पूरा परिवार हमें बहुत संभ्रांत लगा। हमारे लिए बहुत बड़ा सहायक। जब हम यहाँ नए–नए पहुँचे थे और बसने की प्रक्रिया में थे तो उनका परिवार कभी हमें चाय पर अपने घर बुलाता तो कभी भोजन का निमंत्रण देता। कभी उनके घर दक्षिण भारतीय व्यंजन खाने को मिलते तो कभी पहाड़ी पकवान। किसी जमाने में राम कुमार अय्यर के पिता तमिलनाडू से दिल्ली आकर बस गए थे। कहते,–"जैसे तुम डेनमार्क में अप्रवासी हो, वैसे ही हम दिल्ली में अप्रवासी हैं।"

सो यहाँ मुझे हर प्रांत, हर वर्ग, हर तबके, हर रंग–रूप के लोग नजर आते। भारत कभी–कभी एक चिड़ियाघर जैसा लगता। सोसाइटी का धोबी रजत मुझे विशेष रूप से आकर्षित करता। हरेक रविवार वह सुबह, पौ फटते ही हमारे बी–ब्लॉक के सभी घरों से चाबियाँ एकत्र करता और बेसमेंट में खड़ी हम सभी की गाड़ियाँ साफ करके चाबियाँ

हमें वापिस थमा जाता। उसकी फीस एक कार साफ करने की मात्र दो सौ रूपये प्रतिमाह। सभी घरों से चाबियाँ इकठ्ठा करना और वापस उसे सभी घरों में देना ही काफी मशक्कत वाला काम था। मैं उससे बोली कि वह अपने रेट बढ़ा दे। विदेश में रह कर मुझे श्रम की कीमत पता चल चुकी थी।

कार साफ करने के अलावा रजत इस्तरी करने का भी काम करता। वह लोगों के घरों से कपड़े इकठ्ठा कर अपनी टाल में जाता, और प्रेस करके लोगों के घर पहुँचा देता। उसकी पत्नी सोसाइटी में लोगों के घरों में बाई के काम में लगी थी। मेरे घर भी लगी थी। उनका दो साल का लड़का भी उनके साथ मँडराता। मुझे उन तीनों से बड़ी आत्मीयता हो गई। वह सारा परिवार मुझे जीवन के लिए संघर्ष करते हुए मगर बहुत खुश दिखता। कई बार तो रजत लिफ्ट लेने के बजाए फुर्ती से आठ मंजिल इमारत की सीढ़ियाँ यों ही चढ़ जाता। वह एक साफ रंग, लंबा और गठीले बदन का युवक था। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि अगर वह अच्छी पैंट-शर्ट पहने तो किसी हीरो से कम नहीं लगेगा। हाँ, उसकी बीवी गहरे साँवले रंग की बेहद सामान्य रंग-रूप की महिला थी। अपने पति से अपेक्षाकृत बहुत कम सुंदर। बेटा अपने बाप पर गया था।

कई बार जब रजत हमारे घर कपड़े लेने आता तो उसके साथ उसका बेटा, अनसु भी होता। मैं अनसु को चॉकलेट देती। कभी बिस्कुट का एक डिब्बा थमा देती। "आंटी को थैंक यू बोलो,"—रजत अपने बेटे को सिखाया करता।

रजत को मालूम था कि मैं उसमें अतिरिक्त जिज्ञासा लेती हूँ, उसकी परवाह करती हूँ, उस नाचीज की इज्जत करती हूँ। आत्मसम्मान से उसकी आँखें उन्मत्त हो जाती। वह जब भी मेरे सामने पड़ता, थोड़ा इतरा जाता। मुझे उसका यह भाव और अंदाज और लुभा जाता।

मेरे कहने पर रजत ने अपने रेट दो सौ रूपये से बढ़ा कर ढाई सौ रूपये प्रति माह कर दिए। इस मामूली-सी वृद्धि पर सोसाइटी में इतना हंगामा मच गया। जो जितना अमीर, वह उतना ही प्रतिवाद कर रहा था, जबकि मैंने देखा कि इस लग्जरी कॉम्प्लेक्स में उच्च आय वर्ग के लोग रहते हैं, तमाम सुख-सुविधाओं से लैस। महँगी गाड़ियों में घूमते हैं। मॉल जाकर एक बार में हजारों रूपये उड़ा देते हैं। उस गरीब के जरा-से रेट बढ़ने पर हायतौबा मचा दी, जबकि उन गरीबों के बिना उनका काम नहीं चल सकता।

उस शाम जब रजत मेरे घर कपड़े देने आया तो उसका मुँह लटका हुआ था। बुझे स्वर में बोला,—"आर.डब्लू.ए. के सेकेट्री तक गई है मेरी शिकायत। नहीं बढ़ने दिए लोगों ने मेरे रेट। धमकी मिली है कि अगर ज्यादा बनूँगा तो इस सोसाइटी के अंदर मेरा और मेरी बीवी का आना बंद करवा दिया जाएगा। सबसे ज्यादा एतराज आपके पड़ोसी ने किया।"

"अय्यर जी ने?"

वह चुप रहा। आँसू उसकी आँखों में झिलमिलाने लगे। मेरा दिल पसीज गया।

अय्यर जी के घर में तीन कारें थीं। एक बेटे की, एक बहू की और एक उनकी खुद की। रजत के पचास रूपये प्रति माह रेट बढ़ाने की बात पर सबसे ज्यादा हो-हल्ला उन्हीं ने ही मचाया। मगर उनके घर में कमाने वाले भी अधिक थे।

मेरा सोलह साल का बेटा मनेश जो सबकुछ देख-सुन रहा था, मुझसे पूछने लगा,—"यहाँ मिनिमम वेजेज (न्यूनतम मजदूरी) क्या है?

"यहाँ कोई न्यूनतम मजदूरी नहीं है," मैं बोली।

खैर हम क्या कहते? व्यक्तिगत तौर पर हमारे अय्यर जी से संबंध बहुत अच्छे थे। वे हमारे अच्छे पड़ोसी थे। मगर मुझे थोड़ी हैरत हुई कि अय्यर जी जो इतने सहृदय, उदार प्रतीत होते हैं, इतने धनाढ्य हैं, किसी गरीब के जरा से

क्रमशः ..... पृष्ठ 50 पर

सरोज रानियाँ

— डॉ. वंदना मुकेश शर्मा

मैंने कहा, सरोज, मैं तुम्हें लेकर बहुत चिंतित थी, तुम मेरी बेटी की उम्र की हो, तुम्हारे मन में कोई भी बात है तो बिना डरे तुम मुझसे बात कर सकती हो।
मैडम! जी...मैं फँस....उसका गला रूँध गया। मैंने पानी का गिलास लाकर उसे दिया और कंधे पर सांत्वना-भरा हाथ रखा। मेरे हाथ रखते ही उसके मन में बँधा सैलाब आँखों से टूट निकला। क्लास शुरु होने में लगभग 20 मिनिट थे। मैं उसके सामने कुर्सी पर बैठ गई। मैं चाहती थी कि वह कुछ बोले, लेकिन उसकी आँखों से आँसू रुकने का नाम न ले रहे थे। मुझे उसका रोना उसके सवास्थ्य के लिए जरूरी लगा। मेरे कान दरवाजे पर थे और मैं उसका हाथ दबाए धीरज बँधा रही थी, पर सच तो यह था कि मेरा मन उसकी कहानी जानने को बेचैन था।

क्लास में घुस ही रही थी कि मिसेज चौडवेल की आवाज से मेरे चाबी ढूँढते हाथ अनजाने ही सहम गए।

"दैट्स हाऊ वी टीच! इफ यू डोंट लाईक, यू मे गो टू सम अदर क्लास!".....

एक सन्नाटा छा गया। मैं अब तक चाबी ही ढूँढ थी या हाथ में चाबी भींचे थीं। फिर किसी के चलने की आवाज आई, मैंने चाबी जेब से बाहर निकालकर 'की-होल' में डाल दी। वह आवाज भी पास आ गई तो मैंने मुड़कर देखा। एक पचपन-साठ के लगभग, साधारण कद-काठीवाली औरत लंबा जैकेट पहने मेरे एकदम पास से निकल गई। उसी के पीछे-पीछे सिर झुकाए सलवार कमीज पहने एक नवयौवना चली गई।

अगले दिन क्लास शुरु होने के पहले बोर्ड पर तारीख़ ही लिख रही थी कि दरवाजे को किसी ने धीमे-से खटखटाया। मैंने कहा,—"प्लीज कम इन"।

मैंने पलटकर देखा, तो वही कलवाली लड़की सिर झुकाए खड़ी थी। मैंने कहा,

बोलिए, क्या बात है?

मैडम, मैं इंग्लिश बोलना सीखना चाहती हूँ। मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ। क्या मैं आपकी क्लास में आ सकती हूँ? वह सकुचाते हुए सिर झुकाए ही बोली।

मैंने कहा,—"क्यों नहीं, जरूर। पर आप तो मिसेज चौडवेल की क्लास में हैं न"?

लड़की ने अब चेहरा उठाया। चेहरा क्या था, किसी कलाकार की सुंदरतम कृति मेरे सामने साक्षात खड़ी थी। सहमी हुई कातर दृष्टि! और हिरणी-सी कटीली, पनीली, बोलती हुई, जानदार आँखें। गोरा, खिला हुआ रंग, चेहरे पर

एक अजीब किस्म का आकर्षक ठहराव। पतली-दुबली। मेरी आँखों के सम्मुख, सीता, सावित्री, शकुंतला सब एक साथ घूम गईं। क्या वे ऐसी दिखती होंगी? वह वास्तव में सुंदरता की मूरत थी। उसके सारे निरीक्षण में तीस सेकेंड से भी कम का समय लगा। उम्र लगभग तेईस, मेरी अपनी बेटी के बराबर।

मैंने तुरंत उसे सामने बैठने का इशारा किया। मानो, मैं उसे खोना नहीं चाहती थी। मेरे हाँ कहते ही उसके चेहरे का तनाव भी कम हो गया। फॉर्म भरते हुए पता लगा कि वह दो साल पहले शादी के बाद यहाँ आई है। यहाँ घर में सास-ससुर, पति और एक देवर के साथ रहती है। मुझे अच्छा लगा कि उसकी सास उसे पढ़ने भेज रही है। उसने यह भी बताया कि उसके पति का परिवार यहाँ पैंतीस सालों से है। उसके पति और देवर यहीं की पैदाइश हैं। वे पढ़े-लिखे भी यहीं हैं। वह मेरी क्लास में आने लगी। सरोज नाम था उसका। काफी जहीन थी, उसने पहली परीक्षा पहले तीन महीनों में ही कर ली।

वह ठीक एक बजने में पाँच मिनट पर आती और तीन बजे क्लास खत्म होते ही सबसे पहले निकल जाती। उसे लेने के लिये वही महिला आती थी, जिसके साथ मैंने पहले दिन देखा था। सरोज सामान्यतः शांत रहती थी, गंभीर प्रकृति की थी। कभी किसी बात पर उसकी आँखें हँस पड़ती तो मुझे बहुत खुशी होती।

रोजमर्रा की जिंदगी की विभिन्न परिस्थितियों में हमारे विद्यार्थी बोलचाल की अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कर सकें या लिख-पढ़ सकें, कुछ इसी तरह के विषयों पर आधारित होती थी हमारी दो घंटों की क्लास। डॉक्टर के यहाँ पंजीकरण कैसे करना, बैंक, पोस्ट-ऑफिस में क्या बात करना, खरीददारी से संबंधित शब्दावली, 'सोशल सर्विसेज' आदि विषयों पर जानकारी, आपातकालीन सेवाओं के महत्वपूर्ण नंबर आदि विषयों की जानकारी, से विद्यार्थियों को इंग्लैंड के जीवन से परिचित कराता था। इसी के साथ-साथ इन परिस्थितियों में अंग्रेजी भाषा के अभ्यास से इन विद्यार्थियों का आत्मविश्वास भी बढ़ता था।

मैंने महसूस किया कि सरोज का चेहरा कुछ निस्तेज-सा लगने लगा था। मैंने सोचा, नई शादी हुई है, संभवतः गर्भवती हो। एक दिन वह कुछ जल्दी आ गई, मैं पढ़ाने की तैयारी कर रही थी।

मैंने उसे पूछा,—"कैसी हो सरोज, आजकल बहुत सुस्त, नजर आ रही हो, कहीं प्रेगनेंट तो नहीं हो?"

उसकी आँखों में एक क्षण के लिए एक व्यंग्यात्मक मुस्कान आई, लेकिन बोली कुछ नहीं।

मैंने फिर उकसाया,—"शरमाओ नहीं, तुम्हारी उम्र की ही मेरी बेटी भी है।" शायद इस बात से उसे कुछ तसल्ली मिली। बोली,—"मुझे ऐसा कुछ नहीं होगा!"

उसके स्वर की कड़वाहट से मैं सन्न रह गई। लेकिन तभी अन्य लोगों के आने से वह एकदम सजग होकर बैग में से किताब निकालने लगी। मैं भी चुप तो हो गई लेकिन उसकी बात से मेरे मन में अनेक प्रश्न उतराने लगे। फिर सप्ताह निकल गया, कोई बात न हो सकी।

इधर दूसरी महिलाओं से मुझे पता चला कि उसे क्लास के अलावा कहीं जाने की इजाजत नहीं है। वह औरत जो रोज क्लास खत्म होने से पहले ही आ जाती है, वह इसकी सास की सहेली है, जो स्कूल में सफाई का काम करती है। फिर एक दिन वह जल्दी आ गई। उसका उतरा चेहरा देख कर मेरा दिल किया कि उसे अपने सीने से लगा कर पुचकारूँ और पूछूँ कि क्या बात है। लेकिन ऊपरी तौर पर मैंने उसके हालचाल भर पूछे। वह मेरी टेबल के पास आकर खड़ी हो गई।

मैंने पूछा, तबियत तो ठीक है सरोज?

जी, वह बोली।

क्रमशः ..... पृष्ठ 53 पर

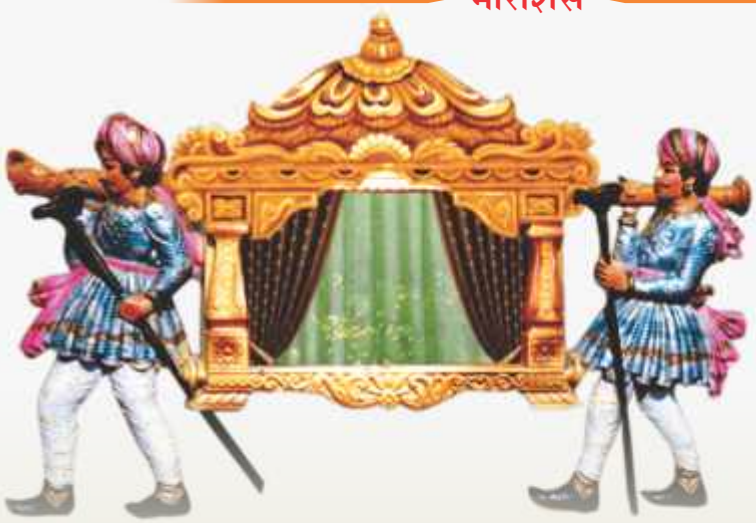

डोली के उस पार

— रामझीतन नारायण करिश्मा देवी

कहते हैं भगवान के घर में देर है किंतु अँधेर नहीं। धीरे-धीरे समाज और रिश्तेदारों को समझ में आने लगा कि जिस दीया को तिरस्कृत किया गया वह खुद जलकर औरों को प्रकाश देती रही। दीया ने प्रमाणित कर दिया, मारने वाले से ज्यादा बचाने वाला बड़ा होता है। दीया नि:स्वार्थ रूप से अपनी सास की सेवा करती गई और अंतत: अपने प्यार और समर्पित भाव से उसने अपनी सास का मन जीत लिया। शायद समाज और रिश्तेदारों के लिए दीया आज भी बस एक बहू है, लोग कहेंगे कि यह बहू का कर्तव्य है कि वो सास-ससुर की सेवा करे। लेकिन दीया के लिए उसकी सास उसकी माँ समान है। डोली के उस पार बिरले ही दीया को ज्यादा सुख नसीब न हुए, फिर भी वह आदर्श पत्नी की तरह अपने कर्तव्यों को निभाती गई।

हर लड़की की तरह दिल में कुछ अरमान लिए, आँखों में कुछ सपने लिए और माँ-बाप का आशीर्वाद लिए दीया डोली में जा बैठी। 10 साल किसी से प्यार करने के बाद, आज उसकी शादी उसी शख्स से हुई, जिसे वो बचपन में ही अपना दिल दे चुकी थी। दीया अपने आप को सौभाग्यशाली मानने लगी, क्योंकि आज उसका प्रेमी उसका जीवन-साथी बन गया है।

डोली में चढ़ते ही न जाने क्यों दीया को अजीब-सा डर सताने लगा, अनेक विचार उसके मन में आने लगे।

क्या ये बाबुल का घर छोड़ने का डर था? या फिर डोली के उस पार, उस नए परिवार में जाने की झिझक थी?

इस बात को कोई नहीं जानता, कल का सूरज कौन-सा रंग लेकर आएगा! शादी के दूसरे दिन, जैसे ही दीया उठी, हर लड़की की तरह उसने भी माना-अब ये मेरा परिवार है, मैं बहू नहीं, बेटी बनकर दिखाऊँगी। माँ-बाप के घर में जिस नन्हीं जान ने एक ग्लास पानी तक उठाकर नहीं पीया, उस नादान ने ससुराल वालों का मन-जीतने के लिए अत्यंत परिश्रम किया। हर-रोज वह मुँह अँधेरे उठती, चाय-नाश्ता बनाती, पति के लिए खाना तैयार करती, घर-गृहस्थी की सभी जिम्मेदारियों को निभाने के बाद तब वह नौकरी पर जाती। शिक्षित महिला होने के बावजूद दीया घर और नौकरी में सुडौलपन बनाकर रखती, मानो जैसे उसने डोली के उस पार अपने आपको समर्पित कर लिया हो। न दिन देखा, न रात देखी, वह श्रद्धा से अपने गृहस्थ जीवन को निभाती गई।

शादी को 3 महीने हो गए। एक छोटे कमरे में जहाँ पति-पत्नी ने अपने दांपत्य जीवन का शुभारंभ किया, आज वो कमरा एक बड़े मकान में परिवर्तित हो गया। दंपति एक साथ बहुत खुश थे। दोनों एक-दूसरे का साथ देते हुए आगे बढ़ रहे थे। लोगों को लगा दीया अपनी दुनिया में बहुत खुश

थी। पर किसको पता था कि वो छोटी से गुड़िया अपने अंदर दुखों का पहाड़ झेलती हुई, आगे बढ़ रही थी! उसकी हरेक मुस्कान के पीछे एक दर्दनाक कहानी छिपी हुई थी।

जिस परिवार को दीया ने अपना माना, अपना सब कुछ वहाँ समर्पित कर दिया, वहाँ पर वो बेटी तो क्या, बहू भी न बन पाई! ससुराल में उसको अपनी सेवा के बदले प्यार नहीं, तिरस्कार प्राप्त हुए। उसकी निष्ठा नहीं देखी गई बल्कि उसके भद्दे रूप पर ताने कसे गए। उसके गुण की प्रशंसा नहीं की गई बल्कि उसके कुरूप शरीर पर हँसी उड़ाई गई। जो बच्ची पहले माँ-बाप की आँखों का तारा थी, उसी को आज ससुराल वाले कुरूप मानकर अपमानित करते रहे। शिक्षित एवं स्वतंत्र होने के बावजूद दीया ने न जाने क्यों चुप्पी की आवाज धारण कर ली और सब कुछ सहन करती गई। बोलती भी तो किससे? डोली के उस पार उसका अपना कौन था? घर तो उसका अपना हो गया पर घरवाले उसके अपने न बने।

होलिका-दहन की रात्रि आई। दीया रोज की तरह घर के कामों में व्यस्त थी, जब एकाएक उसको सास की कर्कश ध्वनि सुनाई दी—"अरी दीया, दीया! कहाँ हो? दीया!" उस स्वर को सुनते ही दीया के पसीने छूटने लगे, न जाने कौन-सा भय उसके पूरे शरीर को घर कर गया। उसकी सास तूफान की तरह उसके निकट आई, गाली-गलोज करते हुए, उसने दीया का हाथ पकड़ा और उसको वहाँ से हमेशा के लिए चले जाने को कहा।

दोष किसको दें? उस समाज को जिसने बेटियों को डोली के उस पार हमेशा चुप रहने की सीख दी हुई थी! पूर्व जन्म के अच्छे पुण्य होंगे, होलिका-दहन की रात्रि स्वयं विष्णु भगवान दीया को बचाने की राह दिखाई। उस काल में दीया का काली रूप देखने लायक था। कौन कहता है कि नारी अबला होती है? वो गुड़िया जिसके कंठ से एक स्वर नहीं निकलता था, उसने अपनी चुप्पी का बाण तोड़ा, अपने घर, परिवार को बचाने के लिए, वक्त पड़ने पर एक नारी, अबला से सबला बनकर उस पर अत्याचार करने वाले पर तबला बजा सकती है। उस रात दीया समझ गई कि चुप रहने के बावजूद ससुराल वाले उसके त्याग एवं परिश्रम को अपना न पाए। सास का विरोध करते हुए दीया ने अपनी बातों को स्पष्ट रूप से कहा। उसके सुकर्मों के अच्छे फल से उस वक्त उसके पति ने उसका साथ दिया। बेटे को अपनी पत्नी का साथ देना माँ को खटकने लगा और उस अँधेरी रात में दोनों (दीया और उसके पति) को घर से निकाल दिया गया।

समाज!!! समाज को क्या लगा! एक बहू ने माँ और बेटे को अलग-अलग कर दिया?

रिश्तेदार!!! उनको क्या लगा? बहू ने घर में फूट डाल दी?

ये कैसी नियति है? समाज प्रश्नसूचक रूप से हमेशा बहू को क्यों देखता है? बहू जो कुछ करती है उससे समाज क्यों कभी संतुष्ट नहीं होता है? वही काम जब बेटी करती है, तब उसे प्रशंसा मिलती है, पर वही बेटी जब किसी के घर बहू बनकर जाती है और वही काम करती है तो क्यों समाज उसका तिरस्कार करता है? रिश्तेदार बहू को घर के भीतर रह रही अजनबी औरत क्यों मानते हैं? बहू अपने आप को आजीवन समर्पित करने के बाद भी आज क्यों पराई मानी जाती है? क्या बहू होना अपराध है? जब बेटी रोती है, तब समाज देख पाता है, लेकिन जब बहू रोती है तो वही समाज क्यों अंधा पड़ जाता है? क्या बहू की पुकार, उसकी सिसकियाँ, उसकी चीख, उसके दुख हीन हैं? क्या बहू का प्यार कोई मायने नहीं रखता? एक बहू कुल-वंश को आगे बढ़ाती है, फिर भी समाज, ये रिश्तेदार, उसको मान क्यों नहीं देते हैं? बहू की हरेक नीयत पर प्रश्न क्यों उठाया जाता है?

निस्संदेह घर से निकाले जाने के बाद भी पति का साथ दीया को सबसे प्यारा था। कड़ी मेहनत, श्रम के बाद, पति-पत्नी ने अपनी एक नई दुनिया बसाई। महल तो नहीं, बस उन्होंने एक छोटी सी कुटिया बना दी, जहाँ मात्र प्यार और सम्मान था। फिर भी न जाने क्यों हमेशा दीया को ये

बात खटकती रहती कि उसके ससुराल वाले क्यों उसके त्याग के बावजूद उसे अपना न सके? क्या उसने माँ-बेटे को अलग कर दिया था? दोष आखिर किसका था? दीया के पास प्रश्न अनेक थे, लेकिन उन प्रश्नों को हल करने वाला कोई नहीं था।

उस बात को दो साल बीत गए। वक्त ने ऐसी करवट बदली कि वो दृश्य स्मरण करने योग्य था। पति-पत्नी अपने प्यार के घोंसले में रात का भोजन कर रहे थे, जब दरवाजे पर किसी के खटखटाने की आवाज सुनाई दी। एक निर्बल महिला, ठंड में काँपती हुई दरवाजे के बाहर खड़ी थी। आँखों में आँसू और बेबसी थी। उसके पूरे शरीर से बुरी गंध आ रही थी, मानो जैसे कोई कई सालों से नहाई न हो। वो महिला आश्रय की भीख माँग रही थी। जिसने दीया को एक रात घर से बेघर कर दिया था, आज वो खुद आश्रय माँगने आई थी! दीया की निर्दय सास संक्रामक रोग से ग्रस्त थी इसी कारण उसके परिवार वालों ने उसे घर से निकाल दिया था। वही समाज जो पहले दीया पर लांछन उठा रहा था, आज उसी समाज ने उसकी सास को अकेला छोड़ दिया। स्वाभाविक है उस वक्त उस सास को बेटे और बहू की याद आई।

किस्मत का खेल देखो, बेटे ने साफ-साफ शब्दों में अपनी संक्रामक माँ को वहाँ से निकल जाने का निवेदन किया। बेटा अपने संसार में पुनः कलह नहीं चाहता था। जिसको कुरूप मानकर घर से निकाल दिया गया था, आज दीया उसी अत्याचार करने वाली महिला को अपने घर के भीतर क्या आने देगी? अच्छे परिवार, अच्छे संस्कार से पली-बड़ी दीया को उस माँ के आँसू देखे न गए। विधि का विधान देखो, जिसको पराया समझा गया, उसने एक माँ के दुख को समझा, उसके दुख को अपना माना। ये दीया के अच्छे गुण नहीं तो और क्या थे? इसमें कोई शक नहीं कि अच्छी परवरिश का अच्छा परिणाम ही होता है।

दीया ने सम्मानपूर्वक अपनी सास को अंदर बुलाया। उनको नहाया-धुलाया और पेट भर भोजन खिलाया। जहाँ उस माँ के अपने बच्चे उसके संक्रामक रोग होने के कारण उसके निकट आने से हिचकिचाते थे, वहीं दूसरी ओर दीया पराई होते हुए भी अपनी सास की सेवा करती गई। दीया ने पानी की तरह पैसा बहाया और प्राइवेट अस्पताल में अपनी सास का इलाज करवाया। स्थिति इतनी दयनीय हो गई कि दीया को अपने प्यार के आशियाने (अपना घर) को बेचकर अपनी सास का इलाज कराना पड़ा। उसके हरेक फैसले में उसके पति ने, एक आदर्श जीवन साथी की तरह उसका साथ दिया। पति-पत्नी, दोनों दिन-रात मेहनत करने लगे और इलाज के लिए पैसे जुटाते रहे। दीया रोज अस्पताल जाती और निस्वार्थ भाव से निर्दय सास की सेवा करती रही। कई महीनों के इलाज के बाद उसकी सास बिल्कुल ठीक हो गई।

कहते हैं भगवान के घर में देर है किंतु अँधेर नहीं। धीरे-धीरे समाज और रिश्तेदारों को समझ में आने लगा कि जिस दीया को तिरस्कृत किया गया, वह खुद जलकर औरों को प्रकाश देती रही। दीया ने प्रमाणित कर दिया, मारने वाले से ज्यादा बचाने वाला बड़ा होता है। दीया निःस्वार्थ रूप से अपनी सास की सेवा करती गई और अंततः अपने प्यार और समर्पित भाव से उसने अपनी सास का मन जीत लिया। शायद समाज और रिश्तेदारों के लिए दीया आज भी बस एक बहू है, लोग कहेंगे कि यह बहू का कर्तव्य है कि वो सास-ससुर की सेवा करे। लेकिन दीया के लिए उसकी सास उसकी माँ समान है। डोली के उस पार विरले ही दीया को ज्यादा सुख नसीब न हुए, फिर भी वह आदर्श पत्नी की तरह अपने कर्तव्यों को निभाती गई। उसने न केवल अपने पति को अपनाया, साथ-ही-साथ उसकी हरेक जिम्मेदारियों को अपना माना।

V

ब्रांच रोड, फॉन्ड डीयू एसएसी, मॉरीशस
मोबाइल : 00 230 59369827
ई-मेल : ramjheetunkarishmadevi@gmail.com

..... *पृष्ठ 17 का शेष* **(दूब-धान)**

खाकर थोड़े कोई जी सकता है। खाएगा तो अनाज ही। जमीन वाले ही कौन अब जमीन पकड़कर बैठे रहते हैं। उससे असीमित आवश्यकताएँ कहाँ पूरी पड़ती हैं। केतकी के ही एक भाई चीफ इंजीनियर हैं, दूसरे डॉक्टर और बाकी दो बड़े ठेकेदार। सबकी कोठियाँ राजाधानी में बनी हैं। बच्चों की शादियाँ भी वैसी ही हुई हैं और केतकी के पति भी तो उतनी बड़ी संस्था के विज्ञापन मैनेजर हैं। मोटी तनख्वाह, गाड़ी, महानगर में अपना मकान। मैट्रिक पास केतकी ने महानगर में ही रहकर एम.ए., पीएच.डी. कर ली। देश-विदेश घूमने से ही फुरसत नहीं मिलती। छुई-मुई सी केतकी फूल की तरह कोमल अब गदराकर भव्य महिला हो गई है। गाँव जाना है, यह सुनकर ही उतावली हो आई थी केतकी। अपने वार्डरोब में देखा एक भी सूती प्रिंट या ताँत की साड़ी नहीं थी। यहाँ सिंथेटिक के सिवा कोई सूती पहनता भी नहीं। महरी भी सूती साड़ियाँ धोना नहीं जानती। हाउस-कोट तक केतकी के पास इंपोर्टेड थे। पति के ऑफिस जाने के बाद सीधी वह राजस्थान इंपोरियम चली गई और कुछ सूती रंग-बिरंगी चूनरें खरीद लाई। बड़े स्टील के तह वाले बक्से के नीचे रखी हुई थी उसकी वह पीली विष्णुपुरी साड़ी। उसे निकालकर बहुत देर तक हाथ फेरती रही उस पर। लगा, कैशोर्य के कोमल सपनों को सहला रही है। इसे ही जनेऊ के दिन पहनेगी केतकी। आलता-बिछुआ और लौंग पहनकर कैसी लगेगी इस विष्णुपुरी साड़ी में। कल्पना में देर तक डूबी रही थी केतकी। उसे बहुत धुँधली याद है, छोटे चाचा का गौना था, बहू आने वाली थी। घर-आँगन लग रहा था जैसे खिल-खिल हँस रहा हो। कोठरियाँ और चौबारे, दालान और खलिहान सब गोबर से लिपा-पुता था। कोहबर में बारादरी में बैठे वर-कनिया, पुरइन के धड़, बाँसवन, केले के थंब, नाग-नागिन के जोड़े तथा शुक-शुकी के रूप में विध-विधाता, चावल के घर और लाल-हरे सुग्गे चटख रंगों से लिखे गए थे। नीचे फर्श पर भी अइपन में चटाई लिखी हुई थी। चारों कोनों पर केले और बाँस की सच्ची टहनियाँ गड़ी हुई थीं। मोथी की सच्ची चटाई कोहबर में बिछी हुई थी। कोहबर से लेकर चौबारे तक अष्टदल और सीताराम के पदचिह्नों का अइपन था। और कर्णपुर वाली नाउन कटोरी में रंग घोलकर सभी कनियों बहुआसिनों का पैर रंग रही थी। महानगर में यह सब कहाँ? केतकी की अपनी ननद का ब्याह हुआ था तो नैना-जोगिन बड़े कागज के पन्ने पर लिखा गया था, सेलो टैप से वाल पेपर के ऊपर चिपका दिया गया था, अभी भी उसे हँसी आती है, कैसे मिसेज चावला और बचानी ने कहा था कि यह डिजाइन तो बेहद मॉडर्न है, दो-एक उन्हें भी लिवाएँ। केतकी को सचमुच बड़ी हँसी आती है। कैसे उनके ग्रामीण संस्कार का वह अविभाज्य अंग, वह अइपन और पुरहर अब कोहबर से उठकर ड्राइंगरूम तक चला गया है। नहीं, गलत सोचती है केतकी। वह तो विश्वप्रसिद्ध हो गया है। मिट्टी के हाथी पर रखी गौरी की पूजा करती हुई केतकी की ननद का झुँझलाया हुआ चेहरा याद आता है, जब उसकी एक विदेशी मित्रा ने उससे कहा था कि कितना सुंदर टेराकोटा आर्ट है। यह सब देखकर केतकी मुस्कराने के सिवा और कुछ नहीं कर पाती। गाड़ी स्टेशन पर आ गई है। चाँदनी रात है, लेकिन घनी धुंध जमी है। स्टेशन की इमारत भव्य लगती है। पहले यों ही सी थी। नई बनी है लगता है। इस इलाके के कई प्रभावशाली नेता-मंत्री बनते रहे हैं। तो यह भी न हो। गाड़ी लेकर एक चचेरा भाई आया है। कुछ वर्ष पहले यह फटी चादर और धोती के सहारे जाड़ा काटता था, किंतु अभी ऊनी कोट-पैंट पहने है। गाड़ी में सामान रखकर उसने पूछा कि क्या इतनी रात को गाँव चलना ठीक होगा? केतकी चाहे तो सर्किट हाउस भी रिजर्व कराया गया है, वहीं रह जाए। लेकिन केतकी को उतावली थी, उसने बेसाख्ता कहा नहीं-नहीं, अभी गाँव जाऊँगी। गाड़ी है, कितनी देर लगेगी। गाँव पहुँचकर देखा एक कतार में एक ही डिजाइन के चार मकान हैं। चारों मकानों को चारों ओर से ऊँची दीवार ने घेर रखा है और बड़ा सा लोहे का दरवाजा है जहाँ ठीक शहरी तरीके का दरबाननुमा जीव बैठा है। रात और धुंध के कारण और अधिक कुछ न देख सकी। चचेरे भाई ने पहले मकान का कोने वाला कमरा स्वयं खोला और केतकी का सामान रख दिया। तुम लोग सो जाओ, सुबह सबसे मुलाकात होगी, कहकर चला गया। केतकी ठगी-सी रह गई। गौने के बाद यह दूसरी बार गाँव आई हूँ। गाँव में इतना परिवर्तन। बड़ा चचेरा भाई स्वयं कमरा खोलकर बहन और जीजाजी को सो जाने को कह रहा था।

बेटी के आने पर प्रतीक्षारत बैठे कहाँ गए स्वजन-पुरजन, कहाँ है जुड़ाने को रखा हुआ बड़ी-भात और कहाँ गई वह परंपरा, जिसमें पहले देवी की विनती किए बिना किसी घर में पैर नहीं रखा जा सकता था। पथराई-सी खड़ी केतकी पति के टोकने पर सामान्य हुई। कई दिनों-रातों का जागरण और मकड़ी की तरह स्वयं के सत्व द्वारा बुने जाते तारों का खंडित दंश केतकी को बेहद थका गया था। वह जो सोई सो काफी दिन उठ आने के बाद जग सकी। जल्दी-जल्दी कमरे के अटैच्ड बाथरूम में स्नान कर बाहर निकली।

"वाह, साले लोगों ने तो मकान बड़ा कंफर्टेबल बना लिया है। इसमें तो रवि-हनी भी आकर रह सकता है।" पति ने प्रशंसात्मक नजरों से चारों ओर देखते हुए कहा।

"हाँ, बिलकुल सही, बल्कि ज्यादा अच्छा है। इतने खूबसूरत टाइलों और ग्रिलों वाले मकान शहरों में भी कम हैं।"

हँसते हुए पति भी बाथरूम की ओर बढ़ गए। भैया ने सारी सुविधाएँ दे रखी हैं इस कमरे में, सोचती है केतकी। यह तो सर्किट हाउस या डाकबंगले से कम नहीं है। उसे अब संकोच हो रहा था कैसे अंदर की ओर जाए? किधर से जाए? उसे लिवाने कोई नहीं आ रहा है। तभी दरवाजे की घंटी बजी। उठकर देखा तो एक बारह-चौदह वर्ष की बच्ची थी। "आप ही कतिकी दीदी हैं?"

सुंदर चटख जांघों से ऊपर फ्रॉक और उलझे बाल, यह शायद काम करने वाली है कोई। उसे देखकर केतकी मुस्कराई—"हाँ।"

"तो चलिए, बड़ी काकी बुला रही हैं।" लगा पक्षियों का कलरव सुन रही है केतकी।

चल! झट से खड़ी होकर लगभग दौड़ती हुई उस बालिका के पीछे चल पड़ी। ग्रिल से घिरे हुए बरामदे को पार करती हुई केतकी ने देखा बड़े से हॉलनुमा कमरे में भाभियाँ बैठी थीं। केतकी ने बारी-बारी सबों के पैर छुए। चाय पीते हुए उसने गौर किया, जाड़े में भी घर की नवीन सदस्या मसृण लिबास पहने हुए है, ऊपर का शरीर शॉल से ढका हुआ है, यही गनीमत।

"तुम रात देर से आई, मैंने रामविलास को कह दिया था कि तुम लोगों को गेस्टरूम में ठहरा दे। कोई परेशानी तो नहीं हुई। नींद तो आई?" बड़ी भाभी ने औपचारिक आत्मीयता से पूछा। "आपके राज में कोई कमी नहीं, भाभी!" कहकर केतकी नवागंतुकाओं से परिचय पाने में व्यस्त हो गई। गाजे-बाजे और रोशनी सब कुछ था। कहीं कोई झंझट नहीं। कोई काम किया जा रहा था, ऐसा नहीं लग रहा था। ऐसा लगता था मानो सारा काम आप-से-आप हो रहा हो। सागर की लहरें जैसे आती और चली जाती हैं, वैसे ही सारे रस्म-रिवाज, संस्कार।

"यह केतकी है?" एक वृद्धा ने नजदीक आकर पूछा।

"हाँ, मैंने पैर छुए थे आपके।" केतकी ने सफाई दी।

"कम दीखता है, बेटी!" एक बेदांती वृद्धा ने कहा।

"बेटी, तुम्हें जमाय बाबू मानते हैं न।" उसकी आँखों में संदेह लहरा रहा था। वह चुटकियों में इसकी साड़ी पकड़े हुए थी। "हाँ, क्यों?" केतकी भी अचंभित हो उठी।

"तूने कैसी साड़ी पहन रखी है? देख तो वे सब कैसी पहने हैं। फिर तू तो बड़े घर-वर से ब्याही थी।" अब केतकी को लगा कि उसने सचमुच गलती की, भड़कदार आधुनिक साड़ियाँ नहीं लाई। भाभी लोगों के सामने तो आँखें चुरा ही रही थी, गाँव की इन वृद्ध काकी के सामने भी लज्जित हो गई। शुभ-शुभ कर यज्ञोपवीत का कार्यक्रम समाप्त हुआ। केतकी अपने गाँव को देखने की लालसा को न्योत लाई।

"भाभी, जरा गाँव देखती।"

केतकी ने बड़ी भाभी से पूछे बिना कभी घर से पैर बाहर नहीं निकाला था। वह मुस्कराई। "ठीक है, देख आओ, तुम बदली नहीं जरा भी।"

केतकी ने उसी छोटी लड़की को साथ लिया और चल पड़ी। बड़ी-सी चहारदीवारी के बाहर भी चौड़ी कंकरीट की सड़क। चंद कदमों पर पन-बिजली निकालने वाला विशाल यंत्र, विद्युत-ग्राम। अब उसे यज्ञोपवीत के दिन की वह शहरी पार्टी याद आई। सचमुच उस दिन उतनी सारी कॉस्मोपॉलिटन स्त्रियों को देखकर मन दुखी हुआ था। यह सब शो गाँव में नहीं होना चाहिए था, इसने सोचा, लेकिन एक प्रश्न अवश्य मन में उठा था कि इतने सारे कॉस्मोपॉलिटन लोग कहाँ से आए?

"दीदी, यहाँ बिजली बनाते हैं, देखती हैं न, सब जगह गाँव में बिजली है।" साथ की लड़की पुलकित थी।

"तुझे बिजली अच्छी लगती है?"

"हाँ बहुत। खूब इजोत होता है।"

केतकी मेड़ों के सहारे खेत में उतर गई। मटर और तीसी का खेत। सफेद, नीले और गहरे गुलाबी खेत। आगे सरसों और तोरी का खेत, पीले-पीले फूलों वाले खेत। केतकी कुछ सोचती हुई नीचे उतरती रही। प्रकृति के पास सबसे अनूठे रंग हैं।

"केतिकी दीदी, इधर गाँव नहीं है फुलवारी है।" साथ की लड़की ने कहा।

"मैं फुलवारी ही जाऊँगी।" और थोड़ी देर में केतकी पुरानी अमराई में पहुँच चुकी थी। फुलवारी कई चारदीवारियों में बँटी थी, कई नए वृक्ष लगे थे। लड़की ने बताया कि चारों भाइयों की फुलवारी है। चलती हुई केतकी बीच में पहुँच गई। एक पुराना महुआ का पेड़ कटा पड़ा था, पास ही विशाल आम का पेड़ था।

"दीदी, यह आप ही का पेड़ है।" लड़की ने याद दिलाया।

"तुझे कैसे मालूम?" केतकी ने पूछा।

"सभी कहते हैं कि कतिकी दाई का पेड़।"

ओ, अच्छा। इसी पेड़ के नीचे केतकी, संज्ञा, कालदी, बुच्ची और रमा खेला करती थीं। लड़कों का झुंड बगल वाले महुए के पास जमता था। लड़कों ने एक बार महुए का ताजा फल लाकर केतकी की नाक में रगड़ दिया था। केतकी बेहोश हो गई थी। बाद में इसी बात पर चिढ़ाया भी करता था समीर कि केतकी महुए की गंध से ही बेहोश हो गई थी। पेड़ कितना ऊँचा और छायादार है, केतकी सोच रही थी। आम का यह पेड़ सबसे पहले फलता है। लाल-लाल सिनुरिया आम पक-पककर आप ही चूने लगते हैं। अधिक पके आम धरती पर गिरते ही फट जाते हैं, छिलका और बीज अलग-अलग। केतकी और उसकी सहेलियाँ इधर-उधर देखकर साड़ी खोल लेतीं, मात्र पेटीकोट और ब्लाउज में साड़ी के दोनों छोर पकड़कर पेड़ के नीचे खड़ी हो जातीं। हवा चलती तो एकाध छोटे-छोटे आम उसमें गिरते। अहा, कितने सुगंधित आम होते थे! गोपी सुपक्व गछपक्व, रस कितना मधुर, जैसे मधु। केतकी का गाल सिनुरिया आम की तरह दहक उठा। समीर का ममेरा भाई हर छुट्टियों में आ जाता। उस दिन केतकी की साड़ी खोलने की पारी थी। वह अकेला ही समीर को खोजता हुआ पहुँच गया था। झपाके से शरमाकर केतकी बैठ गई थी। कई दिनों तक उसके सामने नहीं गई। एक लंबी साँस खींचती है केतकी। गौने जाने के पहले जब वह एक बार आया था तो कैसे सहज भाव से कह गया था कि वह केतकी से ब्याह करना चाहता था। केतकी ने अपनी गहरी आँखों से उसे देखा भर था, कुछ पूछा नहीं था।

"तुम पूछोगी, यह अब क्यों कह रहा हूँ? तो उसका उत्तर है कि मैं साधारण गरीब घर का लड़का, तुम्हारे यहाँ मेरी बुआ ब्याही है, तुम्हारा हाथ कौन मेरे हाथ में देगा? फिर भी मैंने अपनी माँ से कहा था विवाह के समय। मुझे मार पड़ी थी और जबरदस्ती विवाह कर दिया गया था।"

उस समय केतकी को मात्र आश्चर्य हुआ था, सचमुच यह किस प्रकार मुझसे विवाह करता? कोई संवेदना नहीं जगी थी। लेकिन इस वृक्ष के नीचे खड़ी होकर उसे उस दिन का दृश्य याद आ गया। भावानुभूति-सी हुई, सारे शरीर में एक पुलकन व्याप गई। अपने मन के सब मालिक होते हैं। उस पर दूसरे का क्या वश! जोर की आवाज से ध्यान भंग हुआ। चारदीवारी से निकलकर देखने लगी केतकी, कौन दहाड़ा इतनी जोर से। देखा सरसों, तीसी, मटर के खेतों के पार वाले खेत में ट्रैक्टर चल रहा है। दूर-दूर तक कहीं बैल-हल नहीं दीखते। बड़का काका का खेत है, मकई के लिए तैयार हो रहा है।

"मेरा बाबू डिरेवर है।" लड़की ने गर्व से बताया। अचानक दहाड़ जैसे स्वर से वातावरण की तरह केतकी का ध्यान भी भंग हुआ। कलेजा धक-धक कर रहा था। कलेजा सँभालते हुए पूछा उस लड़की से,—"तुम किसकी बेटी हो?"

"फ्रामप्रीत की।"

"बैजू तुम्हारा दादा था?"

"हाँ।"—केतकी को स्मरण हो आया, बैजू उन लोगों का अगला हलवाहा था। सिरपंचमी के दिन पसेरी धान के बिना हल ही नहीं उठाता था, जब तक हल का फाल धान में पूरी तरह नहीं डूबे। उसके लिए अइपन का थड़ बड़ा बनाना पड़ता था। पीठ पर पिठार सिंदूर का थप्पा लिए दिन भर घूमता रहता। कहता केतकी दाई का असिरवादी है। मन में

आया, पूछे कि क्या ट्रैक्टर भी सिरपंचमी में अइपन चढ़ता है? फिर स्वयं ही अपने आप पर हँसी आई। वह मन-ही-मन नचारी गुनगुनाने लगती है—अमिय चूबिय भूमि खसत, बाघंबर जागत हे आहे होयत बाघंबर बाघ, बसहा धरि खायत हे। शिव को पार्वती नृत्य करने को कहती हैं, शिव अपना डर पार्वती से बताते हैं कि उनके नाच से अमृत-बूँदें बाघंबर पर गिरेंगी, बाघंबर बाघ बन जाएगा और बसहा बैल को खा जाएगा। विज्ञान के शिव का तांडव। अमृत-बूँद से जगा यंत्र-व्याघ्र गरज रहा है खेतों में। लील गया बैल।

लौट पड़ती है केतकी।

"कल चलते हैं न हम लोग?" रात को पति से कहा।

"क्यों, तुम तो कुछ और रुकने वाली थीं?"

पति ने प्रतिप्रश्न किया।

"नहीं, चलूँगी।"

"ठीक है। मुझे क्या एतराज हो सकता है।"

दूसरे दिन केतकी के जाने की सारी तैयारी हो गई। भाई-भाभियों का चरण-स्पर्श कर सूखी आँखों से केतकी गाड़ी में बैठ गई। रामविलास आगे था, केतकी और उसके पति पीछे। गाड़ी थोड़ी देर में ही हवेली छोड़कर आगे बढ़ गई। गाँव के पास आ पहुँची केतकी। कंक्रीट की ऊँची सड़क के किनारे मिट्टी के टीले पर बसा जाना-पहचाना गाँव। ऊखल-मूसल चलाती औरतें। आनंगे बच्चे, नाक बहाते बच्चे, गाय-बैलें।

"रामविलास भैया, गाड़ी रोकिए न!" केतकी उतावली होकर कह उठी। गाड़ी रोककर रामविलास पीछे देखने लगा।

"गोड़ लागू पैंया पड़ू भैया रे कहरिया पल एक दियउ बिलमाय। मैं जरा गाँव में जाऊँगी।" वह झट से उतरकर सड़क से जुड़ी पगडंडी से उतर गई। पीछे-पीछे रामविलास मुस्कुराता हुआ चला। पहला ही घर तो सबुजनी दीदी का है। सामने खजूर की चटाई पर बैठी थी सबुजनी। के है? मोतियाबिंद उतरी आँखों पर तलहथी देकर देखने लगी।

"दीदी, मुझको नहीं पहचाना?"

"दीदी, केतकी है," पीछे से आगे आकर रामविलास ने कहा। जरा भी नहीं बदली। केतकी के मन में तूफान उठ खड़ा हुआ। इन्हीं से मिलने तो वह आई थी, इन्हीं के लिए मन व्याकुल था। "बाबू कतिकी समीर बौआ के बेटा के जनउ में आई है?"

केतकी बोल नहीं पा रही थी। रामविलास ने ही कहा,—"हाँ अभी लौटकर जा रही है।" सबुजनी के गोरे झुर्रीदार चेहरे पर हर्ष की लहर दौड़ गई।

"अच्छा हुआ, गाम-समाज को देखने आ गई। तू बिना माँ की बेटी! हम सबकी बेटी। अरे, कहाँ गई सुलेमान की कनिया, जरा सोना-सिंदूर ले आ, केतकी की मांग भर। एक चुटकी धान-दूब ले आ, खोइंछा भर दे।"

भीड़ जैसा समा हो गया था। एक बहू दौड़कर अंदर से सारा सामान ले आई। भाभी तो खोइंछा देना भी भूल गई थीं। रेशमी आँचल की खूँट आप-से-आप खुल गई। दूब-धान के लिए मन उदास था।

"मेहमान कहाँ हैं बेटी?" सबुजनी ने पूछा।

"गाड़ी में हैं।" अब रामविलास चिढ़ने लगा था। ट्रेन छूट जाएगी।

"अच्छा-अच्छा। जैनबी, जा, तूने जो नया-सींकी का पौती बुना है, ले आ। और सुन, गिलास माँजकर पानी और गुड़-भेली भी ले आ।" कमर से निकालकर दो रुपए का लाल मुड़ा-तुड़ा नोट पौती में बंद कर केतकी के हाथों में थमा दिया।

"यह मेहमान का सलामी है, दे देना। गुड़ खा ले बेटा, पानी पी ले। जरा ठीक से। हाँ, जा, गाड़ी को देर हो रही है। देख लिया तुझे, सुख-चैन से मरूँगी।" आगे बढ़कर सबुजनी गले मिलने को हुई कि उद्‌भ्रांत-सी केतकी ने सिर टेक दिया और इतने दिनों का जमा आँसुओं का बाँध टूट पड़ा। सबुजनी हौले-हौले पीठ सहलाती जा रही थी।

"रो ले, बेटी, रो ले, मन में कुछ न रखना, कहा-सुना छिमा करना, गाँव-जवार को असीसती जाना। लाल रंग डोलिया सबुज रंग ओहरिया, आब बेटी जाइ छुइ बिदेस।"

केतकी बड़ी मुश्किल से अलग हुई। खूँट में बँधे चुटकी भर दूब-धान को मुट्ठियों में भींचे पगडंडी पार करने लगी।

❖

हिंदी एवं मैथिली की कथाकार एवं उपन्यासकार
साहित्य अकादमी, भारतभारती तथा पद्मश्री से सम्मानित।
आदर्श कॉलोनी, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001
मोबाइल : 9334391006

..... *पृष्ठ 19 का शेष* **(मांसखोर)**

"कहाँ से आया है?"

"नहीं मालूम!" लड़के ने बुके देते हुए कहा, "आप रिसीव कीजिए।"

"मैं नहीं लूँगी।"

"तो फिर मैं क्या करुँ?"

"ले लो मिस!" बाई बोली, " फूल ही तो हैं।"

"जी" लड़के ने कहा, "मुझे और पार्सल की डिलीवरी भी करनी है।"

"रख दो, वहीं कोने में।" घबराहट में दस्तखत करते हुए उसने कहा। अनजाने ही डर से उसकी हालत खराब थी, फिर उसने याद किया तो लगा यह किसी दूसरे देश की घटना है, पर बुके... कहीं? किसने भेजा और क्यों? फूल से नाजुक रिश्ते को कत्ल करते हो और फिर तुम्हीं फूल भेजते हो? किसने भेजा है यह फूल? कौन भेज सकता है...?

मोबाइल की घंटी बजी...

"तुम्हें फूल लेने में भी डर लगता है?"

"डराकर दुनिया को जीतते हो।" वह मूड में बोली, "तो तुम्हारी हर चीज से डर लगेगा।"

"क्यों?"

"वह तुम जानो।"

" कल शाम में और रात में..."

"सुनो वह सब मत सोचो।"

"क्यों नहीं सोचूँ?" वह उदास होती हुई बोली, "कितनी अमानुषीय है यह दुनिया? किसलिए है यह?"

"प्रेम के लिए।"

"झूठ!"

"स्वीट गर्ल!" राहुल ने कहा,—"अब तुम लौट आओगी। नहीं तो मैं ही आ जाऊँगा। अब मैं धर्म बदलने को राजी हूँ।"

"उसकी जरूरत नहीं!" उसने गहरे तंज से कहा,—"यहाँ एक रिलिजन के लोग भी अपने लोगों पर जुल्म कर रहे हैं। खास कर औरत और बच्चों पर। तुम धर्म बदल कर उदार नहीं हो सकते।"

"तुम लौट आओ।"

"कॉंट्रैक्ट समाप्त होने के बाद।"

फोन कट गया।

"....कहीं से लौटो, कहीं जाओ।" हॉस्पिटल से लौटकर उसने सोचा,—"मर्दों के लिए एक सेक्सुअल हब है दुनिया!" उसे जुगुप्सा-सी हुई। तुम औरत हो इसलिए तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई भी आदमी तुम्हारा पीछा करेगा...और मौका पाकर तुम्हारी आबरु को तार-तार कर देगा। बलात्कार की हद तक...डॉक्टर रीटा को लगा बलात्कार शरीर का नहीं आत्मा का विखंडन है...

और वह आदमी? आदमी को हो क्या गया है? औरत को वह शरीर के अलावा और कुछ क्यों नही समझता?

उसे याद आया कॉलेज के दिनों में एक कॉलेज के प्रोफेसर घोष साहब थे। वे कहते थे, देह के वृत में कुछ भी पाप नहीं होता...संस्कृति गढ़ी हुई होती है, इसलिए उसका नाश होता है। सेक्स एक प्रवृत्ति है, इसलिए अमर है। डॉ. कर्णिका के साथ उनके अनैतिक संबंधों की चर्चा थी। डॉ. कर्णिका ही क्यों? हर सेशन में वे किसी-न-किसी को भोगकर किसी प्रशिक्षु डॉक्टर के गले में बाँध देते थे। इसी खेल में उनकी हत्या भी हुई! मगर? आदमी की फितरत में कोई बदलाव नहीं आया। अभी भी लोग औरत को उपभोग की वस्तु समझते हैं...रोज जुल्मो-सितम की घटनाएँ...

उसे लगा, वह जिस अस्पताल में काम करती है, उसमें भी औरतों की दुर्दशा देखी जा सकती है...बच्चा-पर-बच्चा जनती औरतें, माय गॉड! पर उस समय वह केवल डॉक्टर होती है! सेवा और दया-भाव से भरी हुई!

"...राबिया तुम्हारे कितने बच्चे हैं?" उसने यूँ ही पूछा।

"नौ मिस!"

"तो क्या तुम बकरी हो?"

"क्या बोली मिस?"

"मना काहे नहीं करती हो?"

"मैं फिर पेट से हूँ मिस!" वह बोली, "औरत के पास क्या राइट है मिस? आप लोगों के पास होगा।"

"वह कहीं नहीं है!" रीटा बोली, "बस थोड़ा-बहुत अंतर है।"

"काम भी, बच्चे भी और शुचिता भी और दंड भी!" वह बड़बड़ाई।

"क्या मिस?"

"कुछ नहीं।"

"चलो जाओ, काम करो।" उसने कहा,—"कल इमर्जेंसी में मेरी ड्यूटी है। सवेरे जाना है।...ऐसा है, जितनी बारिश होती है यहाँ, उतने बच्चे जनती हो तुम लोग...यह सब बंद होना चाहिए।"

"न बारिश रुकेगी और न बच्चे!" वह हँस पड़ी। डॉक्टरनी रीटा भी। एक तरह से गिजगिजी और लिजलिजी जिंदगी है औरत की। उसे घिन-सी आ रही थी!

★★★

दिमाग में एक वहशियाना उन्माद ही एक विचार है उन लोगों के लिए! कुछ लोग उसे धर्म, कानून, तंत्र, आदर्श और उदात्त विचारों के रैपर में छिपाकर करते है, तो कुछ लोग न्यूड और सबसे वर्गल रूप में! कितना तो लहू बहता है जुल्म की एक आँधी के बीतने में? युद्ध...युद्ध...युद्ध पर किसलिए? इन्हें इतिहास के उस ध्वंस की कोई स्मृति क्यों नहीं है? क्यों एक सभ्य समाज को पूर्ण मानवीय होने से पहले वे उसे अपंग बना देते हैं? हजारों प्रेम और आदर्श मूल्यों की सामूहिक हत्या और जश्न...

उसे याद आया। बचपन में स्कूल के दिनों में एक भजन का उसके मानस पर बड़ा गहरा असर पड़ा था-

तेरा दिल तो इतना बड़ा है

इन्सां का दिल तंग है क्यों?

बाद में जब वह मिशन स्कूल आ गई, तब भी उसके मानस पर गहरा असर रहता था इस प्रार्थना का। जीसस की इबाबत के समय भी लगता कि यह भजन उसके दिमाग में चल रहा हो! सेवा प्रेम और अमन!

★★★

डॉ. भावना कहती थी कॉलेज के दिनों में,—"डॉ. रीटा वासनाएँ नहीं मरती हैं। इच्छा के रूप में उनका जन्म होता है, आत्मा का जन्म नहीं होता, यह झूठी फिलॉसफी है, देखना डॉ. घोष जी उठेंगे!"

"तो गाँधी क्यों नहीं?"

"वे नहीं जीएँगे, भले हिटलर जी उठे।"

"मतलब?"

"उनमें इच्छाओं का अंत हो गया था!" डॉ. भावना विदुषी थीं। वह सही कहती थी, पर उसे दुख होता था। उसे तब भी लगता था, डॉ. भावना की बातों को मानने से अच्छी संभावनाओं के सारे रास्ते बंद हो जाएँगे, जबकि हमें इन संभावनाओं की राह के जले फूलों को भी सींचकर हमेशा के लिए मरने नहीं देना है...जिंदा रखना होगा।"

"हैलो?"

"कैसी हो?"

"सो जाओ राहुल।"

"किसी का प्रेम उससे दूर हो जाए, तो वह सो कैसे सकता है।" राहुल ने कहा, "प्रभु यीशू ही मेरी वेदना को समझ सकते हैं..."

"प्रभु समस्त संसार की वेदना को समझते हैं! उनके यहाँ देर है अँधेर नहीं।"

"गॉड ब्लेस यू!"

"गुड नाइट!"

★★★

अचानक रात के एक बजे के करीब ऐसा लगा जैसे कैम्प पर हमला हुआ हो। बम-बारुद के फटने से लेकर गोलियों की दुतरफा तड़तड़ाहटों से खिड़कियों और दरवाजों के काँच तक दरकने लगे। दहशत और खौफ के अँधेरों के बीच चीख-पुकारों का अजीब हैरतअंगेज माहौल। लगभग आधा घंटा के बाद मुर्दनी-सी खामोशी को चीरती हलचल और रोशनी।

सीढ़ियों पर भारी बूटों की आवाजें! दरवाजे पर घबराई हुई दस्तकें! उपचार की इमर्जेंसी! मारे गए जवानों और

आतंकवादियों के लहू के बीच कुछ घायल और चिथड़ेनुमा लोग। जिंदगी की आखिरी लड़ाइयाँ लड़ते हुए...सुबह तक पूरा अस्पताल बेचैन रहा अपनी जिम्मेदारियों में।

...सुबह जब बमुश्किल वह लौटी, तो हड़बड़ी में छूट गए मोबाइल पर सैकड़ों कॉल्स थे...उसने भारी मन से मैसेज लिखा... हमला रेजीडेंशियल एरिया में नहीं होकर मिलिट्री कैंप पर था...

फिर वह लेट गई। आज राबिया भी नहीं आएगी।

वह बेहद थक गई थी, दिलो-दिमाग में अब भी गोलियाँ चल रही थीं।

★★★

बारह जवान शहीद हुए थे और पाँच हार्ड कोर आतंकवादी। राबिया के दो बेटे शाहिद और इम्तियाज भी।

...तो क्या इसीलिए ये बच्चे पैदा करते हैं...

डॉ. रीटा के घर वाले की रिक्वेस्ट पर भारत सरकार के प्रयास के कारण उसकी वापिसी की याचिका स्वीकृत हो गई थी। वह खुश तो थी, पर भीतर तक गहरी पीड़ा समाई हुई थी।

फिर बारिश हो रही थी। अचानक आर्मी वाले की आमद हुई। उसे ऑफिस की कुछ औपचारिकताओं के लिए तैयार होना पड़ा।

ऑफिस में आर्मी के उच्चाधिकारी और इंटेलीजेंस के चीफ बैठे हुए थे। उसके बैठने के बाद एक ऑफीसर ने पूछा,— "राबिया को जानती हैं आप ?"

"जी सर !"

"कैसे ?"

"मैंने आर्मी के ऑफिस में ही एक मेड के लिए अप्लीकेशन दिया था...फिर एन.जी.ओ.के माध्यम से उसे रखवाया गया..." डर और घबड़ाहट के साथ कहा उसने।

"उसी की निशानदेही पर ये हमले हुए।" अब तक अखबार पढ़ रहे इंटेलीजेंस चीफ ने चेहरा पेज से हटाते हुए कहा !

हू-ब-हू वही ! वह काँप गई, पर उसने बदलकर कहा,—"हो सकता है।"

"आपने सजगता दिखाई होती तो जवान बच सकते थे।" उन्होंने कठोर स्वर में कहा।

"जी मैं समझी नहीं।"

"आप पर इनवेस्टीगेशन चल रहा है।"

"क्या ?" वह चौंकी।

"राबिया और आपके रिश्ते के बारे में।"

"तो मुझ पर शक किया जा रहा है ?" उसने टूटकर कहा, "रात भर मैंने घायल जवानों की सेवा की है।"

"हमारी मजबूरी है।" आर्मी के ऑफिसर ने कहा, "आपका पासपोर्ट अभी क्लियरेंस में है।"

"आपकी मर्जी।" उसने अपमान से हिलते हुए कहा।

उन्हें वापस लौटने दिया गया। पर यातना और परेशानी की एक कहानी उससे जुड़ गई थी। अपमान और उपहास से गुजरने की अमानवीय प्रक्रिया...जलती आँखें, अश्लील हरकतें, अनाप-शनाप प्रश्न...पर भला हो परमात्मा का...कि सरकार, रेडक्रॉस और ह्यूमेन राइट्स वालों के लगातार हस्तक्षेप के कारण उसे उनके चंगुल से निकलने का सौभाग्य हासिल हुआ, पर राबिया के साथ जाने क्या हुआ हो। वह आज भी सोचती है तो सिहर जाती है। राबिया को आतंकवादी कहना या समझना महज एक संयोग नहीं तो और क्या हो सकता है ? किसी के बेटे अगर भटक जाएँ, तो माँ को क्या इसलिए दंड मिलेगा कि उसने उसे पैदा किया !

किसी को इसलिए टॉर्चर किया जाएगा कि...

उसने जहाज के उड़ते ही अपना चेहरा हथेलियों से ढँक लिया। उसे लगा अब भी उसके अहसास में कोई उसका... नहीं उसकी औरत का पीछा कर रहा है...

❖

प्राचार्या, पूर्णिया महिला कॉलेज
पूर्णिया-854301, मोबाइल : 9431867283

..... *पृष्ठ 22 का शेष* **(कौन सी डोर...?)**

शहतूत की डालियों पर चहकते पक्षियों के कलरव पर उसका जरा भी ध्यान नहीं। क्या वो इस कदर मायूस है? नहीं...! गौरी को मजबूत होना होगा। फिर...आज के समय में जब करियर बनाने के ढ़ेर सारे ऑप्शन्स मौजूद हों तो उसे भी मजबूत बनना होगा। अपने आसपास की गुनगुनी धूप, मलय-समीर को महसूस करनी होगी। तारों-भरा आसमान निहारना होगा। खुले गगन में उड़ना होगा।

''बेटी! सत्यजीत बाबू को अपने कमरे में बिठाओ। इन्हें कुछ चाय-नाश्ता भी तो कराओ, या खाली बतकुच्चन ही होती रहेगी?'' गौरी और उसके घर के लोगों की बातों को सुनते, गौरी के दर्द को समझते, मैं कुछ देर और वहीं गुमसुम-सा बैठा रहा कि मुझे गमगीन देख गौरी की माँ ने मुझे चाय-नाश्ता देने के लिए गौरी से कहा।

''सत्यजीत बाबू, आप यहाँ मेरे कमरे में आ जाइए। यहाँ बैठकी में अभी बाबू जी के शिष्यगण आ रहे होंगे। संगीत सीखने का समय हो चला है।'' अपनी माँ की पुकार पर अकबकाई सी गौरी ने मायूसी भरे चेहरे पर हल्की मुस्कान लाते, मुझसे निवेदन किया था।

मुझे अपने कमरे में बिठाकर गौरी चाय बनाने चली गई। मैं कमरे का मुआयना करने लगा। बेहद सादगी भरा और कुछ-कुछ मौन-सा कमरा था, जो गौरी के निरुत्साह से दैनंदिन को बयाँ कर रहा था। कमरे में एक तख्त, जिस पर बिस्तर मोड़कर रखा हुआ था। एक साफ-सुथरे मेजपोश बिछे टेबल के सामने कुर्सी लगी हुई थी। टेबल पर तरतीब से लगी पाँच-छः किताबें और एक डायरी भी दिखी। ध्यान दिया तो डायरी के बीच में एक पेन भी दबा हुआ था। उत्सुकतावश मैंने उस डायरी को खोला तो उसमें दैनंदिन के छोटे-छोटे प्रसंगों पर बाकायदे तिथि अंकित करते हुए, अखबार या पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित महापुरूषों की सूक्तियाँ आदि लिखी हुई थीं। जैसे...'देखा जाए तो हम सभी कहीं-न-कहीं अपने अकेलेपन से जूझ रहे हैं। परंतु जिसने इसे एकांतवास में बदल लिया, उसने जीवन-रहस्य को समझ लिया।'

एक पेज पर तो दार्शनिक बातें भी लिखी थीं।... "कभी-कभी तो लगता है कि महानताओं को भी कहीं-न-कहीं आदर्शवादिता से समझौता करना पड़ जाता है। देखा जाए तो प्रकृति में भी आदर्श परिस्थितियाँ कहाँ हैं? बारोमास कुछ-न-कुछ बाढ़, सूखा, अकाल, आपदा, महामारी आदि लगा ही रहता है। ऐसे में आदर्श स्थिति या पूर्ण आदर्शवाद की तो कल्पना ही की जा सकती है।"

''अनजान इन्सानों को तो हम थोड़ी ही देर में पूरी तरह समझ लेने का दावा कर लेते हैं, परंतु बेहद करीबी, अपने नाते-रिश्तेदारों, दोस्तों आदि को हम ता-उम्र समझते रहते हैं।''...पता नहीं ये बातें गौरी ने किस संदर्भ और किन देश-काल-स्थिति-परिस्थितियों में लिखी होगी?

डायरी के अगले पन्नों पर 'बाराहखड़ी, एडिटिंग की गुंजायश, सूरज-चाँद-सितारे, सनद रहे' आदि अलग-अलग शीर्षकों से कुछ छोटी-बड़ी अनगढ़-सी कविता-पंक्तियाँ भी लिखी दिखीं। उसकी डायरी और उसमें लिखे कुछ कविता-अंश पढ़कर स्तब्ध रह गया मैं। मैंने गौरी के घर वालों को आश्वस्त किया कि मुझे सुबह ही 'सिवान बाजार गाँव' जाना है। कोशिश करूँगा कि गौरी के ससुराल वालों से भी मिलकर वास्तविकता जान सकूँ।

गौरी के परिवार वालों से विदा लेकर घर लौटते वक्त रास्ते-भर ढ़ेरों बातें मेरे मन में आलोड़न-विलोड़न होती रहीं। गौरी का क्लांत, निष्प्राण-सा चेहरा बार-बार मेरी आँखों के सामने घूम जाता। कितना हाहाकार...कितनी पीड़ा समेटे हुए थी वो अपने आँचल में? कोई जान भी पाएगा कभी उसके दुःख-दर्द को?

पूरी रात गौरी के ही बारे में सोचते, बिस्तर पर उलट-पलट होता रहा। सुबह गौरी के ससुराल वालों से मिलने का इरादा कर उसके ससुराल 'सिवान बाजार गाँव', जो मेरे घर से लगभग पंद्रह किलोमीटर ही दूर था, चला गया। उम्मीद के विपरीत...गौरी के ससुराल वालों से गौरी को लेकर तो कुछ और ही सुनने को मिला। जिससे मेरा मन गौरी के भविष्य को लेकर अतिशय आशंका और भय से भर गया।

''देखता हूँ कब तलक अपने घर में रखे रहेंगे? कब तलक यों अपनी लाडो को घर में बिठा कर खिलाएँगे? पहल नहीं करेंगे, बात नहीं करेंगे, हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहेंगे? एक-न-एक दिन तो उनकी अक्ल ठिकाने आ ही जाएगी। नाक रगड़ेंगे मेरी चौखट पर, तब भी विदा कराने नहीं जाऊँगा। अरे! विदा कराना तो दूर, सोचूँगा भी नहीं उसके बारे में। जिद अगर उनकी है...तो जिद मेरी भी है।

विदा तो करना ही पड़ेगा उन्हें एक-न-एक दिन...झक्क् मारके। तब पूछूँगा...क्यों निकल गई सारी हेकड़ी? सारी ऐंठन? निकल गए अरमान, घर में ब्याहता बेटी को बिठाए रखने के, जो अपनी गरज जान के आए हो छोड़ने उसे यहाँ? बड़े आए मुझसे पहल की उम्मीद रखने वाले।'' ऐसे तो विचार, गौरी के पति महाशय के थे।

''हमने तो सोचा था लक्ष्मी जैसी बहू आएगी, घर-दुआर चहुँओर उजियार हो जाएगा। भाग सँवर जाएँगे। धन-धान्य से घर भर जाएगा हमारा। दूँगी आशीर्वाद उसे भर-भर हाथों...'दूधो नहाओ, पूतो फलो' का। पर वो तो निकली कुलच्छिनी, घर फुँकनी, घर उजाड़ू? पता नहीं रमेशवा के बाबूजी ने पोथी-पत्रा देखाकर बहू के सारे गुण ठीक से मिलवाए भी थे या नहीं? मुझे तो उसके एक भी गुण अपने बेटे से मिलते-जुलते नहीं दिखते। ऐसी चाल-चलन... .ऐसे लच्छन...ऐसा तिरिया चरित्तर? हे भगवान! हमारे लड़के के तो जैसे करम ही फूट गए। उढ़री कहीं की!'' गौरी की सासू माँ तो बस शुरू हो गईं। पता नहीं कितनी शिकायतें, उलाहने थे उनके पास?...'पर सारी गलती गौरी की ही तो नहीं होगी?' पूछने का मन हुआ, पर हिम्मत नहीं जुटा सका। मैं वहाँ बात बनाने गया था, बिगाड़ने नहीं।

''वो दिन और आज का दिन। ऊपर वाला झूठ न बुलवाए हमसे, हमारी तो वैसे भी थुक्का-फजीहत हो रही है, जग-हँसाई हो रही है। उसकी वजह से हम कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रहे। बिना किसी बात के, बहू के घर छोड़ जाने की वजह से तो हमारी नाक ही कट गई बीच-बाजार में। उसी के कारण नीचा देखना पड़ा लोगों के बीच हमें। अब तो आस-पड़ोस के लोग भी कहने लगे हैं... 'रमेशवा की बउ अइसन चरित्तर देख लाएगी...बात-बात में छहंत्तर बतियायेगी, ऊ करमजली को देख के कोई कहेगा भला?' कहाँ कंगलों के घर ब्याह दिया हमने भी अपने हीरे जैसे बेटे को।'' गौरी की सासू माँ के पास उलाहनों-तानों की कमी नहीं थी। अगर बीच में ही उनकी बड़ी बहू न आ जाती तो गौरी को लेकर और भी जाने क्या-क्या सुनना पड़ता उसकी सासू माँ के श्रीमुख से?

''मैंने भी कहाँ कसर छोड़ी थी। उसकी सेवा-सुश्रुषा में दिन-रात एक किए रहती थी। बिलकुल छोटी बहन के मानिंद मानती थी। उसकी हर माँग को उसके मुँह खोलने के पहले ही भाँप लेती। बिना ज्यादा कुछ पूछे-ताछे ही पूरा कर देती थी। यहाँ तक कि इस घर में उसे कभी भी, कहीं भी घूमने-फिरने, आने-जाने, कुछ-भी पहनने-ओढ़ने की पूरी आजादी थी। घर की कोई बड़ी जिम्मेदारी भी तो नहीं दे रखी थी हमने। दूर ही रखा था उसे घर-गिरस्थी के तमाम परपंचों-झमेलों से। सोचा था कि अभी तो बच्ची है, घर-परिवार का ज्यादा बोझ सहन नहीं कर पऐगी। असमय ही बड़ी जिम्मेदारी देने से टूट जाएगी। पर उससे ऐसी उम्मीद नहीं थी। जिस थाली में खाती रही...उसी में छेद किया? तिस पर क्या-क्या सुनने को नहीं मिला, उस नामुराद के बारे में? हे भगवान!...भलाई का तो अब जमाना ही नहीं रहा।'' ये विचार थे गौरी की जेठानी जी के।

''कितना खयाल रखती थीं चाची हम सब जन का? शायद अम्मा से भी एक कदम आगे बढ़कर। परीक्षा की तैय्यारी के दिनों में तो रात-रात भर वो हम दोनों भाई-बहनों के सिर पर एक माँ, बड़ी बहन की तरह माथे पर हाथ फेरतीं, हमारे बालों में तेल लगातीं, हमारा सिर दबा देतीं। हमें देर रात तक पढ़ते-लिखते देख, रात-बिरात, बिना अलसाए, बेझिझक, तुलसी-अदरक-काली मिर्च वाली चाय या कॉफी बनाकर पिला देतीं। चाची कम, एक आदर्श नौकरानी की भाँति, सदैव मुस्तैद रहतीं। हमारे इर्द-गिर्द उनकी उपस्थिति मात्र से ही, पढ़ाई का सारा टेंशन, सिर दर्द एकदम्म से उड़न-छू हो जाता। उनके रहने से पूरे घर को चाय-नाश्ता-भोजन-पानी सब कुछ बिलकुल सही वक्त पर मिल जाता। दादी तो कभी घुटनों के दर्द से, तो कभी अधकपारी की वजह से चारपाई ही नहीं छोड़तीं। वो ठीक से चल-फिर भी नहीं पातीं। उनका खाना-पीना, औंचना-ओठंगना सब कुछ चारपाई पर ही होता था। ठाठ थे हम सब जन के तो।'' थोड़ी देर के लिए मुझे बैठक में अकेले देख, गौरी के भतीजे, भतीजी भी मेरे पास आ गए और नमस्ते करने के बाद उन्होंने भी अपनी व्यथा-कथा कह सुनाई।

''लेकिन, सब कुछ जानते-बूझते-समझते हुए भी आप लोगों ने अपने घरवालों को कुछ नहीं कहा?'' मैंने उनसे जानना चाहा।

''ऐसा नहीं है चाचा जी। हमें तो उनकी कमी सबसे ज्यादा खल रही है। अब अगर वो अपनी पढ़ाई आगे जारी रखने वास्ते,

कुछ समय तक संतान नहीं चाहती थीं, तो क्या हुआ? हमारी तो उन्होंने अपने सन्तान की तरह ही देख-भाल की। वक्त-बेवक्त जब भी कुछ मांगा खाने-पीने को, नि:संकोच खिलाया-पिलाया। अफसोस! कि उनका दर्द...इस घर में कोई नहीं समझ सका? पर, हम भी क्या कर सकते हैं? घर के बड़े-बुजुर्गों पर तो हम छोटों का कुछ वश ही नहीं चलता न!''

गौरी के घर-परिवार, उसके ससुराल वालों की बातें जानने-सुनने के बाद कुछ देर तक यों ही विचार-मग्न सोचता रहा कि सबको सिर्फ अपनी पड़ी है। यहाँ किसी को भी गौरी की मन:स्थिति को जानने, उसके दु:ख-दर्द से कुछ नहीं लेना-देना। गौरी अब करे तो क्या करे? किससे कहे अपने दिल की व्यथा-कथा? जो पिस रही है जाने कब से... मायके-ससुराल वालों के चढ़ा-ऊपरी, झूठे अहंकार के बीच?

गौरी तो न मायके वालों का अपमान सह सकती है, और न प्रतिकार ही कर सकती है अपने ससुराल वालों का। उसे तो बचपन से यही सिखाया गया था, यही घुट्टी पिलाई गई थी...'लड़की का बचपन अगर मायके में बीता तो उसे बाकी उम्र ससुराल में गुजारनी होती है।' उसके लिए तो दोनों ही पक्ष बराबर हैं, अजीज हैं। वो तो हर हाल में दोनों परिवारों की इज्जत-प्रतिष्ठा...मान-मर्यादा, बनाए-संजोए रखने वास्ते प्रतिबद्ध है। वो दई-मारी तो पिस के रह गई, मायके-ससुराल रूपी इन दो पाटन के बीच। उसके इस हालात पर सोचते मुझे बरबस ही हाल में सुने पं. छन्नूलाल मिश्र जी के गाए इस शास्त्रीय गीत...''कौन-सी डोर खींचे कौन-सी काटे रे'' की याद हो आई।

मुझे ध्यान है। बल्कि अच्छी तरह याद भी है, पिछली दफा जब गौरी से भेंट हुई थी तो उसने बताया भी था कि शादी के बाद वो अपनी पढ़ाई, आधी-अधूरी ही छोड़-छाड़ कर पति के घर चली गई थी। अब वो अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी करने में तन-मन-धन से प्रयास करना चाहती है। लेकिन, पढ़ाई पूरी करने की गरजवा बस्स, कुछेक और साल तक बच्चा नहीं चाहती थी। उसने तो परिवारजनों से बस्स...यही एक छोटी सी इच्छा जाहिर की थी।

दबी जुबान मुझे यह भी सुनने को मिला कि बी.ए. का प्राइवेट-फॉर्म भरने के बाद गौरी अपने पड़ोसी अवनि बाबू से पढ़ाई के सिलसिले में चंद किताबें, कुछ पुराने नोट्स वगैरह भी मांग लाई थी। उसे क्या पता था कि इस छोटी-सी बात का बन जाएगा बतंगड़ इतना? जन्म-जन्मांतर के रिश्तों की डोर इस कदर कच्ची साबित होगी कि एक झटके में ही चटक जाएगी? घर में बवंडर खड़ा हो जायेगा?

फिलहाल तो...गौरी की समस्या का समाधान और उसकी जिंदगी की अनिश्चितताओं भरी कहानी का अंत नहीं सूझ रहा। सुनते हैं, ऊपरवाला बड़ा कारसाज है, कोई-न-कोई रास्ता अवश्य निकालेगा। जहाँ तक गौरी को मैं जानता हूँ, वो धुनी है। हिम्मती है। उसमें कुछ कर दिखाने का जज्बा-जोश और जुनून भी है। पर कहीं-न-कहीं वो अपनी इस जादुई-शक्ति से अनजान है। मुझे उम्मीद है, पक्का विश्वास भी कि उसके दिन अवश्य बहुरेंगे। पर एक मेरे सोचने, उम्मीद करने भर से क्या होगा? जब-तक कि उसके परिवारीजनों की मन:स्थिति नहीं बदलेगी? अब गौरी आगे क्या करेगी? क्या वो अपने पति को माफ कर देगी? ससुराल वाले अपनी जिद छोड़ उसे लेने आ जाएँगे? या वो अपनी पढ़ाई मायके में रहकर ही पूरा करेगी? इन्हीं सब विचारों में ऊभ-चूभ होते मुझे नींद कब लग गई, पता ही नहीं चला।

''जब जानकीनाथ...सहाय भयोऽ''...मेरी नींद खुली, गौरी के छत से आ रहे इस मधुर गायन से। मुझे गौरी की आवाज पहचानने में दिक्कत नहीं हुई। गौरी, शास्त्रीय-संगीत का अभ्यास कर रही थी। क्या पता? वो संगीत के माध्यम से ही अपने दु:ख-दर्द पर विजय पाना चाहती हो? ठीक ही तो है, उस दिन मैंने गौरी की डायरी भी तो पढ़ी थी, कितना लाजवाब गद्य और पद्य लिखती है? मैं तो यही चाहूँगा कि गौरी पूरे जोशो-जुनून के साथ लिखंत-पढ़ंत या संगीत-साधना में ही जुट जाए। क्या पता...इन्हीं में से किसी क्षेत्र में वो कुछ बड़ा नाम कर सके? गौरी के पढ़ने-लिखने, संगीत सीखने की ललक, उसकी नैसर्गिक-प्रतिभा को देखते मैं तो यही कहूँगा...'रूत बदल डाल अगर फलना-फूलना है तुझे...उठ! मेरी जान।'

❖

5/348, विराज खंड, गोमती नगर,
लखनऊ-226010 (उ.प्र.) मो. 9450648701
ई मेल-ramnaginamaurya2011@gmail.com

..... *पृष्ठ 24 का शेष* **(ठेस)**

"यह आप नहीं बूझिएगा, सरजुग! नई-नई दोंगे में आई है। एकाध महीने में चचेरे भाई का जनेऊ है, जाएगी। तब उसके साथ जो जैसा बर्ताव करेगा, उसकी बड़ाई या शिकायत वैसे ही करेगी।" छेछरा ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया।

"अच्छा, यह बात। तब तुम अपने पैसे से तरबूज खरीदोगे?" मैंने मजाक किया।

"हाँ।" वह मुस्कराकर बोला।

हँसी-मजाक में रास्ता कटा। हाट में छेछरा ने आधा किलो तरबूज अलग से खरीदा, हम दोनों ने मिलकर उसे जीमा। डेढ़ किलो तरबूज घर के लिए लिया। मुझे भी जो लेना था, लिया और दोनों हाट से लौट चले। रास्ते की वार्ता में बताया कि हरी मिरचाई उसने पानापुरवाली के लिए ली है। रास्ते में कई किस्मों की बातें हुईं, जिनमें गाँव-घर से लेकर फिल्म-सिनेमा की बातें रहीं।

छेछरा चार भाइयों में सबसे छोटा है। रामसजीवन राय के इन तीनों बेटों में कभी भी मेल-मिलाप न रहा। छेछरा अभी नाबालिग है। बड़े भाई रामनारायण का विवाह आठ-नौ साल पूर्व हुआ, उसे दो बच्चे हैं। शिवनारायण अर्थात मँझले भाई का विवाह तीसरे साल हुआ, पानापुरवाली उसी की पत्नी है। सँझले भाई जगनारायण का विवाह बीते साल जंदाहा में हुआ। जंदाहा वाली अभी नई-न्योतार है, बीते शनिवार को गौने में आई है।

रामसजीवन राय के बड़े और मँझले लड़के का चूल्हा-चौका अलग-अलग है। सँझले अर्थात् जगनारायण और छोटे छेछरा की जौरागी है, माता-पिता भी इन्हीं के साथ हैं। रामसजीवन राय के सभी बेटे थोड़े-थोड़े ही पढ़ पाए। किसी को मैट्रिक तक पहुँचने का भाग्य न मिला। छेछरा ने भी नवें के बाद स्कूल का मुँह नहीं देखा। इधर-उधर टीका-कबड्डी में उसके दिन बीत रहे हैं। सोलह साल के इस लड़के की संगति नए और मनबढ़ू मिजाज के बच्चों से रही। लेकिन जब से इस पर मेरा प्रभाव पड़ा, यह उस प्रकार के छौंरा-मानर से अपनी देह लुकाता हुआ फिर रहा है। छेछरा का यह गुण मुझे पसंद पड़ा। नहीं पढ़ पाया, तो कम-से-कम संगति तो ठीक रखे।

छेछरा : माता-पिता का छोटा बेटा। दुलारू होना कोई नई अथवा अचरज की बात नहीं। भाइयों में झगड़ा-लड़ाई देखकर वह दूसरे ही मिजाज का हो गया। उसे अलग रहने वाले बड़े और मँझले भाई तो सुहाते नहीं। दोनों की कोई बात नहीं मानता छेछरा। मन हुआ, तो पिता की बात भी अनसुनी कर देता है। लेकिन माता-पिता के साथ रहने वाले सँझले भाई को वह अपना समझता है, अन्य दोनों भाइयों को गँउआ-घरुआ। पानापुरवाली अर्थात् मँझली भौजाई की मिरचाई आज पेठिया से कैसे लिए जा रहा है छेछरा, यह मुझे आश्चर्यजनक लगा, उस पर भी मँझली के पास पैसे न थे, तो अपने पैसे से मिरचाई खरीदी। मुझसे रहा न गया, मैंने पूछ ही दिया, "क्यों, आज मँझली भौजाई पर भी ढर गए, क्या बात है?"

"सरजुग! मैं भाइयों में छोटा हूँ, तो कुछ टहल-टिकोला तो करना ही चाहिए।" छेछरा ने हाथ चमकाते हुए कहा।

"यदि ऐसा था, तो कल बड़की ने तुम्हें दुकान से सलाई खरीदकर लाने को कहा तो क्यों मना कर दिया?"

"उसका काम नहीं करेंगे। बड़े भाई और बड़ी भौजाई तो मुझे सुहाते नहीं।"

"मँझली कब से सुहाने लगी?" मैंने जान-बूझकर व्यंग्य किया।

"मँझले भाई और भौजाई का स्वभाव ठीक है। पता नहीं, कभी-कभी क्यों बिगड़ जाता है? इधर हमारा और मँझले का चूल्हा साथ ही जलता है।" उसने स्पष्ट किया।

कई दिनों तक मैंने देखा, छेछरा का स्वभाव मँझले भाई और भौजाई के लिए बदला है। छेछरा उनके काम अपने काम की तरह हँस-हँसकर करता जा रहा था।

उस दिन मैं अपने घर की छत पर बैठा कुछ लिख-पढ़ रहा था। तभी छेछरा की गुस्सैल आवाज सुनी। वह मँझले भाई के बेटे पर गुस्सा रहा था कि काठ की नई बनवाई हुई कुर्सी गंदी कर दी थी। छोटा सा बच्चा-डाँटने से रो पड़ा। छेछरा के आँगन का दृश्य मेरी छत से दिखता है, मैं देखने लगा। बच्चे का रोना जोर पकड़ गया। उसकी माँ सिलबट पर मसाला पीस रही थी। शाम हो चुकी थी, खाना बनाने का

समय हो रहा था। पहले तो पानापुरवाली वहीं से पुचकार कर चुप करने लगी, लेकिन वह नहीं, तो नहीं चुप हुआ।

छेछरा कुर्सी धो रहा था। पानापुरवाली उठी और कुर्सी खींचकर बच्चे के पास रख दी,—"छोड़ो, यह हमारी कुर्सी है।" बच्चा तो चुप सो गया, लेकिन छेछरा जो खाट पर चितांग पड़ गया, सो पड़ा रहा। बहुत देर तक आसमान ताकता रहा। कौन सोच सकता है कि यह सोलह साल का अक्लमंद लड़का इतनी-सी बात पर ऐसे रूठेगा कि रात में खाना भी नहीं खाएगा! सभी ने मनाया, पर वह नहीं माना। अपने घर के आंगन से उठकर मेरे दरवाजे पर आ गया। मैंने भी उसे खाने के लिए मनाया, पर उसकी भीष्म प्रतिज्ञा नहीं टूटी। मैंने कहा,—"अपने यहाँ नहीं खाओगे तो मेरे ही यहाँ खा लो।"

लेकिन वह नहीं माना। मेरे ही साथ चौकी पर सो गया। कौन मनाए, कैसे मनाए!

रात बीती, सुबह हुई। छेछरा उठकर अपने घर न गया। मेरे ही यहाँ से लोटा लिया और शौच को गया। फिर कहाँ गया, यह किसी ने नहीं जाना। जब उसके माता-पिता ने खोजबीन की, तब मुझे भी अंदेशा हुआ। उसके जहाँ-जहाँ मिलने की गुंजाइश थी, खोजा गया। वह नहीं मिला। उसके घर में रोना-धोना शुरु हो गया। मुझे भी चिंता हुई। डर हुआ कि कहीं छेछरा को कुछ हो गया तो अपयश मुझे भी लगेगा। लोग कह सकते हैं कि रात भर यदि वह मेरे यहाँ रहा तो सुबह में मैंने उस पर ध्यान क्यों नहीं दिया। लोग यह भी कह सकते हैं कि इधर कई महीनों से वह मुझ से ही घुला-मिला रहा है, कहीं मैंने उसे सिखा-पढ़ाकर भगा तो नहीं दिया!

खोजते-खोजते छेछरा मिला। वह एक आम के बगीचे में गमछा बिछाकर लेटा हुआ था। मेरे साथ उसके पिता और भाई जगनारायण भी थे। छेछरा निर्भीक सोया हुआ था, जैसे रात की नींद अभी पूरी कर रहा हो। मैंने झकझोरा,—"शेखर! शेखर! उठिए।" मैंने पहली बार उसे आदर सहित छेछरा के बदले शेखर पुकारा।

वह उठ बैठा। अपने पिता और भाई की ओर इशारा किया,—"इन दोनों को यहाँ से जाने के लिए कहिए।"

छेछरा के बिगड़े हुए तेवर को देखते हुए मैंने उसके पिता एवं भाई को वहाँ से हट जाने के लिए कहा। दोनों दूर खड़े हुए। छेछरा की आवाज बहुत गहरी हो रही थी,—"सरजुग! कोई अपना नहीं है।"

"कैसे?" मैंने पूछा।

"न, मुझे अब पूरी तरह समझ में आ गया। पानापुरवाली की नैहर से दहेज में वह कुर्सी आई थी। मैं समझ रहा था कि अब हम जौर-साथ हैं। बोल-बतियान हो ही रही थी। उसका स्वभाव मुझे भा रहा था। मैं समझ रहा था कि वह अपनी है, लेकिन! उस कुर्सी को मैं धो ही तो रहा था। धोकर रख देता। लोगों के बैठने के लिए रखता, खा तो नहीं जाता।" उसकी आवाज में दु:ख झलक रहा था।

"क्या शेखर आप इस छोटी-सी बात को लेकर ढो रहे हैं। उन्होंने आपसे कुर्सी छीन तो नहीं ली! उन्होंने बच्चे को चुप कराने के लिए ऐसा किया होगा।" मैंने समझाया।

"नहीं, उन्होंने मुझे कहा क्यों नहीं! कुर्सी छीन ली।" छेछरा के भीतर जो बात पैठ गई थी, वह निकलने का नाम नहीं ले रही थी।

"अच्छा, चलिए, खा लीजिए।" मैंने मनाया।

"पानापुरवाली से मेरे बाबू और भाई बोलना बंद कर देंगे, तभी मैं खा सकता हूँ। एक और बात, जंदाहावाली भी पानापुरवाली से नहीं बोलेगी, हमारे चूल्हे पर पकाएगी भी नहीं। जो करेगी, जंदाहावाली करेगी, नहीं तो माई करेगी। "छेछरा ने अपना निर्णय सुना दिया।

हालाँकि मैं उसकी बातें मानने का अधिकारी नहीं, लेकिन अपने ऊपर भार लेकर कह गया,—"ठीक।"

छेछरा मान गया। घर लौटा, खाया-पीया, सब किया। लेकिन पानापुरवाली की ओर घूमकर भी नहीं देखा।

उस दिन छेछरा की माँ भी पानापुरवाली से नहीं बोली। बाबू तो ससुर होने के कारण पहले ही से नहीं बोल रहे थे। जंदाहावाली को भी समझा दिया गया कि एकाध-दो दिन पानापुरवाली से न बोले। सभी ने कहा, छेछरा का ज्ञान छोटे बच्चे की तरह है।

वैसा ही हुआ।

छेछरा इसका मुआयना भी करता रहा कि उसकी बात चल रही है कि नहीं।

एक दिन, दो दिन बीते। फिर छेछरा की बात भुला दी गई। लेकिन छेछरा भूलने को तैयार नहीं था।

पानापुरवाली फिर उसी चूल्हे पर पकाने लगी, जंदाहावाली और माई पानापुरवाली से बोलने लगी। छेछरा गुस्से में आग हो गया।

फिर घर छोड़कर चल दिया, फिर मानने की वही शर्त, लोगों को फिर माननी पड़ी।

छेछरा की शर्त को सभी ने भले ध्यान में रखा हो, लेकिन मन में किसी ने भी नहीं रखा। उसने चार दिनों के बाद फिर घर छोड़ दिया। उसके मानने की वही शर्त लोगों को फिर माननी पड़ी।

लेकिन चार-पाँच दिनों के बाद फिर वही बात। छेछरा ने देखा कि पानापुरवाली उसके चूल्हे पर खाना पका रही है। गुरमूस कर उठा और हल जोतने का पैना उठाकर उसकी पीठ पर जमा दिया। शिवनारायण हलवाही में से आए ही थे, पत्नी के चीखने की आवाज सुनी तो बिना हाथ-पाँव धोए भनसाघर में दौड़े। छेछरा को लोगों ने बचा दिया, अन्यथा शिवनारायण की देह पर तो जैसे भूत ही सवार हो गयी थी।

उस दिन से घर में रोज झंझ-मंझ। तनिक इधर-उधर हो, तो फिर वही बात। छेछरा किसी पर गड़ाँसा लेकर डेब जाता, तो किसी पर टेंगारी। लोगों की समझ में आ गया कि छेछरा पागल हो गया। लोगों के समझाने-बुझाने का कोई असर नहीं हुआ। उस दिन पानापुरवाली से जंदाहावाली को बातें करते हुए सुना, तो छेछरा का मन फिर बखुरा हो गया। सामने फँसुल थी, उठाई और चला दी। वह तो संयोग रहा कि फँसुल भनसाघर के खंभे से टकराकर रह गयी, अन्यथा कोई बड़ी दुर्घटना घट जाती।

अब सभी को पूरा विश्वास हो गया कि छेछरा पगला गया है। लोगों की सलाह पर उसे दरवाजे के पाये से बाँधकर छोड़ दिया गया। लेकिन इसका उस पर उल्टा ही प्रभाव पड़ा। अब वह घायल सिंह की तरह हो गया था। पाया से खुलते ही किसी पर कुछ फेंक दे, तो किसी पर कुछ। माँ समझाने गई, तो ईंट का एक टुकड़ा उठाकर उसी पर चला दिया। बुढ़ापे की कमजोर देह, माथे से खून बहने लगा, गिर पड़ी बेचारी।

"यह ठीक ही पगला गया है, कब किसे क्या कर देगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।" जमा हुई भीड़ ने सलाह दी, "बर बखत किसी को कुछ भी फेंककर मार देता है, इसे काँके के पागलखाने में भर्ती करा दिया जाए।"

रामसजीवन राय आजिज हो गए थे, टोने-टोटके से तो कोई लाभ न हुआ, डॉक्ट्री जाँच उन्हें भी आवश्यक लगी।

लेकिन छेछरा डॉक्ट्री जाँच के लिए नहीं माना। विचार किया गया और चार लोगों ने पखमोर चढ़ाकर हाथ-पाँव बाँध दिए, बैलगाड़ी पर लाद दिया। छेछरा चिल्लाने लगा, सभी ने अनसुना कर दिया। कमजोर हृदय वालों की आँखों से आँसू बहने लगे, उसकी माँ रह-रह कर बेहोश होने लगी।

बैलगाड़ी मेरे घर के समीप से गुजरने लगी तो छेछरा रोने लगा। लोगों से निवेदन किया,—"मुझे जहाँ ले जाना हो, आप लोग ले जाएँ, लेकिन जरा सरजुग से भेंट करा दीजिए। जरा बैलगाड़ी रोक दीजिए।"

लोग मान गए, मैं अपने हृदय को ऐसे दृश्यों को देखने में कमजोर समझता हूँ, घर में से जबरन निकल पाया। छेछरा भोक्कार मार कर रो पड़ा। मैंने सांत्वना दी तो चुप हुआ। उसकी आँखें लाल हो गई थीं, चेहरा भयानक हो गया था। उसने मुझसे कहा,—"जा रहा हूँ, सरजुग! मेरा कोई अपना नहीं, जिंदा ही अर्थी जा रही है। राम-राम!" उसने अभिवादन में हाथ जोड़ लिए, उसकी आँखें फिर से बह चलीं। वह गाने लगा, " जरा धीरे गाड़ी हाँको, मेरे राम गाड़ीवान।"

चों चेच्च चों चेच्च! गाड़ी बढ़ी जा रही थी। मैं देखता रह गया, मेरी आँखें भी उमड़ आ रही थीं।

❖

प्रभा निकेतन, पत्रकार कॉलोनी, महनार
वैशाली, बिहार-844506 मो. 8789335785
Email : ashwinikumaralok@gmail.com

..... पृष्ठ 31 का शेष **(माँ की वजह से जिंदा हूँ)**

पैसे बढ़ने पर इतना विरोध क्यों कर रहे हैं। उन्हें क्या रजत और उसकी बीवी दिन-रात मजदूरी करते, लोगों की जी-हजूरी करते नजर नहीं आते? कुछ प्रश्नों के जवाब मुझे कभी नहीं मिले।

मैंने उनसे व्यक्तिगत तौर कुछ नहीं कहा, मगर आगामी आर.डब्लू.ए. की जनरल मीटिंग में सभी के सम्मुख यह बात रख दी कि रजत जो हमारी कारें साफ करता है, उसे रुपये बहुत कम दिए जा रहे हैं।

अय्यर जी ताव में आ गए और मेरे खिलाफ उन्होंने अपना पूरा मोर्चा खोल लिया। "यह रेट की बात है। यहाँ सिर्फ रजत ही नहीं, आठ लड़के काम करते हैं। अगर रजत के रेट बढ़े तो सभी के बढ़ाने पड़ेंगे।"

"तो सभी के बढ़ा दीजिए। आपको लगता नहीं कि उन्हें पैसे बहुत कम दिए जा रहे हैं। सुबह-सुबह पहली मंजिल से लेकर आठवीं मंजिल तक चाबियाँ इकठ्ठा करना, नीचे बेसमेंट में जाकर गंदी कारें साफ करना, चाबियाँ लौटाने के लिए वापस घरों में जाना...यह सब ही बेहद मेहनत वाला काम है। उनके श्रम का सही मूल्यांकन न करना क्रूरता और अत्याचार है।"

दो-चार लोगों ने मेरे साथ अपना स्वर मिला दिया तो फिर क्या था अय्यर जी गुस्से से आग बबूला हो गए। हाथ नचा-नचा कर मुझसे कहने लगे, "आप लोग जहाँ से आए हैं, वहाँ वापस चले जाएँ। यूरोप की तुलना यहाँ न करो। यहाँ आप हमारे रेट खराब करने लगे हो।"

"बहरहाल रजत के रेट नहीं बढ़े, मगर मेरे और अय्यर जी के संबंध जरूर बिगड़ गए। उनके पूरे परिवार ने मुझसे अपना मुँह मोड़ लिया। उनके बेटे ने मेरे बच्चों के साथ खेलना बंद कर दिया।" मुझे एक शादी में जाना था। मेरे मामा की लड़की की शादी हो रही थी। मामाजी का परिवार नोएडा में बसा था। बहुत साल हो गए थे परिवार की किसी शादी में भाग लिए। साड़ी पहने भी जमाना हो गया था। मैंने अलमारी से पारंपरिक परिधान बनारसी साड़ी निकाली। रजत को प्रेस के लिए पकड़ाते हुए बोल पड़ी,—"रेशमी साड़ी है। जला मत देना। बहुत महँगी है-पंद्रह हजार की।"

"जलने की बात मत किया करो,"—उँगली नचाता हुआ, गहरी आवाज में वह उसी अंदाज में बोला। मेरा दिल कुहुक सा गया। उससे पूछ बैठी कि उसको मेरी यह बात इतनी लग क्यों जाती है? उसने गर्दन झुका दी, एकदम खामोश हो गया। मेरे दिए वस्त्र चादर में लपेटने लगा। थोड़ी देर में मोटे-मोटे आँसू उसकी आँखों से फर्श पर गिरने लगे।

"अरे रजत! तुम रो रहे हो! क्यों क्या हुआ?"

सहसा वह बिफर गया,—"जलने की बात मत किया करो।"

"क्यों, इसमें ऐसा क्या है? तुम्हें बस चेताती हूँ कि कपड़े महँगे हैं। प्रेस करते हुए कहीं जला मत देना।"

"बस, बस... इतना डर है तो मुझे मत दिया करो अपने कपड़े प्रेस करने के लिए।" और वह फूट-फूट कर रोने लगा। "अरे!" मैं असमंजस में।

किचन से उसके लिए एक गिलास पानी ले आई। उसे थमाते हुए, उसका कंधा पकड़ा। "आई एम सॉरी, रजत! मेरा मकसद तुम्हारा दिल दुखाने का नहीं रहता।"

"मेरी माँ जलकर मरी थी,"—वह पानी घूँटते हुए बोला। यह मुझे रजत की पत्नी मानसा से पता चल चुका था कि उन्होंने बिहार के मराँची गाँव से दिल्ली पलायन किया था—महानगर की अट्टालिकाओं में मजदूरी करके अपनी रोजी-रोटी कमाने के लिए। उनके गाँव में रोजगार के कोई अवसर नहीं थे, अगर कोई काम मिलता भी तो मजदूरी इतनी कम कि गुजारा नहीं हो पाता था। संयोग से मानसा की बहन और बहनोई दिल्ली में डिफेन्स कॉलोनी में रह रहे एक व्यापारी के घर काम करते थे। बहनोई उनका ड्राइवर था और बहन उनकी घरेलू बाई।

व्यापारी ने उन्हें रहने के लिए अपना आउटहाउस दे रखा था। रजत और मानसा भी बिहार से आकर उनके साथ

रहने लगे। तीन महीन वे बहन की पनाह में रहे फिर एक बस्ती में अपना बंदोबस्त कर लिया। दो हजार किराया वह प्रतिमाह भरते हैं, बिजली-पानी का बिल अलग से।

रजत जब सामान्य हो गया तो खुद ही अपनी माँ के जलने की कहानी सुनाने लगा।

मेरे माँ-पिताजी गाँव से पटना आ गए थे मजदूरी करने। पिताजी रिक्शा चलाते थे और माँ घरों में काम करती थी। एक दिन माँ स्टोव पर खाना पका रही थी, पिताजी और माँ का उन दिनों बहुत झगड़ा चल रहा था। कभी-कभी झगड़ा इतना बढ़ जाता कि पड़ोसी आकर छुड़ाते। उस दिन माँ खाना पकाते हुए गुस्से में कुछ बड़बड़ा रही थी, पिताजी को कुछ खरी-खोटी सुना रही थी। कोई मनकानी सरनेम गूँज रहा था। पिताजी गुस्से में दाँत पीसते हुए कह रहे थे—"तू चावला के घर काम करने नहीं जाएगी।"

"तो कमा इतना कि मुझे उनके घर न जाना पड़े।"

"सुबह से शाम सड़कों पर मारा-मारा फिरता तो हूँ। जब नहीं मिलती सवारी तो क्या करूँ? लोगों के पास कारें आ गई हैं, बड़े-बड़े विक्रम, टेम्पो चलने लगे हैं। लोग उनमें जाना पसंद करते हैं।"

"तभी से बोल रही हूँ कि रिक्शा छोड़ कर कोई टेम्पो चलाना शुरू कर दे,"—माँ ने सुनाया। "तू ठहरा निरा निकम्मा! मैं क्या जानती नहीं। और रिक्शे वालों के साथ दिन भर फालतू में बतियाता रहता है। ताश-पत्ती खेलता है उनके साथ। बीड़ी फूँकता रहता है। तेरी बस की ना है कुछ करने।"

"हम भूखे मर जाएँगे मगर तू उस मनकानी के घर नहीं जाएगी जो तुझ पर गंदी नजर रखे," पिताजी चीखे।

"मैं जाऊँगी, मैं जाऊँगी...तू कौन होवे मुझे रोकन वाला,"—माँ भुनभुनाई।

पिताजी ने गुस्से में आकर पीछे से माँ के ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क दिया। स्टोव की आग ने माँ को तुरंत पकड़ लिया। पिताजी पर भूत सवार हो गया था। वे पगला गए थे। उन्होंने अपने ऊपर भी तेल की बोतल उड़ेल दी। उन्हें भी आग की लपटों ने जकड़ लिया। मैं पास ही बैठा खेल रहा था। पिताजी मेरी तरफ बढ़ रहे थे, मुझे भी जलाने के लिए। माँ ने उन्हें पकड़ लिया। कस कर चिल्लाई,—"रज्जू, भाग...घर से भाग...बाहर निकल...।" मैं आठ साल का...कभी आग में झुलसते अपने माँ-पिताजी को देखता, कभी घर के दरवाजे को। पिताजी माँ की गिरफ्त से अपने को छुड़ाकर मेरी तरफ लपक रहे थे। "रज्जू भाग... बाहर जा..." माँ लगातार चिल्ला रही थी, और मैं घर से बाहर भाग गया। बगल में रहने वाली आरती मौसी से हाँफते हुए बोला,—"आग...आग...माँ...पिताजी...जल रहे हैं।"

आरती मौसी ने हमारे घर से उठता धुआँ देखा। बस्ती में रहने वाले सभी को गुहार लगाई। सभी हमारे घर की तरफ भागे। माँ और पिताजी बुरी तरह झुलस चुके थे, बस राख होना बाकी था। सभी पड़ोसियों ने मिलकर पानी उड़ेल-उड़ेल कर धधकती आग को बुझाया। माँ और पिताजी को अस्पताल ले गए, मगर दोनों दम तोड़ चुके थे। कुछ दिनों तक मैं आरती मौसी के साथ रहा, फिर गाँव से दादा-दादी आकर मुझे गाँव ले गए। आरती मौसी और बस्ती के बाकी लोग मेरे माँ-बाप की मौत पर बातें कर रहे थे।

"उस मनकानी की वजह से ही सब कुछ हुआ...उस चावला की वजह से वे जल कर राख हुए," उनकी अफवाहों में यह वाक्य बार-बार उछल रहा था। उनकी बातों से ही मुझे पता चला कि माँ जब एक दिन सिंधी मनकानी के घर में काम कर रही थी, तो घर का मालिक घर में अकेला था। उसकी बीवी कहीं जा रखी थी। माँ पोंछा लगा रही थी, और वह पलंग पर बैठा माँ को ताक रहा था। फिर यकायक पूछने लगा,—"मेरी बीवी तुझे यहाँ काम करने के कितने पैसे देती है?"

"पाँच सौ रूपये प्रति माह।"

"मैं तुझे हजार दूँगा-एक बार के...।"

वह ललचाई नजरों से माँ को ऊपर से नीचे निहारते हुए बोला,—"तू ऐसा छोटा काम करने के लिए बहुत सुंदर है री। गजब की सुंदर है तू। अप्सरा!"

माँ का हाथ पकड़ कर बोला,—"चल बिस्तर पर... मालामाल कर दूँगा..।"

माँ अठ्ठाइस की और वह अठ्ठावन का। उसकी बेटियाँ माँ की उम्र की थीं और माँ का बाप उसकी उम्र का। "मुझे रंडी नहीं बनना। छोड़ो मेरा हाथ, वरना मैं शोर मचाऊँगी," माँ ने उसे धमकी दी। माँ चिल्लाने को हुई तो उसने डर कर माँ का हाथ छोड़ दिया।

माँ ने यह बात कइयों को बताई, पिताजी को भी। पिताजी माँ पर ही शक करने लगे। उनका आपस में झगड़ा होने लगा। माँ वह घर नहीं छोड़ना चाहती थी, क्योंकि माँ को उस घर की मालकिन से बहुत अच्छे पैसे मिलते थे। साथ में कपड़े-लत्ते और खाना-पीना अलग मिलता था। और उनकी शादीशुदा लड़की जो उनके पड़ोस में रहती थी, वहाँ भी माँ काम करती थी। माँ को लगा एक साथ दो घर छूट जाएँगे। माँ घर की मालकिन से बोल चुकी थी,—"मैं आपके घर आपकी गैरमौजूदगी में काम नहीं करूँगी। मुझे साहब से डर लगता है।"

मालकिन माँ का इशारा कितना समझी, मालूम नहीं मगर उसने चुपचाप सहमति में गर्दन हिलाई।

गाँव में मैं आठवीं तक स्कूल गया। सोलह साल का था तो एक सत्रह साल की लड़की से मेरी शादी हो गई।

"तो मानसा उम्र में बड़ी है तुमसे?"

"एक साल।"

मुझे रजत बहुत जवान लगता था, वह दो साल के बच्चे का पिता नहीं लगता था।

पूछ बैठी, "क्या उम्र है तुम्हारी?"

"तेईस साल।"

"तुम तो अभी बहुत जवान हो।"

"बीवी ही मुझे यहाँ दिल्ली लेकर आई। वह बोली, गाँव में कुछ नहीं धरा है, दिल्ली चलते हैं। वहाँ उसकी बहन रहती है, वहाँ मजदूरी करेंगे, और हम यहाँ आ गए।"

"गाँव से दिल्ली आने तक का सफर कैसा था?" मैंने पूछा। "गाँव से पटना आने में बस से ढाई घंटे लगे, फिर पटना से रेलगाड़ी में अठारह घंटे लगे दिल्ली पहुँचने में। ट्रेन के टिकट के पैसे भी नहीं थे, कर्जा लेकर आए।"

मुझे लगा कि उनकी बिहार से दिल्ली की यात्रा मेरी दिल्ली से डेनमार्क की यात्रा से कहीं अधिक संघर्षमय थी।

रजत की पत्नी भी हमारे घर शाम के बर्तन निपटाने के लिए आ गई थी। फर्श पर चुपचाप बैठी अपने पति के मुख से निकलती कहानी सुन रही थी। पता नहीं कितनी बार वह सुन चुकी होगी! उसकी भी आँखें भर आई थी। अपने पति को वह सहलाने लगी थी।

"तुम्हारी माँ महान थी,"—मैं बोली।

"मैं आज अपनी माँ की वजह से ही जिंदा हूँ।"

मैंने रजत और मानसा को सहलाया। "यह देखकर बहुत खुशी होती है कि तुम दोनों एक-दूसरे के प्रति बड़े वफादार हो। मेहनती हो। अपने अनसु को प्यार से पालना। उसे खूब पढ़ाना-लिखाना।"

सहसा मेरे दिमाग में कुछ कौंधा। कभी से सोच रही थी कि किसी गरीब बच्चे की शिक्षा को स्पोंसर करूँ। कुछ संस्थाओं और अनाथालयों से मेरी बात भी चल रही थी। अरे मैं इधर-उधर क्यों जाऊँ? अनसु है तो सामने। मैं उनसे बोली,—"अनसु की पढ़ाई के खर्चे का जिम्मा मैं ले लेती हूँ।"

दोनों ने मुझे हाथ जोड़ लिए। वे स्वाभिमानी थे, बोले,—"हमें बस आपका आशीर्वाद चाहिए। अपने अनसु को हम मजदूरी करके पढ़ा लेंगे।"

❖

इस्लेवह्यूसवेज 72बी, 2700 ब्रोनशोज
कोपेनहेगन, डेनमार्क
मोबाइल : + 45 71334214

..... *पृष्ठ 33 का शेष* **(सरोज रानियाँ)**

मैंने पूछा, खुश तो हो न यहाँ। कैसे हैं तुम्हारी ससुराल वाले, तुम्हारा ख्याल रखते हैं न?

जी, उसने सिर हिलाया।

मैंने पूछा, तुम्हारा पति कैसा है?

अचानक उसकी आँखें बहुत कुछ बोलीं, लेकिन मुँह से सिर्फ इतना निकला कि, मैडमजी, मैं सोचती थी कि अपने पति के पीछे मोटर साइकिल पर बैठूँगी, उसकी कमर में हाथ डालकर....।

बाकी लोगों के आने से बात वहीं रह गई। मैंने बात को हल्का-फुल्का करने के इरादे से अन्य लोगों से उनके इंग्लैंड आने के अनुभव के बारे में बातचीत की। लेकिन मुझे उस लड़की के बारे में और जानने की इच्छा बढ़ने लगी। उसकी शिक्षिका होने के नाते उसकी सुरक्षा के प्रति मेरा कर्तव्य था सो मैंने उसे ट्यूटोरियल के बहाने अगली क्लास में आधा घंटा पहले आने को कहा। उसने कहा कि आप लिखकर दे दीजिए, वरना मैं नहीं आ पाऊँगी।

अगले हफ्ते वह आई ही नहीं, मेरी बेचैनी बढ़ गई। बाकी लोगों से पूछा तो शहजादी ने दबे शब्दों में बताया कि उसके घर में थोड़ी परेशानी है। मैं कुछ परेशान-सी हो गई। मैंने तय कर लिया था, अगली बार आते ही उससे आवश्यक जानकारी ले लूँगी।

वह उसके अगले हफ्ते आधा घंटा पहले आ गई। उसे देखकर मुझे खुशी भी हुई और दुख भी। खुशी इसलिए कि वह तीन हफ्ते बाद क्लास में आई और दुख इसलिए कि उसकी आँखों के नीचे गहरे गढ्ढे पड़े थे, चेहरा एकदम निचुड़ा हुआ और होठ पपड़ाए। आँखें झुकी हुईं।

मैंने कहा, सरोज, मैं तुम्हें लेकर बहुत चिंतित थी, तुम मेरी बेटी की उम्र की हो, तुम्हारे मन में कोई भी बात है तो बिना डरे तुम मुझसे बात कर सकती हो।

मैडम! जी...मैं फँस....उसका गला रूँध गया। मैंने पानी का गिलास लाकर उसे दिया और कंधे पर सांत्वना-भरा हाथ रखा। मेरे हाथ रखते ही उसके मन में बँधा सैलाब आँखों से टूट निकला। क्लास शुरू होने में लगभग 20 मिनिट थे। मैं उसके सामने कुर्सी पर बैठ गई। मैं चाहती थी कि वह कुछ बोले, लेकिन उसकी आँखों से आँसू रुकने का नाम न ले रहे थे। मुझे उसका रोना उसके स्वास्थ्य के लिए जरूरी लगा। मेरे कान दरवाजे पर थे और मैं उसका हाथ दबाए धीरज बँधा रही थी, पर सच तो यह था कि मेरा मन उसकी कहानी जानने को बेचैन था।

....दो साल शादी को हो गए, पति मुझे जाहिल समझता है। उसने मुझे आज तक हाथ भी नहीं लगाया। शादी का मतलब क्या होता है, मैं नहीं जान पाई हूँ। टीचरजी, दिल करता है कि वह मुझे....कि वह मुझे....। ....रात-रात भर प्ले स्टेशन खेलता है। मैंने एक दिन मना किया तो तीन-चार थप्पड़ जड़ दिए। तब से जब-तब मुझ पर हाथ छोड़ देता है। सास दूसरों के सामने अलग व्यवहार करती है। अकेले में धमकाती है। कहती है कि मेरा बेटा यदि दिन को रात कहता है तो तू भी कह। मेरे पिता का देहांत हो गया, तब भी जाने नहीं दिया। अगर अपनी स्थिति माँ को बता दी तो वह जीते जी मर जाएगी। तीन बहनों की शादी होनी है...। मैं क्या करूँ टीचर? मैं फँस गई हूँ बुरी तरह से....। उसने अपना मानो, हृदय खोलकर रख दिया। उसकी हालत जानकर, भीतर, मेरा हृदय जार-जार रो रहा था! मैं स्तब्ध! नि:शब्द!... चुपचाप!... सिर्फ सुनती रही।

उस दिन बाकी लोगों के आने के पहले ही वह रोकर हल्की हो चुकी थी। मुँह धोकर कॉपी खोलकर बैठ गई। मैंने उस दिन सोचा तो था कि बैंक में अकाउंट कैसे खोलते हैं, यह पढ़ाऊँगी, किंतु सरोज की कहानी ने मुझे भीतर तक हिलाकर रख दिया था। अंतिम क्षण में मैंने

अपना निर्णय बदलकर, उस दिन पारिवारिक हिंसा, मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य तथा 'सोशल सर्विसेज' के विषय में जानकारी दी। कुछ महत्त्वपूर्ण नंबर लिखवा दिए सभी को।

गर्मी की छुट्टियाँ शुरु होने वाली थीं। दो सप्ताह और चार कक्षाएँ रह गई थीं। उस दिन के बाद सरोज मेरी कक्षा में कभी नहीं आई। मन का कोई कोना हर कक्षा में उसकी प्रतीक्षा करता। एक दो बार अन्य महिलाओं से जानने की कोशिश भी की, पर कुछ पता नहीं चला। कक्षा में सरोजरानी अक्सर शहजादी के साथ ही बैठती थी। लेकिन शहजादी के जुड़वाँ बच्चे होनेवाले थे तो तीन सप्ताह से वह भी नहीं आ रही थी। कैसे पता करती?

सत्र का आखिरी दिन था। अचानक शहजादी अंदर आई, मेरा दिल किया कि उसे पूछूँ कि सरोज की कोई खबर है क्या। लेकिन शिष्टाचार के नाते मैंने उससे बच्चों, उसके स्वास्थ्य आदि की बात की। लेकिन फिर मेरे मन की मुराद पूरी हो गई।

बोली, "टीचर, आपको सरोज रानी के बारे में बताना है।"

"टीचर, जब वो क्लास में नहीं आई थी न..उसके दो-तीन दिन बाद उसके घरवालों ने उसे बहुत पीटा। वह जैसे-तैसे दरवाजा खोलकर भागी और सर्जरी (दवाखाना) में पहुँच गई। सरोज को वहाँ से शायद सोशल सर्विसेज वाले ले गए।" वह एक साँस में बोल गई।

"तुम्हें कैसे पता", मैंने पूछा।

शहजादी ने बताया कि वह उस समय सर्जरी मैं मौजूद थी किंतु पुलिस वगैरह देखकर डर गई। उसने सरोज को वहाँ से जाते हुए देखा।

सरोज रानी की यह आखिरी खबर थी।

***

खिड़की का काँच पोंछते हुए सीढ़ी पर मेरा संतुलन बिगड़ गया और मैं धड़ाम से गिरी। कोहनी और कलाई की हड्डियाँ टूट गई। फौरन घर के काम के लिए एक एजेंसी से संपर्क किया। नाम सुरजीत, 30-32 साल की होगी, लाल टॉप-नीली जीन्स, मैंचिंग लाल लिप्सटिक। गोरी, साधारण नाक-नक्श, लंबी और तंदुरुस्त। घर की साफ-सफाई के लिए सुरजीत सप्ताह में एक दिन आने लगी। वह खाना बहुत स्वादिष्ट बनाती थी और मुझे जिद करके, बड़े प्यार से, गरम-गरम रोटियाँ सेंककर खिलाती। सुरजीत वैसे शांत ही रहती थी। बात करने पर मुस्कराकर ही जवाब देती। मैं उसके काम से खुश थी, वह मुझसे।

एक दिन मैंने उसे कहा कि सुरजीत तुम क्लास में इंग्लिश सीखने आया करो। सुरजीत ने मुस्कुराते हुए खिड़कियाँ साफ करने के लिए कपड़ा और विंडो क्लीनर की बॉटल उठा ली। क्या कहूँ मैडम,—"अगर नसीब में पढ़ना-लिखना ही होता तो यहाँ शादी करके क्यों आती, स्कूल की प्रिंसीपल न बन जाती? बस, मेरी माँ फँस गई मेरी सास के जाल में। मेरी सास मुझे देखने आई थी तो सोने के कड़े डाल गई थी शगुन में। पाँच महँगे सलवार-कमीज और मिठाई-चॉकलेट के तो इतने डिब्बे लाई थी कि मेरी माँ ने पूरे गाँव को ही खिलाई।"

"तुम हिंदी तो बड़ी साफ बोलती हो? कहाँ की हो, पंजाब या दिल्ली?"

"क्या फर्क पड़ता है मैडमजी, किस गाँव की हूँ और किसकी बेटी हूँ? क्या फर्क पड़ता है कि गाँव के सरकारी स्कूल में हिंदी पढ़ाती थी?....पिंड में बड़ी इज्जत थी मेरी। 2500 रुपये महीना मिलता था। पर मैं खुश थी। मेरे बाप ने मेरी नौकरी लगने पर पूरे पिंड में मिठाई बाँटी थी। अब तो लोगों के टॉयलेट साफ करती हूँ। अच्छा हुआ बाप को यह नहीं सुनना पड़ा। उससे पहले ही भगवान ने उन्हें उठा

लिया।....दिल्ली एयरपोर्ट तक छोड़ने आए थे मेरे पापाजी।" मुझे लगा, पापा बोलते हुए उसका गला रूँध गया था।

मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा, फिर बहुत धीरे से कहा,—"फिर क्या हुआ ? बताओ न सुरजीत।"

उसने नाक सुड़की। "पापाजी बहुत खुश थे। पहली बार हवाई जहाज देखा था मैंने। मन में अजीब-सा डर था, यदि कोई लेने नहीं आया तो...। पापाजी के गले लगकर खूब रोई थी मैं। पापाजी भी रो रहे थे। इंग्लैंड आने की खुशी तो शायद उतनी नहीं थी, जितना अपनों के छोड़ने का गम और एक अंजानी आशंका से भरा मन।"

फिर अचानक सुरजीत ने अपना मन बदल लिया, अपनी कहानी को झटके से खत्म करती हुई बोली,—"मैडमजी छोड़िए भी, क्यों उन हरामियों का नाम लेकर अपना दिन खराब करना, उसकी आवाज में क्रोध-सा झलका। वह कुछ पलों के लिए चुप हो गई।"

लेकिन उसके भीतर बहुत कुछ उबल रहा था जो बाहर आना चाहता था।.....फिर आवाज को संयत करते हुए बोली,—"छः साल हो गए हैं मैडमजी, शादी को। घर नहीं गई हूँ। माँ नाराज है। दो छोटी बहनें कुँवारी बैठी हैं।

माँ को पता नहीं है कि यहाँ मेरे साथ क्या हुआ। पहले फोन पर कहती थी तू बहन नाल मुंडा ओत्थे ई क्यों नी वेख लेंदी ए। तेरा नसीब चमका, उनके भी चमक जाएँगे। एक-दूसरे के सुख-दुःख में काम आ जाना है एक-दूसरे ने। उसे तो पता नहीं कि नसीब नहीं, मैं दूसरों के टॉयलेट-बाथरूम चमका रही हूँ",—उसका स्वर कड़वा हो चुका था।

फिर अपनी भावनाओं पर काबू पाकर बोली, "पर मेरी चुप से उसे लगता है कि मैं बहनों की खुशी नहीं चाहती। अब क्या बताऊँ उसे कि दो सोने के कंगन ने तेरी बेटी की जिंदगी बरबाद कर दी"।

"....अब तो यही मेरा गाँव है। बरमिंघम, और वर्किंग वीमेंस होस्टल मेरा मायका" उसने हँसने की कोशिश की।

वर्किंग वीमेंस होस्टल....मेरे दिल की धड़कनें कुछ तेज सी हो गईं। "सुनो, तुम वर्किंग वीमेंस होस्टल में रहती हो ? क्या तुम किसी सरोज को जानती हो ? सरोज रानी !"

"मैडमजी, मैं सबको जानती हूँ। बबली, डिंपी, हैपी, शीतल, सुक्खी, जीत, बलजिंदर..... हमारे होस्टल में रहनेवाली हर लड़की की एक ही कहानी है। हमारे साथ धोखा हुआ है। हमारी जिंदगी धोबी के कुत्ते से भी बदतर है, हम कहीं के नहीं रहे।"

फिर एकाएक वह बड़े जोरों से हँसी। "सरोज रानी, हाँ मैं जानती हूँ सरोज रानी !"

हम सब सरोज रानियाँ हैं। हा ! हा ! हा ! हम सब सरोज रानियाँ हैं। हम सब सरोज रानियाँ हैं। उसकी आवाज सारे घर में गूँजने लगी। मेरी कोहनी का दर्द अचानक बहुत बढ़ गया।

❖

35, ब्रुकहाउस रोड, वॉल्सॉल
वेस्ट मिडलैंड डब्ल्यूएस5 3एई इंग्लैंड यू.के.
मोबाइल : 0044-7886777418
ई-मेल : vandanamsharma@hotmail.co.uk

..... *पृष्ठ 15 का शेष* **(ओरछा)**

सौ से भी अधिक कमरे वाले इस बहुमंजिला महल में अब पर्यटकों को मुख्य द्वार की जगह पीछे के द्वार से प्रवेश कराया जाता है। अंदर आने पर एक बड़ा अद्यता दृष्टिगोचर होता है, जिसमें पाँच तत्वों को दर्शाते पाँच कुंड बने हैं जिनमें सुगंधित जल भरा जाता था। बैठने के लिए बेंच भी बनी हुई हैं। कुछ कमरों को एक संग्रहालय का रूप दे दिया गया है, जिनमें प्रवेश करने पर सीलन और धूल की मिली-जुली धाँस का अनुभव होता है। बुंदेली वास्तु को दर्शाते कमल के फूल, मोरपंखी तथा मुगल वास्तु की प्रतीक मेहराब, छज्जा, जाली आदि देखने को मिलते हैं। छज्जों के नीचे दो पंक्तियों में स्तंभ बनाए गए हैं। पहली पंक्ति में कमल का फूल लिए हाथी तथा दूसरी में मुगल शैली में स्तंभ बने हैं। इसी प्रकार शिखर पर गुंबदनुमा एवं कलशनुमा दोनों ही आकार दिखाई देते हैं। महल में अभी भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता नीला रंग देख महल के उस समय के सौंदर्य की कल्पना की जा सकती है। प्रथम तल पर कई खुले गलियारे एवं कक्ष हैं। दीवारों पर बेल-बूटे और चित्र भी उकेरे गए हैं। दरवाजों की चौखटें पत्थर की बनी हुई हैं।

सर्वाधिक रूप से आकर्षित करता है पूर्व की ओर स्थित मुख्य प्रवेश द्वार, जिसके दोनों ओर पत्थर के दो हाथी बनाए गए हैं। प्रतीकात्मक रूप में बनाए इन हाथियों में से एक सूँड में फूल ले, मित्र का स्वागत करता है, वहीं दूसरा जंजीर पकड़ यह उद्घोषणा करता है कि मित्रता में सेंध लगाने पर जंजीरों में जकड़ दिए जाओगे। द्वार में भी हाथी तथा पंछी आदि की खूबसूरत नक्काशी देखने को मिलती है।

इस द्वार से बाहर निकलने पर ऊँटों तथा हाथी आदि के लिए बना अस्तबल दिखता है। यहाँ से बाईं ओर दिखाई देता है ओरछा की सबसे खूबसूरत प्रेम कहानी का प्रतीक-प्रवीण महल या आंनद महल!

शीश महल

जहाँगीर महल से ही लगा हुआ शीश महल राजा उद्वैत सिंह द्वारा 1763 ई. में बनवाया गया था, जो आज हेरिटेज होटल बना दिया गया है। शीश महल नाम से मेरी कल्पना काँच से निर्मित एक जगमगाते महल की थी, किंतु यहाँ संभवत: शीश का तात्पर्य पहाड़ी के शीर्ष पर स्थित होने से रहा होगा।

मुख्य द्वार से प्रवेश करने पर एक बड़ा भोजन-कक्ष है, जहाँ ओरछा से संबंधित कई रोचक और दुर्लभ पुस्तकें भी आप पढ़ सकते हैं। पुरातत्व विभाग के नियमों के कारण यहाँ अधिक बदलाव संभव न होने के कारण पर्यटकों को दिए जाने वाले कमरे आकर्षित नहीं करते, लेकिन यहाँ के महाराजा सुइट एवं महारानी सुइट में एक दिन ठहरकर आप कुछ समय के लिए शाही आनंद अवश्य उठा सकते हैं, तथापि मध्य प्रदेश टूरिज्म का ही दूसरा होटल बेतवा कॉटेज ठहरने के लिए हर किस्म से बेहतर विकल्प है। ओरछा में अन्य भी कई निजी छोटे-बड़े होटल एवं रिसोर्ट उपलब्ध हैं।

राजा महल

राजा महल का निर्माण राजा रुद्र प्रताप सिंह ने 16वीं शताब्दी में आरंभ करवाया था। यह 17वीं शताब्दी में वीरसिंह देव के काल में पूरा बनकर तैयार हुआ। राजा महल में प्रवेश करते ही अंदर एक बड़ा मंडप है, जहाँ नृत्य आदि विशेष आयोजन किए जाते थे। पुरुष बरामदों में एवं रानी तथा अन्य स्त्रियाँ प्रथम तल पर बने झरोखों और गलियारों से इन आयोजनों का आनंद लेती थीं। अनगिनत विशाल कक्ष और खुले गलियारों वाले इस महल में सभी रानियों के लिए अलग कमरे तथा झरोखे आदि बने हुए हैं। दरवाजों पर बने हुए मेहराब, हाथ जोड़े हुए नमस्कार के प्रतीक हैं और उन्हें स्वागत-द्वार कहा जाता है। यहीं पर राजा अपने मेहमानों आदि से भी मिला करते थे और बैठक में कक्ष को ठंडा रखने के लिए फव्वारों और बड़े-बड़े पर्दे टाँगने के लिए लोहे के कड़े दिखाई देते हैं। इन्हीं परदों को सुगंधित जल से भिगोकर सेवक हिलाया करते थे। नदी के किनारे स्थित होने के कारण महल में वर्षा और बाढ़ आदि के पानी को भी महल को बिना क्षति पहुँचाए निकालने का उचित प्रबंध है। स्नानघर में पानी को गर्म करने के लिए प्रयुक्त होने वाला एक बड़ा तसला अभी भी पर्यटकों के लिए रखा हुआ है। महल की छतों तथा दीवारों पर सुंदर तस्वीरें बनी हैं जिनमें रामायण और हिंदू धर्म के अन्य प्रसंगों को उकेरा गया है। यहीं इसी महल में स्थित गणेश कुँवरि के कक्ष से चतुर्भुज मंदिर का गर्भ गृह साफ दिखाई देता है ।

राय प्रवीण महल

बिनती राय प्रवीण की, सुनिए साहि सुजान।
जूठी पातर भखत हैं, वारी वायस स्वान॥

उपरोक्त दोहे ने न केवल एक प्रेयसी के मान की रक्षा की बल्कि हिंदुस्तान को भी एक बड़ी राजनैतिक उथल-पुथल से बचा लिया। कौन कहता है कि युद्ध केवल अस्त्रों से जीता जाता है। शास्त्रों से उपजा विवेक युद्ध की नियति को अधिक निर्धारित करता है।

जहाँगीर महल जहाँ दो धर्मों की मित्रता का संगम है वहीं इस से कुछ दूरी पर स्थित सन् 1618 में बना राय प्रवीण महल साक्षी है आम और खास के मध्य पनपी एक खूबसूरत प्रेम कथा का।

कहा जाता है कि मधुकर शाह के पुत्र इंद्रजीत ने एक बार अपने भ्रमण के दौरान एक कन्या को देखा। लोकनाथ शिलाकारी के आलेख के अनुसार अपने पिता के साथ वह कन्या मरसान खींच रही थी, कि सहसा राजा इंद्रजीत ने उसे मरसान खींचते हुए देख लिया। कवि हृदय राजा इंद्रजीत के मुख से यह पंक्तियाँ फूट निकलीं-

"वह हेरनि अरु वह हंसनि, वह मधुरी मुसकानि,
वह खेंचन मरसान की-हिय में खटकत आनि।"

विदित रहे कि राजा इंद्रजीत स्वयं भी 'धीरज नरेंद्र' उपनाम से कविता लिखा करते थे।

प्रथम दृष्टि में ही रूप-गुण आदि से प्रभावित हो राजा ने इस बालिका के विषय में पता करवाया। वह एक लुहार की बेटी थी। इंद्रजीत ने उसके माता-पिता से मिल पुनिया नामक इस बालिका के संरक्षण की कामना की। राजकवि केशव की कुशल निर्देशन में पुनिया को संगीत, नृत्य तथा छंद आदि का प्रशिक्षण दिया जाने लगा।

सविताजू कविता दई, जाकहँ परम प्रकास।
ताके कारज कविप्रिया, कीन्हीं केशवदास॥

अर्थात श्री सूर्य देव ने उसे कविता करने की प्रकाश-सी प्रतिभा दी है, उसी की शिक्षा के लिए केशव दास ने यह कविप्रिया बनाई है।

सभी कलाओं में पुनिया की प्रवीणता के कारण ही केशव ने उसे रायप्रवीण नाम दिया। प्रवीण के साथ ही उसके गाँव की अन्य सखियाँ भी उसका मन बहलाने तथा उच्च जीवन की कामना जैसे अनेक कारणों से साथ ही आई थीं। उन सभी के साथ ही परवीन की दीक्षा होती थी।

महाकवि के शब्दों में-

नाचती नाचती पढ़ती सब, सबै बजावती बीन
तिन में करति कविन्त एक, रायप्रवीण प्रवीण।

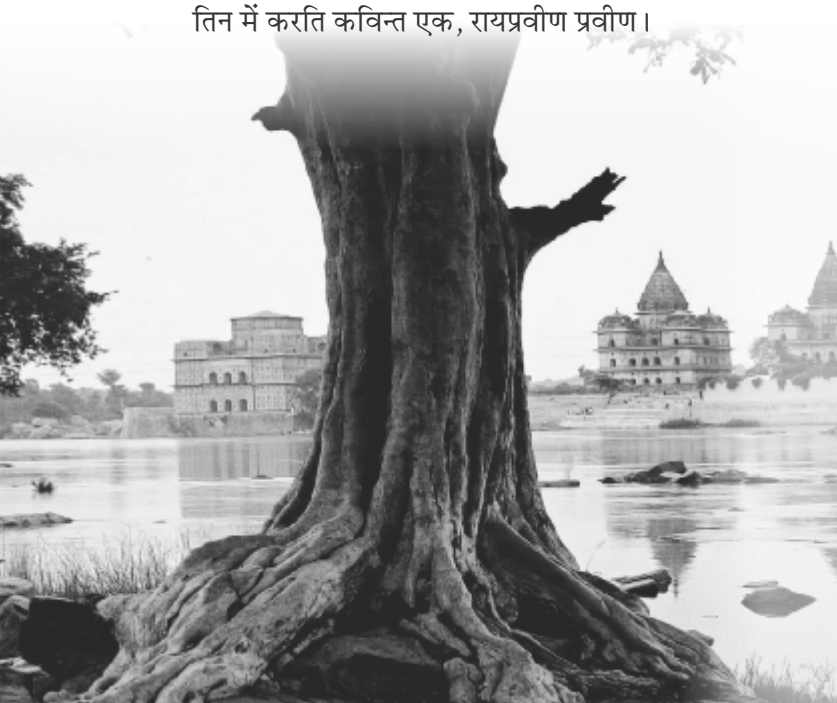

इतिहास में 'नाईटेंगल ऑफ ओरछा' के नाम से जानी जाने वाली इस मृदुकंठा शिष्या के लिए केशव लिखते हैं-

शोभा शुभ सानी परमार्थ निदानी दिहा
कलुषा कृपानि मानि सब जग जानि है
पूरब के पूरे पूण्य सुनि प्रवीण राय
तेरी वाणी मेरी रानी गंगा कैयो पानी है।

इंद्रजीत तो प्रथम दृष्टि से ही रायप्रवीण के सम्मोहन में बँधे थे और उनके अनुराग की डोर में समय के साथ रायप्रवीण भी बँधती चली गई।

तीन दासियों का महल

जहाँगीर महल से ही नदी के किनारे दिखाई देने वाला 'तीन दासियों का महल' के विषय में अधिक जानकारी तो नहीं मिलती, लेकिन संभवतः मुगलों के आक्रमण के दौरान अपने सम्मान की रक्षा में वे तीनों चिता में चलकर भस्म हो गई थीं।

सुंदर महल

सुंदर महल प्रतीक है इस बात का कि प्रेम की कोमल कोपलें महलों और किलों के कठोर प्रस्तरों में भी कैसे सुगमता से सहज ही अंकुरित हो जाती हैं। राजा जुझार सिंह के बेटे राजकुमार धुरभजन द्वारा बनवाया यह महल हिंदू और मुस्लिम धाराओं का संगम स्थल है। एक मुस्लिम कन्या से प्रेम के कारण उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उन्होंने शाही जीवन त्याग दिया था और संत-रूप में रहने लगे थे। वर्तमान में क्षतिग्रस्त होने के बावजूद मुस्लिम समुदाय के लोग इस महल में विचरण करने के लिए श्रद्धा से यहाँ आते हैं।

रामराजा ढाबा

बुंदेलखंड की मार्च की गर्मी से निजात पाने के लिए आइसक्रीम की तलाश में पूछने पर सभी द्वारा एक ही नाम बताया गया। वहाँ पहुँच इस ढाबे की संरचना में कुछ भी विशेष दृष्टिगोचर नहीं हुआ, लेकिन विदेशी सैलानियों के जमघट को देख हैरानी अवश्य हुई। अगले दिन हम भी वहाँ कुछ भोजन की लालसा लिए पहुँच गए। लंबी प्रतीक्षा के बाद मिले खाने ने पूरी तरह निराश ही किया, लेकिन इस दौरान विदेशी लड़कियों के एक समूह को ढाबे का फोटो लेते हुए और "आई लव दिस प्लेस", कहते अवश्य ही सुना।

चतुर्भुज मंदिर

चतुर्भुज मंदिर का निर्माण महाराजा मधुकरशाह ने विक्रम संवत् 1630 में करवाया था। इसी मंदिर के ऊपर सवा मन सोने

का कलश बुंदेला नरेश अमरेश ने लगवाया था। रामलला के लिए बनाया गया भव्य बहुमंजिला महल मंदिर, दुर्ग एवं राजमहल की वास्तुगत विशेषताओं से युक्त है। रामलला के रानी की रसोई में ही स्थापित हो जाने के कारण इस मंदिर में विष्णु जी की प्रतिमा स्थापित की गई थी, जो कालांतर में चोरी चली गई। मंदिर के शीर्ष पर स्थापित सोने का कलश एवं जलेबी का भी विगत कुछ वर्षों में चोरी चले जाना, सुरक्षा एवं संरक्षण के प्रति हमारी उदासीनता जताता है।

कंचना घाट

बेतवा नदी के कंचन घाट पर स्थित, 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में निर्मित ओरछा नरेशों की शाही समाधियों की बेतवा के जल में पड़ती छाया को सूर्यास्त के समय देख जीवन की क्षणभंगुरता का नैराश्य मन में यों ही घुलता गया जैसे अरुण रश्मियाँ बेतवा के जल में घुल रही थीं। कंचना घाट पर नौकायन कर, छतरियों की ओर बढ़ने से पहले कंचना घाट के नामकरण की कहानी भी सुन ली जाए। कहा जाता है कि इस घाट पर शाही स्त्रियों के स्नान के दौरान करीब सवा मन सोना प्रतिदिन बह जाता था। इसी कारण इसका नाम कंचना घाट पड़ा। कुछ विद्वान इस घाट को सन् 1721 में रानी कंचन कुँवर द्वारा अपने नाम से बनवाया गया भी मानते हैं।

कंचना घाट पर ही जुझार सिंह की रानी चंपावती की मडिया भी है। हरदौल द्वारा भाभी का संबोधन प्रयुक्त करने के कारण इसे 'भाभी की मडिया' भी कहा जाता है। इस कथा का उल्लेख आगे किया गया है।

जैसा कि सर्वविदित है कि महात्मा गाँधी के निधन के बाद उनकी अस्थियों का विसर्जन देश की प्रमुख पवित्र नदियों में करने का निर्णय लिया गया था, उसी क्रम में कंचना घाट के समीप भी अस्थि-विसर्जन किया गया था, जहाँ हर वर्ष सर्वोदय मेले का आयोजन किया जाता है।

छतरियाँ

वीर सिंह देव, भारती चंद, मधुकर शाह, पहाड़ सिंह, सावंत सिंह तथा अन्य शासकों की समाधियाँ नदी के किनारे स्थित हैं। कंचन घाट के सबसे करीब स्थित है राजा वीर सिंह बुंदेला की छतरी। वीरसिंह का शासन काल ओरछा का स्वर्ण काल भी रहा। ओरछा में इतने अधिक राजप्रासादों और मंदिर आदि का निर्माण भी वीर सिंह ने ही कराया था।

कहा जाता है कि अकाल पड़ने पर एक संत की सलाह पर राजा वीर सिंह ने 52 इमारतों का शिलान्यास किया था। एक विद्वद्जन के लेख के अनुसार इनमें झाँसी, दिनारा, धामौनी, करैदा, कुड़रा, गढ़मऊ और दतिया के सात किले थे। पंद्रह महल और हवेलियों में दतिया का नरसिंह महल, कुड़ार महल, काशी हवेली, शिवराजपुर की हवेली, जहाँगीर महल, ओरछा नौबतखाना, ओरछा, मथुरा और गया में धर्मशालाएँ, वीर सागर, कुदार का सिंह सागर, देव सागर दिनेश में तथा समुद्र सागर, नजर नवारा में चार तालाबों का निर्माण कराया। यात्रियों के लिए सात बावरियों तथा मथुरा में तीन घाटों का भी निर्माण कराया, फूल बाग ओरछा में और तीन बगीचे वृंदावन में भी बनवाए। वीर सिंह देव के बनवाए बारह मंदिर और देवालय तत्कालीन स्थापत्य के बेजोड़ नमूने हैं। इसी कारण उन्हें बुंदेला स्थापत्य शैली का जनक भी कहा जाता है। ओरछा के चतुर्भुज मंदिर, लक्ष्मी नारायण मंदिर और धूम शिवाले के साथ देवी मंदिर, भांडेर विश्वेश्वर मंदिर, काशी के शिव मंदिर, मथुरा गणेश मंदिर, बरसाना का वैद्यनाथ लाडली जी मंदिर आदि प्रमुख हैं। सन् 1669 में औरंगजेब द्वारा तुड़वा दिया गया, केशवदास मंदिर भी इनमें शामिल हैं।

लक्ष्मीनारायण मंदिर

यह मंदिर सन् 1622 ई. में वीर सिंह देव द्वारा बनवाया गया था। मंदिर ओरछा गाँव के पश्चिम में एक पहाड़ी पर बना है। यहाँ सत्रहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के चित्र बने हुए हैं। मंदिर में झाँसी की लड़ाई के दृश्य और भगवान कृष्ण की आकृतियां बनी हुई हैं। मंदिर में हरसिद्ध देवी की नीलम की मूर्ति थी जो मराठे उज्जैन ले गए थे। ओरछा के अधिकृत इतिहास में लिखा है कि—

"यशवंतराव होलकर ने 17वीं शताब्दी में ओरछा राज्य पर हमला किया। वहाँ के लोग जुझौतिये ब्राह्मणों की देवी हरसिद्धि के मंदिर में अरिष्ट निवारणार्थ प्रार्थना कर रहे थे। औचित्य वीर सिंह और उसका लड़का 'हरदौल', सवारों की एक टुकड़ी लेकर वहाँ पहुँचा, मराठों की सेना पर चढ़ाई कर दी, मराठे वहाँ से भागे, उन्होंने यह समझा कि इनकी विजय का कारण यह देवी हैं तो फिर वापस लौटकर वहाँ से वे उस मूर्ति को उठा लाए।"

वही मूर्ति उज्जैन के शिप्रा-तट पर हरसिद्धिजी हैं, हालाँकि उज्जैन में इसी मूर्ति की महत्ता में एक अन्य कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि राजा विक्रमादित्य ने देवी के समक्ष विभिन्न अवसरों पर ग्यारह बार अपना सिर काट कर चढ़ाया था तथा बाहरवीं बार नया सिर न आने पर उनका शासन समाप्त हुआ।

फूलबाग पालकी महल तथा सावन-भादो

पालकी महल नाम पालकी के आकार के कारण पड़ा। पालकी महल के समीप स्थित फूलबाग में एक भूमिगत महल और

आठ स्तंभों वाला मंडप है। यहाँ के चंदन कटोर से गिरता पानी झरने के समान प्रतीत होता है। युद्ध होने पर इसी कटोरे में चंदन भरा जाता था, जिससे तिलक कर वीर युद्ध पर जाया करते थे।

पालकी महल के ही समीप गर्व से मस्तक ऊँचा कर खड़े हैं दो स्तंभ, जिन्हें सावन-भादो के नाम से जाना जाता है। कुछ लोगों के अनुसार सावन एवं भादो नामक दो प्रेमी थे, जिन्हें समाज ने मिलने नहीं दिया और उन्होंने प्राण त्याग दिए। प्रचलित किंवदंती के अनुसार सावन खत्म होने तथा भादो की शुरुआत में यह आपस में मिल जाते हैं। कुछ लोगों द्वारा वैज्ञानिक पहलू वायु यंत्र के रूप में दिया जाता है और माना जाता है कि संभवत: इनका निर्माण तलघर में बने गुप्त रास्ते तक हवा पहुंचाने के लिए किया गया होगा, किंतु सावन-भादो के आलिंगन की मनोहारी कल्पना के समक्ष यह तथ्यपूर्ण मत नीरस जान पड़ता है। वायु यंत्रों के रूप में निर्मित होने पर भी शायद उस काल मे सावन के अंत में धूप-छाँव का कुछ ऐसा योग बनता होगा कि दोनों मीनारों की धरती पर छाया मिलती हुई प्रतीत होती होगी। इन रहस्यमयी स्तंभों का निर्माण काल वीरसिंह के शासनकाल में माना जाता है।

हरदौल की बैठक एवं समाधि

सन 1628 में जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात ओरछा को पुन: मुगलों के वैमनस्य का भाजन बनना पड़ा और राज्य बचाने के लिए उनसे संधियाँ करनी पड़ी। इसी दौरान मुगल सेना के साथ दक्षिण जाने पर जुझार सिंह के भाई हरदौल ने कार्यभार सँभाला। वापसी पर महावत खान के भड़काने पर जुझार सिंह को अपनी पत्नी चंपा देवी और हरदौल के संबंधों पर संदेह हुआ और उन्होंने रानी से हरदौल को विषाक्त भोजन देने के लिए बाध्य किया। विष की जानकारी होने पर भी भाभी और भाई का मान रखते हुए हरदौल ने वह विष पी लिया और चौबीस साल की अल्पायु में प्राण त्याग दिए। हरदौल की माता गुमान कुँवर उनके जन्म के पश्चात ही स्वर्ग सिधार गई थी। वह अपना नवजात शिशु बहू चंपावती को सौंप गई थी। चंपावती अपने इस देवर से अपने पुत्र जैसा ही स्नेह रखती थी और वह भी उन्हें अपनी माँ तुल्य ही आदर तथा स्नेह देते थे।

मृत्यु के उपरांत भी हरदौल ने अपनी बहन कुंजाबाई की पुत्री के विवाह में पहुँचने का अपना वादा निभाया। कहा जाता है कि वह अपनी भतीजी के भात में पहुँचे और विवाह के कार्यों में सहयोग किया। तभी से बुंदेलखंड में आज भी होने वाली हर शादी का पहला निमंत्रण राजा हरदौल को दिया जाता है। माना जाता है कि लाला हरदौल विवाह-कार्य निर्विघ्न संपन्न करवा देंगे।

मोर भूल चूक पाँव रे तरे दाब लइयो हो,
लाला हरदौल बिनती गान जइयो हो।
माथे को सिहरों हरदौल जू खों सोहे
कलियों की लटक समार लइयो हो।

जुझार सिंह को भी बाद में अपनी गलती का एहसास हुआ और उन्होंने प्रायश्चित स्वरूप सन 1668 में फूल बाग में हरदौल की समाधि बनवाई। यहीं पर हरदौल की प्रतिमा भी स्थापित है। बुंदेलखंड में हरदौल को देवता के रूप में पूजा जाता है। लाला हरदौल के हजारी हरदौल, महाराज कुँवर बाबा, राजन बाबा आदि अन्य नाम भी प्रचलन में सुनाई पड़ते हैं। लाला का संबोधन चंपादेवी का दिया हुआ था, जो उन्हें पुत्रवत मान लाला कहा करती थी।

भाभी और देवर की हवेली बारेलाल

जहाँ भगवान (राम) को राजा और राजा (हरदौल) को देवता बनाने के दोनों ही उदाहरण ओरछा की पावन भूमि में उपस्थित हैं, वहीं अमर प्रेम कथा और दोस्ती की मिसालें भी। कहानी का कोई भी संकलन भूत की कहानी के बिना अधूरा है। ओरछा में आपको हर रस की कहानी मिलेगी। कहा जाता है कि बारे लाल और उसकी भाभी भूत बन गए थे। भाभी राहगीरों को लुभाकर हवेली पर ले आती थी, जहाँ बारेलाल अपना विकराल रूप दिखा उनके प्राण हर लेता था और माल लूट लेता था। एक

बार एक ब्राह्मण उधर से गुजरा जो स्वयं तंत्र विद्या में माहिर था। ब्राह्मण ने उसे चेताया तथा भगवद् कथा सुना उन्हें मोक्ष दिलाया।

केशवदास का मोक्ष

कहा जाता है कि 'कठिन काव्य के प्रेत' कहलाने वाले महाकवि केशव सच ही प्रेत बन गए थे और बेतवा के तट पर वास करते थे। नदी पर जाने वाले प्राय: उन्हें देख भयभीत हो जाया करते थे। उसी समय तुलसीदास उनसे मिलने ओरछा आए क्योंकि जब केशव तुलसीदास से मिलने गए थे, तब कुछ व्यस्तताओं के कारण तुलसी बाबा उनसे मिल नहीं पाए थे तथा अपने सहज व्यवहार के कारण कह बैठे थे कि अगर जल्दी हो तो केशव लौट जाएँ, फिर कभी मुलाकात हो जाएगी। इसे अपना अपमान समझ केशव वापस चले आए थे। तुलसीदास को नीचा दिखाने के लिए ही रामचंद्रिका लिखी गई थी। महाकवि का यह रूप देख तुलसीदास अत्यंत व्यथित हुए तथा उन्हें भगवद् कथा सुना उन्हें मुक्ति दिलाई।

नकटा मोर कटु की टौरिया और श्याम दौआ की कोठी

ऐसा कहा जाता है कि एक बार मुगल सम्राट औरंगजेब की सेना ने ओरछा पर आक्रमण किया। तब ओरछा की रक्षा हेतु हरदौल सहित कई भूत प्रकट हो गए और औरंगजेब के सैनिकों के नाक-कान काट, लक्ष्मी मंदिर के ऊपर स्थित इस पहाड़ी में गाड़ दिए।

रायमन दौआ के पौत्र उदयभान के साथ मुगलों के बंदी भी बनाए गए थे। दोनों का ही शाहजहाँ ने वध करा दिया था।

ओरछा की पिसनारी

सन् 1783 में विक्रमजीत सिंह ने सुरक्षा कारणों के चलते अपनी राजधानी टीकमगढ़ स्थानान्तरित कर दी थी। ओरछा में जन-जीवन अस्त-व्यस्त होने लगा। डॉ. रामनारायण शर्मा के पिसनारियों पर लिखे आलेख के अनुसार ऐसे समय में सौंर गाँव के लोगों को सौंर नाला पार कर आजीविका के लिए आना-जाना पड़ता था। बारिश के समय में नाला उफनने लगता और मार्ग अवरुद्ध हो जाने से संकट उत्पन्न हो जाता। तब गाँव की एक पिसनारी ने अपने बचाए धन तथा गाँव वालों के सहयोग से घुरारी नाले के ऊपर बाँध का निर्माण कराया जो आज भी पिसनारी के पुल के नाम से जाना जाता है।

चंपराय एवं सारंधा के पराक्रमी पुत्र छत्रसाल

जुझार सिंह की मृत्यु के पश्चात् ओरछा में अनिश्चितता हावी हो गई थी। अनेक जागीरदार सिर उठाने लगे थे। इसी समय शाहजहाँ द्वारा देवीसिंह को ओरछा का प्रबंधक बनाया गया था। महेवा के जागीरदार चंपतराय ने विद्रोह कर देवीसिंह को ओरछा छोड़ने पर विवश कर दिया, लेकिन ओरछा की गद्दी कंटकों से भरी थी। चंपतराय को भी मुगलों से निरंतर युद्ध करना पड़ा। जब सन 1662 में सिहोरा के मार्ग में मुगल सेना ने चंपक राय और उनकी महारानी लाल कुँवर सारंधा को घेर लिया, तब इनके अनुरोध पर सारंधा ने पति के सीने में तलवार घोंप तत्पश्चात उसी तलवार से अपने प्राण भी हर लिए। ऐसे ही साहसी दंपति के पुत्र छत्रसाल हुए, जिनके नाम पर छतरपुर जिले का नामकरण हुआ है।

छत्रसाल की माता सारंधा भी अत्यंत साहसी थी। एक बार बालक छत्रसाल का घोड़ा अली बहादुर के सिपाहियों के द्वारा छीन लिए जाने पर वह अपने कुछ सैनिकों के साथ औरंगजेब के दरबार जा पहुँची थी। ऐसी ही स्वाभिमानी माता के आशीर्वाद से छत्रसाल पराक्रमी बने।

इत यमुना उत नर्मदा इत चम्बल उत टौस,
छत्रसाल सौं लरन की रही ना काहू हौंस।

बुंदेली माटी के इस सपूत को भी खूब संघर्ष करना पड़ा, लेकिन अपने अदम्य शौर्य से उन्होंने बुंदेलखंड का अकल्पनीय विस्तार किया। अनेक युद्ध में उनके प्राणों की रक्षा करने के कारण उनके घोड़े को भी 'भलेभाई' के नाम से संबोधित किया जाता है। छत्रसाल ने अपने 82 वर्ष के जीवन और 44 वर्ष के राज्यकाल में 52 युद्ध लड़े।

छत्ता तोरे राज में धक धक धरती होये,
जित जित घोड़ा मुख करे तित तित फत्ते होये।

शिवाजी ने उन्हें स्वराज का मंत्र दिया, किन्तु स्थानीय राजाओं की उपेक्षा के कारण उन्होंने जनता के सहयोग से अपनी एक छोटी-सी सेना निर्मित की और छापामार पद्धति से औरंगजेब से युद्ध किया।

छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ के उपदेश 'कुलजम स्वरूप' में संग्रहित हैं। पन्ना में प्राणनाथ का समाधि स्थल है। कहा जाता है कि प्राणनाथ ने ही पन्ना को रत्नगर्भा होने का वरदान दिया था। एक अन्य किंवदंती के अनुसार जहाँ तक छत्रसाल के घोड़े की टापों की पदचाप बनी, वहाँ ही धरा ने रत्न धारण कर लिए।

राज्य संचालन के बारे में उनका सूत्र उनके ही शब्दों में:

राजी सब रैयत रहे, ताजी रहे सिपाहि
छत्रसाल ता राज को, बार न बांको जाहि।

पद्म श्री कवि कैलाश मड़बैया अपने आलेख में लिखते हैं कि छत्रसाल की तलवार जितनी धारदार थी, कलम भी उतनी ही तीक्ष्ण थी। वे स्वयं कवि तो थे ही कवियों का श्रेष्ठतम सम्मान भी करते थे। अद्वितीय उदाहरण है कि छत्रसाल दशक के

रचयिता कवि भूषण के बुंदेलखंड में आने पर आगवानी में जब छत्रसाल ने उनकी पालकी में अपना कंधा लगा दिया तो भूषण कह उठे:

और राव राजा एक चित्र में न ल्याऊं-
अब, साटू कौं सराहौं, के सराहौं छत्रसाल को।।

हरिराम व्यास

हरिराम व्यास जी का जन्म संवत 1567 की कृष्ण पंचमी को ब्राह्मण परिवार में हुआ था। राज्य गुरु होने के कारण ओरछा नरेश महाराजा मधुकरशाह ने इन्हें गोस्वामी की उपाधि दी थी। हरिराम व्यास कृष्ण के अनन्य भक्त थे, लेकिन वह जाति को नहीं मानते थे। इनके विषय में प्रचलित है कि एक बार वृंदावन में मंदिर के बाहर इन्होंने एक निम्न जाति की स्त्री से खाना लेकर खा लिया था।

राधावल्लभ कारणें सहो जात उपहास
वृंदावन के स्वपंच की जूठन खाई व्यास

चंद्रशेखर आजाद स्मारक

आज हम जिस स्वतंत्र देश में रह रहे हैं, उस स्थिति को हासिल करने में एक बड़ा योगदान अपने समय के महान क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद जी का भी रहा है। दरअसल, आजाद ने काफी समय तक झाँसी को ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध गुपचुप तरीके से क्रांतिकारी गतिविधियों का केंद्र बनाया था। इसके लिए उन्होंने झाँसी से 15 किलोमीटर दूर, ओरछा के जंगलों का चुनाव किया। इस स्थान पर उन्होंने अपने रुकने के लिए एक कुटिया का निर्माण कराया, एक कुएँ की व्यवस्था की तथा भोजन के लिए एक रसोईघर बनवाया। यह जगह सातार नदी के तट पर हनुमान मंदिर के निकट थी।

चंद्रशेखर आजाद ने वहाँ समर्पित कार्यकर्ताओं को गुप्त रूप से निशानेबाजी में प्रशिक्षित किया। वह वहाँ लंबे समय तक पंडित हरिशंकर ब्रह्मचारी के छद्म नाम से रहते थे। उन्होंने निकटवर्ती ग्राम धिमारपुरा, जो अब आजाद्पुरा के नाम से जाना जाता है, के लोगों से मेलजोल बढ़ाया और वहाँ के निर्धन बच्चों को निशुल्क शिक्षा देने का बीड़ा उठाया, जिससे वहाँ के लोग उनके प्रति श्रद्धा रखने लगे थे।

झाँसी से ओरछा जाते समय तक भी इस स्थल या इसकी महत्ता की कोई जानकारी मिलना जरूरी नहीं है पर मध्य प्रदेश सरकार ने वास्तविक स्थल के निकट ही एक भव्य स्मारक का निर्माण कराया है। वहाँ एक स्वाध्याय केंद्र बनाया गया है। बाहर ही आजाद जी की आदमकद मूर्ति स्थापित है। अंदर एक संग्रहालय में आजाद द्वारा प्रयुक्त पिस्तौल और कलश पात्र को शीशे के बॉक्स में सुरक्षित रूप से रख कर प्रदर्शित किया गया है। भवन में कार्यक्रमों के आयोजन के लिए ऑडिटोरियम भी बनाया गया है।

चंद्रशेखर आजाद जी द्वारा बिताए गए बहुमूल्य समय की यादों के रूप में उनकी तंग कुटिया, जिसकी छत खपरैल की है, अपने जर्जर दरवाजे के साथ अंतिम दिन गिन रही है।

कहते हैं कि राजा वीर सिंह जूदेव ने एक बार अंग्रेजी लॉर्ड के ओरछा आने की सूचना पाने पर आजाद को दो दिन के लिए पृथ्वीपुर भेज दिया था। ओरछा अज्ञातवास की अवधि में चंद्रशेखर ग्रामवासियों को रामायण भी सुनाया करते थे तथा गुप्त रूप से क्रांतिकारी दल का पुनर्गठन किया करते थे।

रवींद्रनाथ के शब्दों में काल के गाल पर आँसू समान ताजमहल जहाँ विश्व के सात आश्चर्यों में शामिल हो अपना अस्तित्व बचाए है, वहीं राजा राम, केशव और हरदौल की कहानी सुनाते यह सभी स्मारक खंडहर में तब्दील होते जा रहे हैं। इतिहास का संरक्षण करते यह दस्तावेज अपनी सजल आँखों से कहते हैं कि हमारी दीवारों पर अपना नाम लिख देने से इतिहास के पन्नों पर नाम नहीं लिख जाता, उसके लिए रानी कुँवर गणेश जैसा विश्वास, केशव सी कविताई, हरदौल सा चरित्र, राय प्रवीण-सी कुशलता और वीर सिंह-सा पराक्रम चाहिए। इसी दुर्दशा से व्यथित हो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा होगा-

कहाँ आज यह अतुल ओरछा, हाय! धूलि में धाम मिले।
चुने-चुनाये चिन्ह मिले कुछ, सुने-सुनाये नाम मिले।
फिर भी आना व्यर्थ हुआ क्या तुंगारण्य? यहाँ तुझमें?
नेत्रंजनी वेत्रवती पर हमें हमारे राम मिले

जानकारी के अनुसार ओरछा स्थित इन प्राचीन और ऐतिहासिक धरोहरों को ऐतिहासिक तथ्यों के विवरण के साथ एएसआई ने यूनेस्को को 15 अप्रैल 2019 को प्रस्ताव भेजा था। उसी प्रक्रिया के फलस्वरूप 'ओरछा की ऐतिहासिक धरोहरों' को संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन यूनेस्को की धरोहरों की अस्थायी सूची में शामिल किया जाना यह आस जगाता है कि संभवत: ओरछा के स्मारक अपनी खोई हुई गरिमा को पुन: प्राप्त कर युगों-युगों तक आन-बान और शान के साथ अपनी कहानियाँ सुनाते रहेंगे।

❖

लेखिका चिकित्सक के रूप में झाँसी (उ.प्र.) में कार्यरत
अग्रवाल क्लीनिक, कारगुवा रोड
झाँसी (उ.प्र.) मोबाइल : 6386202712
ई-मेल : nidhiagarwal510@gmail.com

मॉरीशस के राष्ट्रकवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की काव्य यात्रा

— डॉ. कमल किशोर गोयनका

मॉरीशस के हिंदी कवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की यह काव्य-साधना एवं उनकी कवि-दृष्टि उन्हें अपने देश का राष्ट्रकवि बनाती है जैसे भारत में मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि थे। 'मधुकर' जी लगभग सात दशकों तक निरंतर काव्य-रचना करके इतिहास-पुरुष बन गए हैं और छोटी-छोटी कविताओं को रचकर भी महाकवि की उदात्तता, सांस्कृतिक प्रतिबद्धता और मानवीय उच्च मूल्यों से संपन्न हैं। उनका अस्तित्व एवं स्वतंत्रता-बोध, भाषा-संस्कृति-मूल्यों की रक्षा का संकल्प एवं हिंदू-हिंदी-हिंदुस्तान की संशिष्ट चेतना और देश की सर्वत्र दिशाओं में जागरण का शंखनाद उन्हें अपने देश का महाकवि बनाता है।

मॉरीशस से मेरा संबंध लगभग चार दशकों पुराना है। मॉरीशस की 'हिंदी प्रचारिणी सभा' ने प्रेमचंद जन्म-शताब्दी वर्ष (1980) में प्रेमचंद पर एक बड़ा कार्यक्रम किया और भारत सरकार ने मुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा और प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर रामगुलाम ने मेरी 'प्रेमचंद प्रदर्शनी' का उद्घाटन किया। इस अवसर पर मेरी भेंट मॉरीशस के अनेक प्रतिष्ठित लेखकों से हुई और इनमें ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर', अभिमन्यु अनत, प्रह्लाद रामशरण, जयनारायण राय, सोमदत्त बखोरी, चिंतामणि आदि कई लोग शामिल थे। मॉरीशस से लौटते समय मैंने वहाँ के हिंदी साहित्य पर कुछ विशेष करने का निर्णय लिया और इसके लिए प्रमुखत: अभिमन्यु अनत और ब्रजेंद्र कुमार भगत का चयन हुआ। अभिमन्यु अनत पर मेरी पुस्तकें आती गईं और 'मधुकर' जी की काव्य-रचनावली की योजना पीछे छूटती चली गई, लेकिन मैं जब जून, 2002 में मॉरीशस की अपनी पाँचवीं यात्रा में गया तो 'मधुकर' जी ने मुझे अपने घर बुलाया और काव्य-रचनावली को अंतिम रूप दिया गया। 'मधुकर' जी ने उस समय कहा था कि मेरे जीवित रहते हुए यदि यह योजना पूर्ण हो जाए तो मुझे आत्मिक प्रसन्नता होगी। मैंने उन्हें आश्वस्त किया कि मैं यथाशक्ति इसका संपादन करूँगा और इसका लोकार्पण आपके ही हाथों से होगा, परंतु इसके लिए आपको अपना संपूर्ण साहित्य, पत्र-व्यवहार, फोटोग्राफ आदि सभी दस्तावेज़ उपलब्ध कराने होंगे। 'मधुकर' जी ने अपना वायदा निभाया और अब मुझे अपने संकल्प को पूरा करना था। मॉरीशस में 'मधुकर' जी से इस भेंट से पहले वहाँ की 'हिंदी प्रचारिणी सभा' की हस्तलिखित पत्रिका 'दुर्गा' की दिल्ली में उपलब्धि तथा उसे मेरे प्रयास से मॉरीशस लौटाने की घटना हो चुकी थी। 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका 'हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान' के अस्मिता-बोध के साथ देश, समाज, संस्कृति, धर्म, शिक्षा, अर्थ आदि के समग्र जागरण का उद्घोष करने वाली पत्रिका थी। यह राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण मूलत: विदेशी दासता के विरुद्ध आहत स्वाभिमान, अधिकार, अस्तित्व एवं संस्कृति के उद्वेलन से उत्पन्न हुआ था और हिंदी भाषा के द्वारा शुरू हुआ था।

ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' देश और साहित्य-संस्कृति की इन्हीं परिस्थितियों में उनके कवि का जन्म

हुआ। उनका परिवार-दादा, पिता, चाचा आदि सभी हिंदी प्रेमी थे और उनके दादा-रामदास रामलखन (गिरधारी भगत) ने 'हिंदी प्रचारिणी सभा' के लिए भूमि-दान किया था। मॉरीशस में 'भगत परिवार' इसी हिंदी-प्रेम के लिए जाना जाता है। 'मधुकर' जी को अपने बाल्यकाल से ही हिंदी एवं सांस्कृतिक परिवेश मिला और कविता लिखने का संस्कार पैदा हुआ। शुरू में 'हरिऔध' की नकल पर कुछ पंक्तियाँ लिखीं और 'पगला दूकान' से एक दूकान पर मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध आदि की कविताएँ सुनाने की प्रतियोगिता में भाग लेते। उसी समय पं. रामनारायण ने 'शराबबंदी आंदोलन' शुरू किया तो उनके भाषण के बाद 'मधुकर' जी सस्वर अपनी कविताओं का पाठ करते और लोग उनकी कवि के रूप में श्रद्धा करने लगे। मॉरीशस में इस काल-खंड में अनेक हिंदी प्रेमी, हिंदी पत्रिकाएँ, मणिलाल डॉक्टर का जागरण परिवेश, 'दुर्गा' आदि पत्रिकाओं ने साहित्य-रचना का एक प्रेरक वातावरण निर्मित कर दिया था।

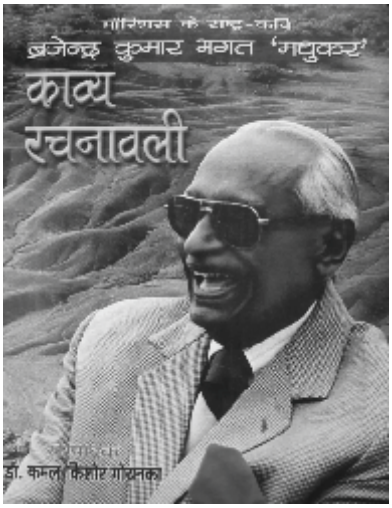

मॉरीशस में 'मधुकर' जी के काव्य-रचना के क्षेत्र में आने से पहले हिंदी में कविताएँ लिखी जाने लगी थीं, लेकिन वह कोई सशक्त परंपरा नहीं बन पाई थी। 'दुर्गा' में उनकी हस्तलिपि में चार कहानियाँ तो मिलती हैं, परंतु कोई कविता नहीं मिलती। इस दृष्टि से प्रह्लाद रामशरण के दो संकलन महत्वपूर्ण हैं जो 'मॉरीशस का आदि काव्य-कानन' (1913 से 1930 तक की हिंदी कविताएँ) तथा 'मॉरीशस के मध्यकालीन काव्य-प्रसून' (1931 से 1960 तक की कविताएँ) नाम से प्रकाशित हुए और हिंदी काव्य की एक परंपरा को स्थापित कर सके। मॉरीशस के काव्य-इतिहास में ऐसी उपलब्धि पहली बार हुई थी। इस प्रकार हिंदी की लगभग 300 अज्ञात कविताओं के प्रकाशन ने हिंदी काव्य-परंपरा का स्वरूप निर्मित कर दिया। इसी के समान मॉरीशस के हिंदी काव्य के इतिहास में 'मधुकर' जी का कवि-रूप में आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है, जिसकी तुलना भारत के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के आविर्भाव से की जा सकती है। 'मधुकर' जी ने मॉरीशस जैसे द्वीप में छः दशकों तक हिंदी काव्य रचना करके जो कीर्तिमान स्थापित किया है, वह उन्हें इतिहास में स्वर्णाक्षरों से स्थापित करेगा और वे मॉरीशस के मैथिलीशरण गुप्त कहलाने के उचित अधिकारी होंगे। ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' के सन् 1948 से 2002 तक कुल 49 कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं जो निम्नलिखित हैं—

मधुपर्क (1948), रागिनी (1949), वीर-गाथा (1949), हमारा देश (1963), रसरंग (1963), घुरहू मौसा क सनेस (1963), अमर संदेश (1963), गुंजन (1963), रणभेरी (1967), वंदेमातरम् (1967), एक कहानी कुली की (1968), स्वराज्य गीतांजलि (1968), मधुकलश (1969), रसवंती (1970), सर शिवसागर रामगुलाम (1970), मधुबन (1970), हिंदी गौरव गान (1970), मधुमास (1971), स्वागत-गान (1971), गोस्वामी तुलसीदास (1973), मधुचक्र (1973), विजय-गान (1975), जय हिंदी (1976), मधुदीप (1984), अमर कुली गाथा (1984), मधु-बहार (1985), मधुश्री (1985), मधुबाण (1986), मधु-मंजरी (1988), मधु-व्यंजना (1988), मधु-गुंजार (1989), माधुरी (1989), मधुलिका (1991), मातृभूमि जल रही है (1992), ललकार (1993), जाग रे हिंदू (1994), हिंदी-वंदना (1995), मधु-घोष (2000), मधु-वाणी (2000), मधु-हाला (2000), चुनावी चटनियाँ (2000), मधु-संदेश (2000), मधु-मंत्रणा (2000), युग-पुरुष रामगुलाम की अमर कहानी (2001), मेरी भौजी (2001), मिलेनियम पुरुष महात्मा गाँधी का पैगाम (2001), मधु-मालती (2001) तथा मधु-प्रयाण (2002)। 'मधुकर' जी के दो नाटक भी प्रकाशित हुए—आदर्श बेटी (1951) तथा स्वतंत्रता का सुप्रभात (1953) तथा मधु-स्मरण (1989) नाम से उन पर लिखे संस्मरणों का प्रकाशन हुआ।

ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की काव्य-चेतना पर सन् 1913 से 1960 तक की युगीन साहित्यिक चेतना एवं चित्ति

का गहरा प्रभाव है। इस काल-खंड में मॉरीशस में अनेक हिंदी पत्रिकाएँ निकलती थीं, जिनमें 'मॉरीशस मित्र', 'आर्यवीर', 'मॉरीशस आर्य पत्रिका', 'सनातन धर्मार्क', 'मॉरीशस इंडियन टाइम्स', 'हिंदुस्तानी' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें प्रकाशित कविताओं की विषयवस्तु भारत, भारतमाता, हिंदी संस्कृति, धर्म एवं हिंदी भाषा के साथ देश की दुर्दशा तथा स्वाधीनता की कामना पर केंद्रित है। इस काल-खंड की कुछ प्रमुख विशेषताएँ है—भारत एवं भारत माता का स्मरण, धार्मिक चेतना एवं धर्म की स्थापना, हिंदू देवी-देवताओं की स्तुति, हिंदू त्योहारों का स्मरण, भारतीय जीवन-मूल्यों की स्थापना, हिंदू, हिंदी, हिंदुस्तानी का संकल्प, हिंदू जाति का जागरण, आत्म-विस्मृति को त्यागने तथा अस्तित्व-रक्षा की व्याकुलता का आह्वान, स्वाधीनता का लक्ष्य, मातृभूमि एवं राष्ट्रप्रेम, सांप्रदायिक एकता, शिक्षा का महत्त्व एवं उसका प्रचार-प्रसार, स्वभाषा का आग्रह, अंग्रेजी सभ्यता की कटु-आलोचना, पीड़ित एवं निर्धन की हित-कामना, अंग्रेजी राज-भक्ति के साथ प्रजा-भक्ति, धर्मांतरण का विरोध, कृषक-कल्याण की भावना आदि देखने को मिलती है और जो उस युग के भारतीय मानस का, उसके वर्तमान और भविष्य का, उसके सांस्कृतिक चिंतन और जागरण का, हिंदू एवं हिंदुस्तानीपन के साथ स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वराज्य का यथार्थ चित्रण करती हैं और इनका समवेत स्वर भारत के हिंदू प्रवासियों के नवो-मेष, नवोत्थान और नव-जागरण का शंखनाद करती हैं। 'मधुकर' जी की काव्य-चेतना तथा काव्य-सृष्टि इसी सर्जनात्मक भूमि पर टिकी है, जिसमें फिल्मी गीतों की गीतात्मकता और संगीत है और मंचों पर सुधारवादी गीतों का व्यापक संसार है।

'मधुकर' जी का पहला कविता-संग्रह 'मधुपर्क' (1948) है। इसमें 52 कविताएँ हैं और इनके राष्ट्र, हिंदू, भारत, हिंदी, मानवता, स्वाधीनता, गिरमिटिया तथा प्रकृति-प्रेम प्रमुख हैं। कवि इसमें अपनी तथा अपने समाज की खोज करता है। 'रागिनी' (1949) में 24 कविताएँ है। इसमें मुख्यत: भक्ति, करुणा, शृंगार, वीर-रस आदि की कविताएँ हैं। 'वीर-गाथा' (1949) एक आठ पृष्ठ की काव्य-पुस्तिका है।, लेकिन अब अनुपलब्ध है। 'मधुकरी' (1953) में 51 कविताएँ है। इनके विषय हैं—धर्म, राष्ट्र, हिंदी, प्रेम और राजनीति आदि। 'हमारा देश' (1963) में 37 पदों की एक लंबी कविता है। इसमें मॉरीशस का प्राकृतिक सौंदर्य, इतिहास, देश-निर्माण, भाषा-साहित्य- संस्कृति-धर्म, भारतीयता आदि का महिमामय चित्रण है। 'रसरंग' (1963) में 48 कविताएँ हैं, जिसमें 35 हिंदी की तथा 13 भोजपुरी की हैं। इसमें 'मधुकर रामायण' भी संकलित है। 'अमर-संदेश' (1963) में 38 कविताएँ हैं। इनके प्रमुख विषय हैं—भारत, स्वतंत्रता, संस्कृति, गाँधी, टैगोर तथा चीनी आक्रमण। 'गुंजन' (1963) में 34 कविताएँ हैं, जिनका प्रधान स्वर राष्ट्र-प्रेम और देश-भक्ति है। 'रणभेरी' (1967) में 50 कविताएँ हैं जिनमें 40 हिंदी की हैं। कवि ने कहा है कि इसकी रचना हिंदू समाज के जागरण और आजादी प्राप्त करना है। 'वंदेभारतम्' (1967) अब अनुपलब्ध है। 'एक कहानी कुली की' (1968) एक खंडकाव्य है। इसका नायक कुली है जो एक प्रकार से कवि के परदादा हैं। यह छल-कपट, यातना-शोषण और स्वतंत्रता एवं विकास की कहानी है। 'स्वराज्य गीतांजलि' (1968) में 12 कविताएँ हैं तथा भूमिका रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखी है। यह वास्तव में स्वराज्य गीतांजलि है, स्वराज्य मिलने पर मॉरीशस देश, जनता और स्वराज्य का अभिन्न देन है। 'मधुकलश' (1969) में 81 गीत हैं जो भोजपुरी में हैं और हिंदी व्याख्या के साथ दिए गए हैं। 'रसवंती' (1970) में 24 कविताएँ हैं, जिनमें प्रेम-मिलन तथा विरह का ताप है। 'सर शिवसागर रामगुलाम' (1970) उनकी जीवनी पर लिखी कविता है। 'मधुबन' (1970) में 11 प्रमुख प्राकृतिक स्थलों और सुषमा-केंद्रों पर कविताएँ हैं। 'हिंदी गौरव-गान' (1970) में 9 लंबी कविताएँ हैं। इनका मूल लक्ष्य 'हिंदी की लाज की रक्षा' है। 'मधुमास' (1971) में 60 कविताएँ हैं, 53 हिंदी की और 7 भोजपुरी की। इनमें स्वतंत्रता का उल्लास और आनंद है। 'स्वागत-गान' (1971) में 6 लघु कविताएँ हैं। यह इंदिरा गाँधी के मॉरीशस आगमन पर लिखी गई हैं। 'गोस्वामी तुलसीदास' (1973) रामचरितमानस् पर है। 'मधुचक्र' (1973) में 22 कविताएँ हैं जो हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण हैं, जिनका विषय हिंदी है। 'मधुदीप' (1984) में 37 कविताएँ हैं। इनके विषय हैं—संस्कृति, भारत, मातृभूमि, मॉरीशस, चाचा रामगुलाम, चुनाव, दीवाली-होली-गंगा,

गाँधी आदि। 'अमर कुली गाथा' (1984) में 3 कविताएँ हैं। ये हिंदी प्रवासियों के मॉरीशस आगमन के 150 वर्ष होने पर श्रद्धांजलि रूप में लिखी गई हैं। 'मधु-बहार' (1985) में 23 भोजपुरी गीत हैं। इनमें भारतीय जीवन-मूल्यों और संस्कृति की प्रमुखता और महत्ता है। 'मधुश्री' (1985) में 70 कविताएँ हैं। ये चुनी गई श्रेष्ठ कविताओं का संग्रह है। 'मधु-बाण' (1986) में 36 कविताएँ हैं। इनमें देशकाल के अनेक विषयों पर कविताएँ हैं, जिनमें तीखे व्यंग्य भी हैं और तीखी आलोचना भी। 'मधु-मंजरी' (1988) में 24 कविताएँ हैं। ये देश की आजादी, एकता, राष्ट्र-प्रेम पर आधारित हैं। 'मधु-गुंजार' (1989) बाल-गीत संग्रह है। 'माधुरी' (1989) में 33 कविताएँ हैं, जो विभिन्न नारियों पर लिखी गई हैं। 'मधुलिका' (1990-91) में 69 गीत हैं, जो कवि के अनुसार 'सोहर-झूमर संग्रह' है। 'मातृभूमि जल रही है' (1992) अनुपलब्ध है। 'ललकार' (1993) में 77 कविताएँ हैं। इसमें हिंदू जीवन से संबंधित सर्वाधिक कविताएँ हैं। 'जाग रे हिंदू' (1994) अनुपलब्ध है। 'हिंदी वंदना' (1995) में 23 कविताएँ हैं। इनका विषय हिंदी है। 'मधु-घोष' (2000) में 30 कविताएँ हैं। इसकी कविताएँ भारत, मॉरीशस, हिंदी तथा अन्य विषयों से संबंधित हैं। 'मधु-वाणी' (2000) में 54 कविताएँ हैं, जो हिंदू धर्म, देवताओं तथा त्योहारों पर आधारित हैं। 'मधु-हाला' (2000) में 46 कविताएँ हैं, जो कवि के अनुसार नैतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक 'कडुवे-मीठे गीत' हैं। 'चुनावी चटकियाँ' (2000) में 32 कविताएँ हैं। ये राजनीति, जनता, चुनाव, नेता, दल, हिंदू-हिंदी आदि पर लिखी गई हैं। 'मधु-संदेश' (2000) में एक लंबी कविता के साथ कुछ छुटपुट कविताएँ भी हैं। कवि अपना अंतिम समय जानकर विश्व को अंतिम पैगाम देता है। 'मधु-मंत्रणा' (2000) में 86 कविताएँ हैं। कवि की वैविध्यपूर्ण अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। 'युगपुरुष रामगुलाम की अमर कहानी' (2001) में रामगुलाम पर लिखी कविताओं को संकलित किया गया है। कवि और डॉ. शिवसागर रामगुलाम दोनों ही एक समय में स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी रहे हैं। 'मेरी भौजी' (2001) को कवि ने अपनी पत्नी के जीवन पर लिखा है। 'मिलेनियम पुरुष महात्मा गाँधी का पैगाम' (2001) में 18 कविताएँ हैं। गाँधी के शताब्दी पुरुष होने पर कवि की श्रद्धांजलि है। 'मधु-मालती' (2002) भी अप्रकाशित ही है। इसमें 48 कविताएँ हैं। कवि अपने अंतिम कविता-संग्रह में भी हिंदू धर्म, हिंदू जाति और हिंदी की ही चिंता करता है। 'मधुकर' जी मॉरीशस, हिंदुस्तान और हिंदू एवं हिंदी के लिए जीवित रहे और इन्हीं के उद्धार एवं उत्कर्ष का महास्वप्न लेकर 'महाप्रयाण' के लिए तत्पर हैं।

मॉरीशस के हिंदी कवि ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की यह काव्य-साधना एवं उनकी कवि-दृष्टि उन्हें अपने देश का राष्ट्रकवि बनाती है जैसे भारत में मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि थे। 'मधुकर' जी लगभग सात दशकों तक निरंतर काव्य-रचना करके इतिहास-पुरुष बन गए हैं और छोटी-छोटी कविताओं को रचकर भी महाकवि की उदात्तता, सांस्कृतिक प्रतिबद्धता और मानवीय उच्च मूल्यों से संपन्न हैं। उनका अस्तित्व एवं स्वतंत्रता-बोध, भाषा-संस्कृति-मूल्यों की रक्षा का संकल्प एवं हिंदू-हिंदी-हिंदुस्तान की संश्लिष्ट चेतना और देश का सर्वत्र दिशाओं में जागरण का शंखनाद उन्हें अपने देश का महाकवि बनाता है। 'मधुकर' जी त्रिकालदर्शी कवि हैं और उनकी काव्य-यात्रा 'अमंगल से मंगल' की यात्रा है। वे हिंदू-संस्कृति तथा भारतीयता के गायक हैं, इस प्रकार वे दो देशों की आत्मा के गायक हैं। मॉरीशस की आने वाली पीढ़ियाँ पढ़ेंगी कि उनके द्वीप में ऐसा हिंदी का महाकवि हुआ जो महाकाव्य लिखे बिना ही महाकवि की संज्ञा पा चुका था। महादेवी वर्मा ने सन् 1868 में 'मधुकर' जी के 'कविता के स्वर्ण सिंहासन पर आरुढ़' होने की भविष्यवाणी की थी। ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' मॉरीशस की हिंदी कविता के 'स्वर्ण-सिंहासन' पर 'राष्ट्रकवि' एवं 'महाकवि' के रूप में विराजमान हैं और इसी रूप में सम्मानीय बने रहेंगे।

V

ए-98, अशोक विहार, फेज-प्रथम,
दिल्ली-110052 मोबाईल : 9811052469
ईमेल : kkgoyanka@gmail.com

मध्यकालीन कविता में आधी आबादी का पूर्ण साहित्य

— डॉ. हरीश अरोड़ा

मध्यकालीन साहित्य में भक्तिकाल की निर्गुण परंपरा में सहजोबाई, उमा, मुक्ताबाई, दयाबाई और पार्वती कवयित्रियों के नाम आदर से लिए जाते हैं। इनमें भी विशेष रूप से सहजोबाई और दयाबाई की रचनाएँ अपने आत्कर्ष्य की दृष्टि से हिंदी साहित्य में आलोचना का विषय रही हैं। सहजोबाई निर्गुण मत चरणदासी संप्रदाय के अंतर्गत आती हैं। वे चरणदास की शिष्या के रूप में जानी जाती हैं। इस संप्रदाय में जिस ग्रंथ को सबसे अमूल्य माना जाता है, उसकी रचना चरणदास तथा सहजो द्वारा संयुक्त रूप से की गई। वह ग्रंथ आज भी पंजाब विश्वविद्यालय के संग्रहालय में संरक्षित है।

स्त्री-विमर्श के आरंभ से पूर्व भारतीय साहित्य में स्त्री-लेखन को वह स्थान नहीं मिला जिसकी वह अधिकारी है। जिस तरह वैदिक काल में वैदिक और संस्कृत साहित्य में गार्गी, मैत्रेयी, नितंबा, घोषा, विष्पला का नाम अविस्मरणीय है, उसी तरह पाली साहित्य में बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा रचे गए साहित्य में वैराग्य का स्वर साहित्य आलोचकों के लिए भी चर्चा का विषय रहा है। थेरी गाथा इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है। 'थेरी गाथा' नाम की कृति में 60 थेरियों की रचनाएँ कला की दृष्टि से श्रेष्ठ साहित्य कहलाता है।

साहित्य इतिहासकारों ने अपने लेखन के दौरान विभिन्न संदर्भों से साहित्य के विभिन्न रचनाकारों के अप्राप्य साहित्य के बावजूद उनका संकेत साहित्येतिहास में किया है उनमें कवयित्रियों के नाम नगण्य हैं। कारण कुछ भी रहा हो लेकिन हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में स्त्री-लेखन का स्वर क्षीण रहा। तात्कालिक परिवेश के कारण स्त्रियों को लेखन का अधिकार न मिलना अथवा लेखन के बावजूद उनके साहित्य का सामाजिक रूप से उपलब्ध न होना इसका विशेष कारण हो सकता है, लेकिन उस दौर के साहित्य की उपलब्धता के बावजूद भी हिंदी साहित्य के इतिहासों में उनको स्थान मिलने के कारण ही 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' लिखने की आवश्यकता महसूस हुई। यदि हम हिंदी साहित्य के आधुनिक काल से पूर्व के इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो वहाँ स्त्री-लेखन पूर्णत: हाशिए पर रहा है। शायद उसका कारण इतिहास लेखन के आरंभिक चरणों में उनके साहित्य की अनुपलब्धता होना हो लेकिन वर्तमान दौर में जब उस दौर की कवयित्रियों का साहित्य विशाल मात्रा में प्राप्य है तो ऐसे में इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता होते हुए भी अभी तक पुरानी पद्धति पर ही इतिहास लेखन का कार्य किया जा रहा है।

हिंदी साहित्य के इतिहास के निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न आलोचकों और इतिहासकारों ने अपने शोधों के माध्यम से स्पष्ट किया कि मध्यकाल में सहजोबाई और मीराबाई के अतिरिक्त भी अनेक कवयित्रियों की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें गंगा, ताज, सोन कुँवरि, शेख रंगरेजिन, सुंदर कुँवर बाई, रत्न कुँवरि, दीप कुँवरि, वृषभान कुँवरि, कृष्णावती, दयाबाई, प्रिया सखी आदि 50 से अधिक कवयित्रियों के नाम और उनकी रचनाओं के उदाहरण मिलते हैं।

यह अत्यंत ही आश्चर्य का विषय है कि हिंदी साहित्य के आरंभ में ही कवियों की तरह ही कवयित्रियों का वीर

रसात्मक साहित्य भी प्राप्त होता है। उस दौर में मौखिक साहित्य की परंपरा तथा लोक-साहित्य के अनेक गीतों में राजस्थान की कवयित्रियों और वीरांगनाओं के वर्णन मिलते हैं। उन वीरांगनाओं में झीमा चारणी की अनेक गाथाएँ आज भी राजस्थान में प्रचलित हैं। यह भी कहा जाता है कि राजस्थान के मौखिक साहित्य में अनेक पद उन्हीं के रचे हुए हैं। उन पदों में कहीं वह तीक्ष्ण व्यंग्य छोड़ती है तो कहीं अपनी वाक्चातुरी से प्रभावित करती है। एक प्रसंग में –

लाल मेवाड़ी करे, बीज करे न कोय।
गोया झीमा चारणी, उमा लियो मोलाय।।
पगे बजाऊं घूंघरू, हाथ बजाऊं तूंब।
उमा अचल मुलावियो, ज्यूं सावन की लूंब।।
आसावरी अलापियो, घिन झीमा धण जाण।
धिन आजूणे दीहने, मनावणे महिराण।

वह कहती है कि मेवाड़ी लालदे जो करती है उसे कोई अन्य कर ही नहीं सकता। उमादे ने जो भी खरीद-बेच किया है मैंने तो वही आपको गाकर सुनाया है। नृत्य और वीणा पर पानी से भरे हुए बादल की भाँति ही मैंने उसी गीत की वर्षा कर दी है। मेरी स्वामिनी उमादे धन्य है, जो उसे राजा को मनाने का अवसर मिला है। इसी तरह पद्मा चारणी, बिरजू बाई, नाथी, ठकुरानी काकरेची, रानी राजरघरी जी, हरिजी रानी चावड़ी जी आदि कवयित्रियों ने डिंगल में अनेक रचनाएँ की। इन रचनाओं का मुख्य स्वर वीरता की भावना का प्रसार अवश्य रहा, किंतु उसी के साथ ही शृंगार की मधुरता और विरह वर्णन भी इसमें व्याप्त है। हरिजी रानी चावड़ी जी ने तो अपने विरह की अद्भुत अभिव्यक्ति की है। राजा मानसिंह के पास भेजे संदेश में वे कहती हैं –

बेगानी पधरो म्हारा आलीजा जी हो।
छोटी-सी नाजक धीण रा पीव।
ओ सावणियो उमंग रयोदे। हरि जी ने ओडन दिखाती चीर॥
हण ओसर मिलयो कह होसी। लाडी जी रो थां पर जीव॥
छोटी-सी नाजक धीण रा पीव॥

मध्यकालीन साहित्य में भक्तिकाल की निर्गुण परंपरा में सहजोबाई, उमा, मुक्ताबाई, दयाबाई और पार्वती कवयित्रियों के नाम आदर से लिए जाते हैं। इनमें भी विशेष रूप से सहजोबाई और दयाबाई की रचना अपने आत्कर्ष्य की दृष्टि से हिंदी साहित्य में आलोचना का विषय रही हैं।

सहजोबाई निर्गुण मत चरणदासी संप्रदाय के अंतर्गत आती हैं। वे चरणदास की शिष्या के रूप में जानी जाती हैं। इस सम्प्रदाय में जिस ग्रंथ को सबसे अमूल्य माना जाता है, उसकी रचना चरणदास तथा सहजो द्वारा संयुक्त रूप से की गई। वह ग्रंथ आज भी पंजाब विश्वविद्यालय के संग्रहालय में संरक्षित है। सहजो बाई का 'सहज प्रकाश' नामक ग्रंथ मिलता है। इस ग्रंथ में वे गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए लिखती हैं –

राम तजूं पर गुरु न बिसारूं। गुरु के सम हरि को न निहारूं॥
हरि ने पांच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुड़ाइ अनाथा॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायो। गुरु ने आतम रूप लखायो॥
हरि ने मोसं आप छिपायो। गुरु दीपक देता ही दिखायो॥
चरनदास पर तन-मन बारूं। गुरु न जूं हरि को तज डारूं॥

गुरु को ईश्वर से भी ऊपर स्थान देकर सहजो बाई ने उन्हें महान बताया, वहीं दया बाई भी गुरु के महात्म्य के संबंध में कहती हैं कि

सतगुरु ब्रह्म स्वरूप है, आन भाव मत जान।
देह भाव मानें दया, ते हैं पशू समान।।

जहाँ सहजोबाई की कविताओं में अत्युक्ति का भाव स्पष्ट रूप से झलकता दिखाई देता है, वहीं दयाबाई सहज रूप से गुरु के महत्त्व का सजीव वर्णन करती हैं। काव्य-तत्त्व और कला की दृष्टि से दयाबाई सहजोबाई से कहीं अधिक सशक्त हैं।

निर्गुण पंथ की भाँति सगुण पंथ में भी अनेक कवयित्रियाँ हैं। इनमें कृष्णभक्त कवयित्रियों में मीराबाई, गंगाबाई, सोन कुँवरि, वृषभानु कुँवरि, रसिक बिहारी बनीठनी जी, ब्रजदासी रानी बाँकावती, प्रियासखी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें भी मीराबाई का नाम तो हिंदी साहित्य में श्रेष्ठतम रचनाकारों में गणनीय है, किंतु रसिक बिहारी का काव्य भी कृष्ण के प्रेम में पगी भक्तिन का काव्य है। परकीया भावनाओं का व्यक्त करती हुई कवयित्री कहती है–

मैं अपने मन भावन लीन्हों,
इन लोगन को कहा नहिं कीन्हों।
मन दे मोल लियो री सजनी,
रत्न अमोलक नवल रंग भीनो।
कहा भयो सबके मुंह मोरे मैं पायो पीव प्रवीनी।
रसिक बिहारी प्यारो प्रीतम, सिर बिधना लिख दीनी।।

वहीं कृष्ण की लीलाओं में अपने को रच देने वाली प्रियासखी कह उठती हैं–

छैल छबीली राध गोरी होरी खेल मचायो।
केसरी ढोरि गुलाल मांडि मुष अंजन दे हंसि पिय गुलचायो।
पीताम्बर सो हाथ बांधि करि होरी को नाच नचायो।
प्रियासखी को भेष बनायो पगनि महावर रंग रचायो।।

मध्यकाल में कवयित्रियों का जितना मन कृष्णभक्ति में रमा उतना राम भक्ति में नहीं। फिर भी मधुर अली, प्रेम सखी, प्रताप कुँवरि बाई और तुलछराय के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें भी मधुर अली के ग्रंथ अप्राप्य हैं। प्रेम सखी को रामकाव्य में सर्वोपरि स्थान दिया गया है। कुछ आलोचक उन्हें कवयित्री स्वीकार करने से इंकार करते हैं। राम के चरणों की वंदना करते हुए प्रेमसखी कहती हैं–

कल्प लता के सिद्धिदायक कल्पतरु
कामधेनु कामना के पूरन करन हैं।
तीन लोक चाहत कृपाकटाक्ष कमला की
कमला सदाई जाको सेवत सरन हैं।
चिन्तामणि चिन्ता के हरन हारे प्रेम सखि,
तीरथ जनक बर वानिक वरन हैं।
नख विधु पूषन समन सब दूषन ये,
रघुवंश भूषन के राजत चरन हैं।

इनका काव्य प्रेम और श्रद्धा का समन्वित काव्य है। ये राम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों का वर्णन करती हैं। वहीं प्रताप कुँवरि बाई के राम का व्यक्तित्व अत्यंत देवोपम है। इनके राम की सेवा में सभी देवी-देवता हमेशा रहते हैं। यहाँ तक कि शिव, कुबेर और ब्रह्मा भी उनकी सेवा में रत रहते हैं।

तुलछराय के राम का स्वरूप कुछ-कुछ कृष्ण के समान है। वर्णन तो वे राम का करती हैं किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण का माधुर्य उनमें समाया है। वे राम के साथ होली खेलने को आतुर हैं –

सीताराम जी से खेलूं मैं होरी। भर लूं गूलाल की झोरी।
सजकर आई जनक किशोरी। चहुं बंधन की जोरी।।
मीठे बोल सियावर बोलत। सब सखियन की तोरी।।
हंसू हर सूं कर जोरी।।

उत्तरमध्यकालीन कविता में रीतिकाल के दौरान प्रवीण राय पातुर, रूपवती बेगम, शेख रंगरेजन और सुंदर कली के नाम लिए जाते हैं। इनमें भी शेख रंगरेजन को श्रृंगारिक कविताओं में जो सिद्धहस्तता प्राप्त है, वह रीतिकाल के कवियों के समकक्ष है। प्रवीण राय तो इंद्रजीत के दरबार में नृत्य किया करती थीं। केशव ने तो उनके संबंध में ही अनेक पद लिखे हैं। उनकी वाक्चातुरि अद्‌भुत थी। वहीं शेख रंगरेजन की कविता काव्य-शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ है। उसका एक चित्र दृष्टव्य है–

घूंघट ते सेख मुख जोति न घटैगी छिनु,
झीनी पट न्यारियै झलक पहिचानि है।
तू तो जाने छानी, पौन छानी या रहेगी बीर,
छानी छवि नैनन की काको लोहू छानि है?

वैसे तो मध्यकालीन साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन करते हुए इन कवयित्रियों की कविताओं को भी अन्य कवियों के समान स्थान मिलना चाहिए, किंतु हिंदी साहित्य इतिहास लेखन के आलोचकों की दृष्टि में कला और शिल्प का आधार इन कवयित्रियों को हाशिए पर धकेलने का यत्न करता रहा है। फिर भी अपनी उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं से इन कवयित्रियों ने जिस तरह की रचना की है, वह साहित्य के क्षितिज पर अपनी स्वर्णिम आभा बिखरने को आतुर है। इन कवयित्रियों के साहित्य के बिना हिंदी साहित्य की पूर्णता की कल्पना की ही नहीं जा सकती।

संदर्भ

1. मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ, डॉ. सावित्री सिन्हा, आत्माराम एंड संस, नई दिल्ली, संस्करण 1953
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण 1943
3. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा, ज्ञानगंगा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 1973
4. हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास भाग 7, रीतिकाल, सं. भगीरथ मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2929 विक्रम
5. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, संस्करण 2004।

V

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय
एन-23, श्री निवास पुरी, नई दिल्ली-110065
मोबाइल : 8800660646, ई-मेल : drharisharora@gmail.com

महाराष्ट्र में हिंदी भाषा के अध्ययन-अध्यापन की चुनौतियाँ

— डॉ. पुरुषोत्तम कुंदे

महाराष्ट्र में आजकल मराठी को क्लासिकल भाषा (अभिजात्य भाषा) के रूप में स्थापित करने की जद्दोजहद हो रही है। वैसे ऐसा करना गलत नहीं है। लेकिन इस कारण भाषाई संघर्ष को और अधिक बढ़ावा मिल रहा है। एक तीसरा वर्ग भी महाराष्ट्र में मौजूद है। इस वर्ग की चिंता है कि हिंदी को बढ़ावा मिल गया तो मराठी भाषा का अस्तित्व खतरे में आ सकता है।

भाषा के द्वारा ही मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति सहजता से करता है। भारतीय संस्कृति को विश्वभर में इसलिए गरिमापूर्ण माना गया है, क्योंकि यहाँ अनेक भाषाओं में विविध धर्मों, जातियों, संप्रदायों की सभ्यता एकरूप होकर समा गई है। कोई भाषा जितनी अधिक समृद्ध होती है, उसके प्रयोग में उतने ही आयाम जुड़ते हैं। चूँकि हिंदी भाषा भी इसके लिए अपवाद नहीं है। वस्तुतः किसी भाषा का संबंध पहले उसके क्षेत्र विशेष के साथ संदर्भ के अनुरूप होता है। भारत में राज्यों का निर्माण ही भाषा के आधार पर हुआ है। महाराष्ट्र में मराठी प्रादेशिक भाषा है। हिंदी का प्रयोग यहाँ द्वितीय भाषा के रूप में होता है। चूँकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिंदी का कैनवास बहुत व्यापक है। यह विस्तार इसलिए भी है कि इसमें हिंदी के अनेक रूप घुल-मिल गए हैं। इस संबंध में सन 1918 में महात्मा गाँधी द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर कही गई बात विचारणीय है,—'जो मधुरता मुझे ग्राम की हिंदी में मिलती है, वह न तो लखनऊ के मुसलमानों की बोली में है और न प्रयाग के हिंदुओं की। भाषा की नदी का उद्‌गम जनता के हिमालय में है। हिमालय से निकली हुई गंगा हमेशा बहती रहेगी। इसी प्रकार ग्राम की हिंदी हमेशा बहती रहेगी, जबकि संस्कृतमय तथा फारसीमय हिंदी, छोटी नदी की भाँति जो छोटी-सी पहाड़ी से निकलती है, सूख जाएगी और लोप हो जाएगी। हिंदी और उर्दू का सद्‌संगम उतना ही सुंदर होगा, जितना गंगा और यमुना का और वह सदैव रहेगा। वस्तुतः महात्मा गाँधीजी जिस हिंदी भाषा की पक्षधरता कर रहे हैं वह 'हिंदुस्तानी' के रूप में परिचित है।

चूँकि भारत में हिंदी भाषा विविध रूपों में बोली जाती है। आजादी के पश्चात् भारत में भाषा नीति अपनाई गई। इसी का अगला पड़ाव त्रिभाषा सूत्र है। गौरतलब है कि जब भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण हो रहा था, तब स्वयं संविधान निर्माता डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर भी इस बात को लेकर चिंतित थे कि भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण होगा लेकिन इससे राज्य छोटे-बड़े बन जाएँगे। तब इन राज्यों में अन्य समस्याएँ पनप सकती हैं। त्रिभाषा सूत्र नीति के तहत हिंदी भाषी प्रदेश और अहिंदी भाषी प्रदेशों में दूरी कम नहीं हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में त्रिभाषा सूत्र नीति हमेशा ही आलोचना का विषय रही है। मातृभाषा और द्वितीय भाषा की श्रेष्ठता प्रमाणित करते हुए यह मसला हमेशा ही विवाद का

रहा है। महाराष्ट्र के संबंध में विचार करें तो मराठी यहाँ प्रादेशिक भाषा है। अत: जिनकी मातृभाषा मराठी है, उनके लिए हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में कार्य करती है। चूँकि मातृभाषा का ज्ञान सांस्कृतिक समन्वय करता है और हिंदी राष्ट्रीय समन्वय। इस संदर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि आजकल त्रिभाषा सूत्र काफी हद तक अप्रासंगिक बन गया है। क्योंकि यह समय 'मल्टीलिंग्वल' है। कक्षा में जो छात्र बैठे हैं, उनकी भाषाएँ (मातृभाषा) भिन्न-भिन्न हैं। अत: त्रिभाषा सूत्र की आवश्यकता अपने समय भले ही रही हो, लेकिन वर्तमान में बहुभाषाई दृष्टिकोण ही अधिक उपादेय है।

महाराष्ट्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु यहाँ के मानस ने हमेशा ही अग्रिम भूमिका निभायी है। इस बात की पुष्टि लब्धप्रतिष्ठित रचनाकार नरेश मेहता के विचारों से भी होती है। उनका कहना है कि 'महाराष्ट्र को एक तरफ उत्तर का लालित्य प्राप्त है, तो दूसरी तरफ दक्षिण की परंपरा। महाराष्ट्र न केवल उत्तर है, न दक्षिण, अपितु दोनों का संगम है। यदि मुझमें कहीं पांडित्य का हलका-सा छींटा है, तो वह महाराष्ट्र का है। महाराष्ट्र के दृढ़ संकल्प से ही हिंदी को बल मिला है। नरेश मेहता जी के विचार भले ही अतिशयता को सूचित करते हैं, लेकिन उनके द्वारा महाराष्ट्र के संबंध में की गई यह टिप्पणी सचमुच अहिंदी प्रदेशों में हिंदी का प्रचार करने के लिए संबल है। आजादी के पूर्व भारत में हिंदी स्वतंत्रता संग्राम की भाषा के रूप में अपनाई गई। लेकिन आजादी के पश्चात् राजनीतिक हथकंडों से हिंदी के प्रचार-प्रसार में रोड़ा उत्पन्न होने लगा। अर्थात् हिंदी को राजनीति की दीमक ने चाटना शुरु किया। फिर भी हिंदी का अस्तित्व अडिग है और रहेगा भी। अहिंदी प्रदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक व्यक्तियों एवं संस्थाओं का योगदान रहा है। आजादी के बाद हिंदी के प्रचार-प्रसार में महाराष्ट्र ने अग्रिम भूमिका निभाई है। लेकिन उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि जिस महाराष्ट्र ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अभूतपूर्व योगदान दिया है, आजकल वहीं हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में अनेक चुनौतियाँ हैं। अत: इन चुनौतियों को विस्तार से समझा जा सकता है। महाराष्ट्र में भाषाई राजनीति रोड़ा है। इसके कारण हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में चुनौती निर्माण होती है। मराठी भाषा की अस्मिता के आधार पर राजनीतिक पार्टियों के द्वारा की जाने वाली राजनीति हिंदी के विकास हेतु कभी भी बलदायी नहीं है। उससे शिक्षा के क्षेत्र और दैनंदिन व्यवहार में भी हिंदी के प्रचार-प्रसार में बाधा निर्माण होती है। इस बात को डॉ. रामविलास शर्मा बहुत पहले ही समझ गए थे। इसीलिए उन्होंने लिखा है "भाषा का घनिष्ठ संबंध राष्ट्रीय एकता से है। यह बात किसी से छिपी नहीं है। जिस राष्ट्र में जितनी ही आंतरिक दृढ़ता होगी, उतना ही वह हर तरह का तनाव और बोझ सह लेने की स्थिति में होगा। जिस देश की फौज और जनता में दृढ़ भाईचारा होता है, जिस देश की राजसत्ता के पीछे संगठित जनता की शक्ति होती है वह देश अपराजेय होता है। भाषा समस्या का सही समाधान राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करके उसे अजेय बना सकता है, भाषा समस्या का गलत समाधान लोगों में असंतोष पैदा करके राष्ट्रीय एकता को कमजोर कर सकता है। इस तरह का असंतोष हर अवस्था में विघटनकारी होता है, दीर्घकालीन युद्ध की परिस्थितियों में वह विशेष रूप से खतरनाक साबित हो सकता है। हमारी राष्ट्रीय एकता हर परिस्थिति में हर तरह का तनाव बरदाश्त करके अटूट बनी रहे, हमें यही प्रयत्न करना चाहिए।"

लेकिन महाराष्ट्र में आजकल मराठी को क्लासिकल भाषा (अभिजात्य भाषा) के रूप में स्थापित करने की जद्दोजहद हो रही है। वैसे ऐसा करना गलत नहीं है। लेकिन इस कारण भाषाई संघर्ष को और अधिक बढ़ावा मिल रहा है। एक तीसरा वर्ग भी महाराष्ट्र में मौजूद है। इस वर्ग की चिंता है कि हिंदी को बढ़ावा मिल गया तो मराठी भाषा का अस्तित्व खतरे में आ सकता है। अत: महाविद्यालयीन और विश्वविद्यालयीन स्तर पर अध्ययन करने वाले छात्रों के मन में संदेह उत्पन्न होता है। इस धारणा से न सिर्फ अध्ययन प्रक्रिया प्रभावित होती है, बल्कि अध्यापन के स्तर पर भी समस्या निर्मित होती है। हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में और एक महत्वपूर्ण समस्या या चुनौती है रोजगार युक्त पाठ्यक्रम का निर्माण। यद्यपि यह चुनौती महज महाराष्ट्र या हिंदी प्रदेशों तक सीमित नहीं है। भारत में प्राय: सभी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का चित्र एक सरीखा है।

सालों से वही पाठ्यक्रम विशिष्ट साँचे में छात्रों के सम्मुख परोसा जा रहा है। अत: हिंदी भाषा का अध्ययन करने वाले छात्र सवाल पूछते हैं कि क्या इससे हमें रोजगार मिलेगा? इसीलिए रोजगार और कौशल आधारित शिक्षा की नितांत आवश्यकता है। हिंदी प्रदेशों में छात्र बैंक, रेडियो, पत्रकारिता, दूरदर्शन, सिनेमा या स्टाफ सिलेक्शन कमिशन जैसे विकल्प चुनते हैं। किंतु महाराष्ट्र में अभी भी छात्र हिंदी अध्यापक की नौकरी को ही स्वनाम धन्य मानते हैं। इस दृष्टि से उनके रोजगार को केंद्र में रखकर शिक्षा प्रदान करना सबसे बड़ी चुनौती है। परिणामत: छात्र और कुछ अध्यापकों में पनपी निराशा को किस तरह दूर किया जाए, यह सोचनीय पहलू है। हिंदी अध्ययन और अध्यापन से संबंधित एक अन्य चुनौती है सुनिश्चित मानक अध्यापन शास्त्र Pedagogy का अभाव। वस्तुत: महाविद्यालयीन और विश्वविद्यालयीन स्तर पर अध्यापन करते समय इस बात को कितने अध्यापक सम्मुख रखते हैं, यह एक चिंतन का विषय हो सकता है। मूलत: Pedagogy और Andragogy स्वतंत्र शिक्षा पद्धतियाँ हैं। चूँकि Pedagogy में छात्र अध्यापक पर पूर्णत: निर्भर होते हैं। किंतु Andragogy में ऐसा नहीं है। वह प्रौढ शिक्षा पद्धति है। वास्तव में हिंदी भाषा के अध्यापन हेतु यह सुनिश्चित करना बहुत आवश्यक है कि Pedagogy और Andragogy में छात्रों के स्तर और आशय के अनुरूप प्रणालियाँ बनाई जाएँ। महाराष्ट्र के अलावा अन्य राज्यों में भी यही स्थिति लक्षित होती है। यह अब भली-भाँति समझना होगा कि कर्माक अयन पद्धति Credit System के अंतर्गत छात्र अगर अध्ययन कर रहा है, तो वह अध्यापक के साथ निरंतर वैचारिक आदान-प्रदान करता है। इससे उसके भाषायी कौशल में वृद्धि होती है।

इसी तरह हिंदी भाषा का अहिंदी प्रदेशों में अध्यापन करने के लिए उचित प्रशिक्षण का अभाव भी एक चुनौती भरा है। वरिष्ठ महाविद्यालयों की स्थिति यह है कि कोई छात्र स्नातकोत्तर शिक्षा के पश्चात नेट/सेट परीक्षा पारित करता है और सीधे अध्यापन करने के लिए कक्षा में दाखिल हो जाता है। अब सवाल यह है कि क्या भाषा पढ़ने के लिए मनोविज्ञान की आवश्यकता है? क्या किसी भाषाई कौशल और अध्यापकीय कौशल की जरूरत है? अध्यापक महज क्लास में आकर किताब सम्मुख रखकर अथवा सालों पुराने बनाए हुए नोट्स से ही छात्रों की जिंदगी बनाना चाहें तो क्या यह हकीकत में हो सकता है? इसलिए डिजिटल युग में भाषा की दृष्टि से प्रशिक्षण भी उसी अनुपात में देने की आवश्यकता है। अत: कक्षा में छात्रों की मौजूदगी अगर कम होती जा रही है तो यह मसला महज सोचने भर तक सीमित नहीं है। अहिंदी प्रदेशों में छात्रों की अभिरुचि विकसित करना दिन-ब-दिन कठिन हो रहा है। जैसे मध्यकालीन काव्य से छात्र और अध्यापक दोनों छुटकारा पाना चाहते हैं। चूँकि मध्यकालीन काव्य की रूप प्रस्तुति करना ही वर्तमान अध्यापक की दृष्टि से टेढी खीर है। इसलिए भी छात्र मध्ययुगीन काव्य के रसास्वादन में बाधा अनुभव करते हैं। चूँकि हिंदी भाषी प्रदेशों में यही बातें छात्र बचपन ही से सुनते हैं, उन्हें यह चीज आसान प्रतीत होती है। यद्यपि यह सच है कि कवि और कविता के बीच अध्यापक सेतु का काम करता है। ठीक ऐसे ही वह कवि और छात्र के बीच भी एक जरिया है। अत: कविता पढ़ाते समय उसे शैली विज्ञान की पद्धति का ज्ञान आवश्यक है। वह इसलिए कि इससे वह कविता में प्रयुक्त शब्दों को समझने में सहायता करेगा। चूँकि बोलचाल की भाषा और काव्य की भाषा में पर्याप्त भिन्नता होती है। रचनाकार जब लिखता है, तब वह यह सोचकर तो नहीं लिखता कि वह अहिंदी भाषी पाठक के लिए लिख रहा है। अत: सांस्कृतिक एवं सामाजिक संदर्भों का अहिंदी प्रदेशों में विश्लेषण करना भी प्राय: चुनौती-भरा कार्य है। इसमें दो राय नहीं कि अहिंदी प्रदेशों में पद्य की अपेक्षा गद्य के द्वारा हिंदी की स्थिति में अधिक सुधार हुआ। है, हो रहा है। नाटक के कारण संवाद कौशल विकसित करने में अधिक सहायता हुई है।

इस परिप्रेक्ष्य में उन चुनौतियों का उल्लेख भी जरुरी है, जो अहिंदी प्रदेशों में अक्सर पाई जाती हैं। विशेष रूप से महाराष्ट्र के संदर्भ में यह समस्या हमेशा लक्षित होती है। प्राय: यह चुनौतियाँ तीन स्तरों पर हैं—उच्चारण, लेखन और व्याकरण के धरातल पर। भाषा शिक्षण में उच्चारण मुख्य तत्व है। महाराष्ट्र में मराठी मातृभाषा है। अत: शुद्ध हिंदी के

उच्चारण में प्राय: सहजता का अभाव होता है। कुछ ध्वनियों का उच्चारण करना स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के छात्रों के लिए भी कष्टप्रद अनुभव है। यथा- 'ङ' और 'ञ' आदि ध्वनियों का उच्चारण। 'और' तथा 'ओर' में हमेशा अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। प्राय: 'बहुत' शब्द का उच्चारण 'बहुत' ही किया जाता है। चूँकि शुद्ध उच्चारण है 'बहोत'। इसलिए उच्चारण की दृष्टि से लिंग्वाफोन (Lingua phone) का प्रयोग करना ही अधुनातन अध्यापन शास्त्र (Pedagogy) में महत्वपूर्ण पड़ाव है। वास्तव में हिंदी भाषा के अध्यापन में अधुनातन शैक्षिक साधनों का प्रयोग न करना बड़ी समस्या बन गई है। शैक्षिक साधनों के प्रयोग न करने के कारण ही छात्र और अध्यापक दोनों गहरी उदासीनता में नजर आते हैं। Power Point Presentation के अलावा अब बात Google Classroom की भी करनी जरूरी है। चिट्ठा Blog और twitter अब तो पुराने हो चुके हैं। लेकिन अभी भी अहिंदी प्रदेशों में इस दृष्टि से यात्रा शेष है। हिंदी भाषा के अध्ययन संबंधित दूसरी चुनौती लेखन विषयक है। हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं की लिपि देवनागरी है। अत: जिनकी मातृभाषा मराठी है, उन्हें लिखते समय विविध कठिनाइयों का अनुभव होता है। किंतु संभ्रम तब अधिक बढ़ता है, जब हिंदी लेखन में अनेकरुपता देखी जाती है। यथा-'हिंदी' शब्द 'हिन्दी' के रूप में भी लिखा जाता है। कहीं 'कंकाल' लिखा जा रहा है तो कहीं 'ककाल'। कोई 'दंड' लिखता है तो कोई 'दन्ड'। इसी तरह मराठी में जहाँ 'ण' प्रयोग होता है, वहीं हिंदी में 'न' का उपयोग किया जाता है। यथा-कठिण-कठिन-तणाव-तनाव, पाणी-पानी। किंतु कुछ शब्द अपवाद हैं, जैसे भाषण, कारण, गुण, प्रमाण, व्याकरण आदि दोनों भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। हिंदी और मराठी में कई बार शहरों के नाम लिखते समय भी अशुद्धियाँ हो जाती हैं। उदाहरण देखिए -

मराठी	हिंदी
अलाहाबाद	इलाहाबाद
पाटना	पटना
लखनौ	लखनऊ आदि।

यद्यपि इस संदर्भ में केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार की ओर से मानक हिंदी की मार्गदर्शिका समयानुरूप प्रकाशित होती रही है। किंतु निदेशालय की नियामवली पढ़ने के पश्चात ही शुद्ध हिंदी का प्रचलन सहज बन सकता है। इसके लिए जरुरी है कि अध्यापक सदाशयता के साथ परिवर्तित नियामवली से अवगत होकर छात्रों में संप्रेषित करें। महाराष्ट्र में हिंदी अध्ययन-अध्यापन की सबसे बड़ी चुनौती है व्याकरण की समानता। चूँकि हिंदी और मराठी की लिपि एक है। साथ ही व्याकरण के धरातल पर भी अनेक स्तरों पर संभ्रम की स्थिति निर्माण होती है। इस दृष्टि से यह चुनौती महज छात्रों के स्तर तक सीमित नहीं है बल्कि अध्यापक भी इससे परेशान रहते हैं। इसे विस्तार से समझा जा सकता है। महाराष्ट्र में मराठी मातृभाषा और हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में कार्यरत है। दोनों भाषाओं की जननी संस्कृत है। यही कारण है कि दोनों में अर्थ की दृष्टि से समान शब्दों का प्रयोग होता है। यथा-'राजा', 'श्रोता', 'वक्ता', 'दिन', 'चोर', 'नाक', 'कान', 'गमन' आदि। किंतु बात जब व्याकरण की होती है तब मराठी में व्याकरण के नियमानुसार संस्कृत के तत्सम् शब्द इकारांत और उकारांत शब्द दीर्घ लिखे जाते हैं।

उदाहरण के लिए-

मराठी	हिंदी
बुद्धी	बुद्धि
पती	पति

इसी तरह मराठी भाषा में सर्वनाम के अनुरूप लिंग में परिवर्तन आता है। हिंदी में ऐसा नहीं होता है। देखिए-

हिंदी	मराठी
वहतो	(पु.) ती (स्त्री.) ते (न.पु.)

ऐसे ही हिंदी में प्राय: 'तू' का प्रयोग नहीं होता है बल्कि 'तुम' और 'आप' का प्रयोग किया जाता है। मराठी में 'तू' 'तुझे' का प्रयोग आम है। हिंदी में 'दो' लिंग ही प्रचलित है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग। किंतु मराठी में तीन लिंगों का प्रयोग किया जाता है। यथा पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। गौरतलब है कि मराठी भाषी छात्र बचपन ही से मातृभाषा मराठी का व्याकरण सीखते हैं। उनके द्वारा जब हिंदी का अध्ययन शुरु होता है, तब अनेक आशंकाओं के साथ वे महाविद्यालय और विश्वविद्यालयीन स्तर पर हिंदी की शिक्षा

अर्जित करने हेतु प्रवेश लेते हैं। मराठी में 'ही' अव्यय की भावगत अभिव्यक्ति हिंदी में 'भी' को दर्शाती है। जैसे-

मराठी	हिंदी
तेथे रामही आला।	वहाँ राम भी आया।
तेथे फक्त राम आला।	वहाँ राम ही आया।

स्पष्ट है कि मराठी में प्रयुक्त 'ही' हिंदी 'भी' को सूचित करता है। लेकिन 'वहाँ राम ही आया' में प्रयुक्त 'ही' हिंदी में 'सिर्फ' को इंगित करता है। मराठी की वाक्य रचना में समानाधिकरण पद 'हा' 'ही' 'हे' का प्रयोग होता है। किंतु हिंदी में यह प्रचलन नहीं है। उदाहरण : हिंदी में लिखा जाए कि 'महात्मा गाँधी महापुरुष थे'। मराठी में प्रयोग होता- 'महात्मा गाँधी हे महापुरुष होते'। अब वचन की दृष्टि से विचार करें तो हिंदी और मराठी में वचन-भेद नहीं है। दोनों में समानता है। वहीं वाक्य-रचना में कहीं अंतर तो कहीं समानता। हिंदी में मुख्य वाक्य से आरंभ होता है किंतु मराठी में वही बात अंत में कही जाती है। यथा-हिंदी में देखिए 'उन्होंने कहा कि मैं नहीं जाऊँगा'। मराठी में होगा-'मी जाणार नाही असे ते म्हणाले'। इसी कारण स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर भी हिंदी भाषा सीखने में अपपठन (Dyslexia) की स्थिति निर्माण होती है। मनोविज्ञान इसे ही अधिगम अक्षमता मानता है। वस्तुत: (Dyslexia) का अर्थ होता है लेखन, पठन, उच्चारण से संबंधित कमजोरी। मराठी और हिंदी के अनेक शब्द हैं जो एक ओर वर्तनी के स्तर पर मिले-जुले हैं तो दूसरी ओर वर्तनी में समान होते हुए भी अर्थगत भिन्नता है। वर्तनी के स्तर पर समानता रखने वाले शब्द देखिए-

मराठी	हिंदी
मदत	मदद
पसंत	पसंद
भूक	भूख
धोका	धोखा आदि

इसी तरह तत्सम् शब्द सभी भारतीय भाषाओं में घुल-मिल गए हैं। किंतु अहिंदी प्रदेशों में चुनौती यही है कि तत्सम् शब्दों के प्रदेश के अनुरूप भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। उदाहरण के लिए मराठी में शिक्षा, सजा के अर्थ में है तो हिंदी में शिक्षा, शिक्षण के अर्थ में, मराठी में प्रकृति, तबीयत है तो हिंदी में निसर्ग। मराठी में चेष्टा मजाक है तो हिंदी में प्रयत्न। हिंदी और मराठी में कुछ संज्ञाएँ समान हैं। लेकिन लिंग की दृष्टि से उनमें भिन्नता पाई जाती है। जैसे-अग्नि, सरकार, देह, आत्मा, आवाज, मृत्यु आदि संज्ञाएँ मराठी में पुल्लिंग हैं, किंतु हिंदी में ये सभी स्त्रीलिंग हैं। इसी तरह मराठी में कुछ स्त्रीलिंग संज्ञाएँ हैं, जिनका हिंदी में पुल्लिंग प्रयोग होता है। जैसे-व्यक्ति, मजा, जादू आदि।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आजादी के पूर्व से ही हिंदी के प्रचार-प्रसार में महाराष्ट्र की अग्रिम भूमिका रही है। लेकिन भूमंडलीकरण, निजीकरण के प्रभाव के कारण न सिर्फ महाराष्ट्र में बल्कि सभी अहिंदी प्रदेशों में अनेक चुनौतियाँ निर्मित हुई हैं। किंतु इन तमाम विसंगतियों के बावजूद भी सकारात्मक सोच और वैश्विक दृष्टि ही हिंदी भाषा का अपने ही घर में होने वाला विरोध खत्म कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. तिवारी, भोलानाथ (1998) हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ, (दिल्ली) पांडुलिपि प्रकाशन।
2. नागप्पा ना. हिंदी साहित्य का अध्यापन, (आगरा) केंद्रीय हिंदी संस्थान
3. जैन, महावीर सरन, भारत की भाषाएँ एवं भाषिक एकता तथा हिंदी (इलाहाबाद) लोकभारती प्रकाशन।
4. मृगेश, माणिक (2000) भूमंडलीकरण, निजीकरण व हिंदी, (नई दिल्ली) वाणी प्रकाशन।
5. जोगलेकर, न.चि., तिवारी भगवानदास (संपा) (1984) राष्ट्रभाषा विचार संग्रह, पुणे विद्यार्थी गृह प्रकाशन।
6. गोडबोले, म.य., जोशी, श.म., (1999) हिंदी : विषयज्ञान एवं अध्यापन पद्धति (पुणे) सुविचार प्रकाशन ।
7. शर्मा, रामविलास (तीसरा संस्करण 2008) भारत की भाषा समस्या, भूमिका से (नई दिल्ली) राजकमल प्रकाशन ।
8. हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 56वां अधिवेशन एवं परिसंवाद पुणे, विशेषांक सन 2004।

V

प्रभारी प्राचार्य, न्यू आर्ट्स, कॉमर्स एंड साइन्स कॉलेज,
शेवगाँव, जि. अहमदनगर, महाराष्ट्र 414502
ईमेल : prkunde@gmail.com, मो. 9552554284

वेदों में पर्यावरण की चिंता और चिंतन

— प्रो. दिनेश चमोला 'शैलेश'

पर्यावरण-संरक्षण की चिंता, जो स्वस्थ चिंतन की दृष्टि से हमारे पौराणिक ग्रंथों, विशेषकर वेदों में उल्लेखित है, वह निश्चित रूप से मानव के कल्याण के लिए ही है। जब तक मनुष्य इन वेदोक्त मंत्रों एवं प्रावधानों से अधिशासित होकर विशुद्ध हृदय से इनका अक्षरशः पालन सुनिश्चित करता आ रहा था, तब तक प्रकृति उसके लिए आनंद, शांति, करुणा, चिंतन एवं साधना की उत्कर्ष-स्थली थी। उससे वह, वह सब कुछ पा सकता था, जो वह पाना चाहता था, लेकिन जब से वह प्रकृति तथा वेदोक्त अपेक्षाओं से दूर हो, स्वयं को कर्ता मान इसकी नैसर्गिक संरचना से छेड़छाड़ करने लगा, तभी से प्रकृति उसके क्रियाकलापों से मानो रुष्ट हो गई है।

पर्यावरण का संबंध अनंत काल से मानव जीवन से अक्षुण्ण रूप से संपृक्त रहा है। जिस भी परिवेश में मनुष्य ने विगत कर्मानुसार एवं प्रभु कृपास्वरूप अपनी दुर्लभ जीवन-रूपी अभिनय-लीला का शुभारंभ किया होगा, वहाँ अपने चैतन्य आमोद-प्रमोद, चिंतन की उत्कृष्टता, तप की शुचिता, साधना, निधिध्यासन, अभीष्ट-प्राप्ति, ज्ञानार्जन एवं परिवर्द्धन हेतु वह सतत ही प्रकृति के सान्निध्य एवं ममतामयी मातु वसुंधरा का वात्सल्य पाने के लिए स्वभावतः लालायित रहा होगा।

भौतिकता की चकाचौंध में डूबकर जितनी जल्दी वह इस दृष्ट जगत के क्षणिक तथा अस्थायी संबंधों, नश्वर सुविधाओं के साथ-साथ अल्पकालिक उपलब्धियों से ऊबकर अपने वास्तविक स्वरूप एवं संरचना से परिचित हो नैराश्य के भँवर में डूबने-उतरने हेतु विवश हो गया होगा, तब पुण्यतोया प्रकृति के एकाकी सान्निध्य ने उसे शाश्वत आनंद और अपनी अद्‌भुत शक्ति-ऊर्जा से प्राण-प्रतिष्ठित कर दुर्लभ मानव जीवन के मूल मंतव्यों से परिचित करवाकर उसके ज्ञान-गवाक्ष की सुदीर्घ वीथियाँ खोलकर उसकी भाव-चेतना को झंकृत किया होगा ।

प्रकृति से जुड़ना, न केवल मनुष्य के लिए आनंद व उत्कर्ष की स्थिति रही है, बल्कि इस रहस्यात्मक एवं अनुभूतिजन्य जगत के अप्रतिम अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी सौंदर्य से सुदीक्षित हो यथासंभव दुर्लभ ज्ञान-संपदा से मानव जीवन को उपादेय एवं स्मरणीय बनाना भी उसका अभीष्ट रहा होगा। प्रकृति की इसी दिव्यता एवं भव्यता से सद्‌प्रेरित एवं अधिशासित हो अपने सृजनशील व्यक्तित्व को इस अपूर्व ज्ञान मंजूषा से निखारने, सजाने-सँवारने में संजीवनी सदृश शक्ति अर्जित कर उसने अपने श्रेष्ठ चिंतन-दर्शन से स्वयं को अन्य जीव-जातियों में उत्कृष्ट भी करार दिया होगा।

अनंत कल्पों के निक्षेपित पुण्यों के पुंज से तथा प्रभु-प्रदत्त मस्तिष्क की उत्कृष्टता से अभिभूत होकर मनुष्य ने इसके अंक में वैचारिक समाधि का अवगाहन कर अनुपम

शक्तियाँ एवं ज्ञान अर्जित किया। संभवत: प्रकृति की इसी उदात्त सौंदर्य-दृष्टि एवं औदार्य से वशीभूत हो उन दिव्य ऋषि-मुनियों ने इस दिव्यधरा को न केवल अपनी तपस्थली एवं साधनास्थली बनाया, बल्कि सृजन की आधारभूमि भी बनाया। इस अलौकिक एवं अतुलनीय सौंदर्य पर रीझकर ही देवर्षियों और साक्षात प्रभु ने इन विरल स्थलों पर आकर वेद-ऋचाओं का प्रणयन किया होगा ।

आज से हजारों वर्ष पूर्व सृजित इन अपूर्व वेद-ऋचाओं में मानव-कल्याण एवं प्रकृति के संरक्षण हेतु न केवल उपादेय दिशा-निर्देश संन्निहित हैं, अपितु जैव विविधता एवं जीव मात्र के कल्याण एवं संवर्द्धन हेतु ऐसे जीवनदायिनी सूत्र एवं प्राणरक्षक नुस्खे उल्लिखित हैं, जिनके सेवन एवं अनुप्रयोग से आरोग्यता के साथ-साथ जीवमात्र के लिए दीर्घजीविता की प्रत्याभूति भी संन्निहित है।

वेदों में पर्यावरण-संरक्षण के असंख्य मंत्र उल्लिखित हैं। हजारों वर्ष पूर्व ही हमारे ऋषि मुनियों ने अपनी संजय-ज्ञानदृष्टि से भविष्य की इन चिंताओं का दिग्दर्शन कर इनके समाधानों को ढूँढ निकाला था। जल और वायु, संपूर्ण जड़ एवं चेतन सृष्टि के लिए प्राण-तत्व सदृश हैं। उनके अभाव में न भाव रूपी चेतन सृष्टि (सृजन) की कल्पना की जा सकती है और न ही जड़ (प्रकृति) के विकास एवं विन्यास की संभावना ही ।

अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी दोनों ही प्राकृत सत्ताएँ जल एवं वायु के संरक्षण के अभाव में किसी भी रूप में फलीभूत नहीं हो सकतीं। प्राणवायुरूपी ऑक्सीजन हमारी दीर्घजीविता हेतु कितनी आवश्यक है तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड की क्या भूमिका है, इस वैज्ञानिक संचेतना की उपादेयता हमारे ऋषि-मुनियों ने असंख्य वर्षों पूर्व स्वीकार कर इसके गुण-दोषों का विवेचन कर लिया था। प्रदूषित वायु एवं स्वच्छ वायु के लाभ-हानि की चिंता का विश्लेषणात्मक भाव वेद के इन मंत्रों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावत:।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रप:।।
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रप:।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।
(ऋग्वेद, 10/137/2,3) (अथर्ववेद, 4/13/2,3)

स्वच्छ एवं प्रदूषित वायु का विश्लेषण अत्यंत वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। आज जो कुछ हमें अच्छा या उत्तम प्राप्त अथवा प्रतीत हो रहा है, वह हमारे पूर्वजों ने बोया है, सहेजा है, उगाया है.....जो कुछ कल उगेगा, खिलेगा...वह अपनी संतति के लिए हमारा आज का बोया हुआ होगा। अत: यदि हम अच्छा तथा श्रेष्ठतम चाहते हैं तो हमें उत्तम ही बोना पड़ेगा। आखिर जो कुछ बोओगे वही तो कल काटने के लिए हमें मिलेगा। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के सान्निध्य में संरचित कुछ ऐसे अवयव अथवा पुरुषार्थ का संविरचन क्यों न किया जाए जो सब के लिए हितकर एवं लाभकारी हो। इसे कैसे किया जाए, इस सबका प्रावधान तथा चिंता हमारे आर्ष ग्रंथों में पूर्व में ही बहुत सूक्ष्मता से किया गया है।

ह्रास होते जीवनमूल्य, गड़बड़ाता पर्यावरण, डराता दमघोटू प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, वैश्विक तापन, भयावह सूखापन, घटती हरीतिमा एवं वन्य संपदा, जैव विविधता पर मँडराते संकट के बादल आदि अनेकानेक ऐसी समस्याएँ हैं, जो हमारी खुशियों पर कुठाराघात करने के लिए हर क्षण तत्पर हैं। लेकिन इनसे दो-चार होने के लिए यदि समय रहते कमर न कसी गई तो भावी परिणाम अत्यंत भयावह होने निश्चित हैं। यदि इनके प्रबंधन एवं नियंत्रण में हम वेदों में सुविवेचित पद्धतियों का उपयोग करें तो सारी समस्याएँ स्वत: ही नियंत्रित हो जाएँगी। इस प्रकार की समस्याओं के निदान के लिए 'ऋग्वेद' में पहले ही व्यवस्था दी गई है कि-

'स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्या चन्द्र मसाविव।
पुनर्ददताऽध्नता जानता संगमेमदि।।'
(ऋग्वेद, 2.11.4)

इस संपूर्ण स्वच्छता के लिए केवल मानसिक स्वच्छता ही अपेक्षित नहीं है, बल्कि परिवेशगत यथा-गली, मोहल्ला, गाँव, कस्बा, नगर, महानगर के साथ नाली, नहर, सरिता, नदी, वन, उपवन, निर्झर, घाटी, पर्वतश्रृंग, जड़-चेतन सृष्टि

में समग्रत: ही यह प्रक्रिया अभियानस्वरूप प्रारंभ कर इस पर विजय पाई जा सकती है। इस बात का आह्वान 'ऋग्वेद' में किस मुस्तैदी से किया गया है, द्रष्टव्य है-

'पृथ्वी: पू: च उर्वी भव।' ऋग्वेद (1.555.1976)

अर्थात् संपूर्ण पृथ्वी तथा समस्त परिवेश तभी स्वच्छ हो सकेगा जब चारों ओर स्वच्छता का वातावरण निर्मित होगा। संपूर्ण प्राकृतिक अवयवों के स्वच्छ एवं पारदर्शी नियंत्रण, समुपयोग एवं अनुपालन में मनुष्य की संपूर्ण विकास विषयक सारी संभावनाएँ भी स्वत: ही सन्निहित होती हैं ।

स्वस्थ जीवन जीने के लिए पोषणयुक्त आहार आवश्यक हैं, उसी के समकक्ष जल, वायु एवं अग्नि आदि तत्त्व भी, उनमें से एक के भी अभाव में जीवन विकास की प्रक्रिया किंचित शिथिल तथा गतिहीन प्रतीत होती है ।

इस जीवन के लिए अग्नि का होना कितना अनिवार्य है, इसका महत्व अनेकानेक वर्षों पूर्व हमारे ऋषियों ने महसूस कर लिया था। अग्नि में जितनी दाहक क्षमता है, उससे अधिक सृजनात्मकता, उत्प्रेरक क्षमता, ऊर्जा एवं नवोन्मेषी शक्ति भी समाहित है। जीव एवं जगत के लिए इसकी उर्वरता, उत्पादकता और रचनात्मकता किस कोटि की है, इसका बखूबी चित्रण 'ऋग्वेद' के इस महत्वपूर्ण मंत्र में सन्निहित है-

'अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव ऋत्विजम्।
होतारं रत्नघातमम्॥' (ऋग्वेद, 1.1.1.)

सामाजिक संतुलन, परोपकार, सृजन, त्याग तथा सौहार्द्र आदि अनेक ज्ञान-वीथियों को खोलते इस मंत्र की वैज्ञानिकता सर्वविदित है। इसके अभाव में भाव जगत से लेकर दृष्ट-अदृष्ट जगत में कितनी शून्यता एवं रिक्तता होगी, वह अकल्पनीय है।

'जल ही जीवन है' की उक्ति चाहे अतिशयोक्ति पूर्ण लगती हो, किंतु वास्तव में इसके अभाव में, चाहे जड़ हो अथवा चेतन, प्राण अथवा जीवन की कल्पना नहीं कि जा सकती। दो दिन जलाभाव में गमलों के पौधे दम तोड़ने को बाध्य हो जाते हैं, हरी-भरी घास मुरझाकर कुरमुरी हो जाती है एवं एक पल भी मीननुमा जलचर जीवन पर प्राणों का संकट गहराने लगता है, एतदर्थ वस्तुत: जल प्राणचेतना है। इसके बिना किसी के भी जीवन-विकास की कल्पना संभव नहीं है। जल, जीव एवं जीवन के लिए अमृत रूप है, इसके वैशिष्ट्य, महत्व एवं औषधीय गुणों को 'ऋग्वेद' में इस प्रकार चित्रित किया गया है—

'अप्सु अन्त: अमृतं, अप्सु भेषजं'।

ऋग्वेद (1.23.248)

जिस प्रकार लौकिक जीवन में किसी कक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के लिए हर विषय में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने अनिवार्य हैं, उसी तरह यदि पृथ्वी अथवा दुनिया के संपूर्ण पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए हर क्षेत्र में स्वच्छता एवं अनुशासनप्रियता के साथ-साथ आचरण की व्यवहार्यता भी आवश्यक है। अत: सुखद, सार्वभौमिक व उत्तम पर्यावरण सुनिश्चित करने के उद्देश्य हेतु इस संपूर्ण सृष्टि को परिव्याप्त किए हुए द्युलोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष, अग्नि, सूर्य, जलादि तत्वों के साथ ही समस्त वैश्विक दैवीय एवं प्राकृतिक शक्तियों के परिरक्षण एवं संरक्षण का ध्यान रखा जाना भी उतना ही आवश्यक है। यदि इन सब बातों का ध्यान रखा जाए तो उत्तम पर्यावरण के व्यावहारिक लाभों से कोई भी भला कैसे वंचित रह सकता है? 'अथर्ववेद' में इस सबका संकेत इस रूप में दिया गया है—

द्योश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं चमेव्यच:।
अग्नि: सूर्य आपो मेधां विश्वेदेवाश्र्च संददु:।'

(अथर्ववेद 12/1/53)

संपूर्ण ब्रह्मांड में सूर्य की अनुपम सत्ता, प्रभविष्णुता एवं वैज्ञानिकता से आज कोई भी अपरिचित नहीं है। सूर्य के अस्तित्व के बिना न जीव-जगत की कल्पना संभव है, न मानवीय पर्यावरण की ही। यदि धूप अथवा सूर्य का प्रकाश न हो तो जड़-चेतन के जीवन विकास की कल्पना ही असंभव है। जीवन विकास के साथ ही ऊर्जा की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में यह अत्यावश्यक घटक है। इसीलिए ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है-

'सूर्यआत्माजगतस्तस्थुशश्र्च'। (ऋग्वेद, 1.115.1)

जहाँ प्रदूषित अन्न, जल अथवा वायु का सेवन मनुष्य

एवं जीवों के लिए हानिकारक के साथ-साथ कई व्याधियों को जन्म देने वाला सिद्ध होता है, वहीं इसके विपरीत स्वच्छ जल एवं वायु मनुष्य, जीव एवं वनस्पतियों के लिए न केवल पोषक व स्वास्थ्यवर्धक है, बल्कि दीर्घजीविता का पर्याय भी है। ऐसी आयुवर्धक वायु के सेवन का उल्लेख 'ऋग्वेद' में इस प्रकार किया गया है-

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्राण आयूंषि तारिषत्॥ (ऋग्वेद, 10/186/1)

सुखद पर्यावरण सुनिश्चित करने के उद्देश्य से प्राय: अपने भवन के आसपास एक खुले प्रांगण (पर्वतीय भूभागों में अपने भवन एवं चौक के इर्द-गिर्द सुंदर, उपयोगी एवं सुरुचिकर फल-फूलों के वृक्ष, औषधियुक्त झाड़ियाँ, छायादार एवं चारायुक्त तरु-विटपों को आकर्षक पद्धति से लगाने की परंपरा आज भी है, जिसे बगवान कहा जाता है।) में फूलों के पौधे आदि से पर्यावरण संतुलित किए जाने का प्रयास रहता है। पर्यावरण की इसी चिंता के निवारण हेतु 'अथर्ववेद' के भूमिसूक्त में सुंदर, सुखप्रदाता, कल्याणकारी हरे-भरे वनों के निर्माण अथवा आरोपण का उल्लेख किया गया है—

'अरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु'
(अथर्ववेद, 12/1/1, 17)

पर्वतीय क्षेत्रों में स्वभावत: वेदों में उल्लिखित प्रावधानों एवं अपेक्षाओं का अनुपालन स्वत: ही लोक जीवन में किया जाता रहा है। सड़क आदि यातायात की सुविधाओं के अभाव में कभी चिकित्सादि जीवनोपयोगी समस्याओं का समाधान ग्राम्यजन द्वारा स्वयं ही अपने विवेक, आयुर्वेदिक ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर, प्राकृतिक जड़ी-बूटियों (सायास अपने बाड़े-सगवाड़े (क्यारियों) में उगाई गईं अथवा अनायास उसके खेतों में उग आईं) को निचोड़कर कर लेते थे जो रोग एवं पीड़ाहरण की अचूक औषधि सिद्ध होती थी। पर्यावरण के प्रति ग्राम्यजन का अनुराग एवं विशेषज्ञता, जहाँ उनकी आरोग्यता का द्योतक था, वहीं वैज्ञानिक चेतना के साथ-साथ उसके वेद-सम्मत गहन ज्ञान का परिचयक भी। किसी भी पर्वतीय भूभाग से गुजरते हुए फल-फूलों, चारे, आकर्षक पुष्प-लदे पेड़ों से साक्षात्कार होने का तात्पर्य उसके समीप उन्नत, संस्कारी एवं पर्यावरण चेतना से धनी किसी श्रेष्ठ गाँव के बसे होने का प्रमाण होता था। चित्ताकर्षक वनस्पतियों के अवगाहन से पर्वत के उन अधिकांश ग्रामों में आज भी 'ऋग्वेद' की ऋचाओं में सन्निहित दुर्लभ वनस्पतियों को उगाने के संदेश की व्यावहारिकता को साक्षात देखा जा सकता है कि—

"वनस्पति वन आस्थापयध्वम्"
(ऋग्वेद, 10/101/11)

अपने चौक, आँगन, प्रांगण, गऊशाला अथवा खेतों की मेंड़ों पर लगे भ्योंल, खड़ीक, तिमला, बेडू, खैणा, क्वीर्याल, बांज आदि के ऊँचे-ऊँचे चारेदार वृक्षों से चारा समाप्त होने पर उन्हें पतझड़ ऋतु में काट-काटकर ठूँठ बना दिया जाता है, ताकि बसंत ऋतु में उन पर खूब शाखा-प्रशाखाएँ फूटें व अगली बार मवेशियों को अधिक हरा-भरा पोषणयुक्त चारा उपलब्ध हो। यही बात अनार, आम, नारंगी-माल्टे, सेब, पोलम, नीमों, मोल, खुबानी, चूले, घिंगारु, हिसूल, किरमोड़ के फलदार पेड़ों/झाड़ियों एवं गुलाब, बुरांश आदि फूलों के पेड़ों पर भी लागू होती हैं। सुंदर पर्यावरण सुनिश्चित करने हेतु तरु-विटपों की कटाई-छँटाई का उल्लेख 'यजुर्वेद' में किया गया है जो पर्वतीय ग्रामीण जीवन में कालांतर से व्यवहार में लाया जाता है। यह उस समाज के कृषक समुदाय की प्रबल वैज्ञानिक और पर्यावरण चेतना को दर्शाता है। पर्यावरण-चिंतन की इस वैज्ञानिकता की अपेक्षा शास्त्रों में इस रूप में की गई है—

'अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजान:
प्रणिनाय महते सौभगाय।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह,
सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम।। (यजुर्वेद, 5/43)

जिस प्रकार अकेले सीमेंट या बजरी अथवा ईंट मात्र से किसी महत्वपूर्ण भवन का निर्माण या आधार-शिला निर्मित होनी संभव नहीं है, उसी प्रकार केवल जल, वायु,

केवल भूमि, आकाश या वनस्पति अथवा बीज संपदा से सुखद पर्यावरण की कल्पना भी संभव नहीं है। 'यजुर्वेद' में उसी वैचारिक त्रिवेणी की कल्पना को साकार किए जाने का चिंतन किया गया है कि वनस्पति, सूर्य तथा भूमि जब दयार्द्र एवं भावविभोर हों, तभी स्वस्थ पर्यावरण के सही उत्कर्ष की आनंदोनुभूति संभव है। कल्याणकारी मंत्र के पावन मधु-पर्क की अपेक्षा इस प्रकार है—

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्य्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।। (यजुर्वेद, 13/29)

सृष्टि के कल्याण एवं जीव मात्र के हित का वैज्ञानिक पद्धति से बेजोड़ संगम, वेदों का मूल स्वर है। वे इस रत्नप्रसु वसुंधरा के गर्भ से कुछ भी ऐसी औषधि या जड़ी-बूटी का प्रादुर्भाव नहीं चाहते, जिसमें कटुता हो, कंटक हों, जो मारक अथवा हृदयविदारक हो, बल्कि इतनी मृदुता से परिपूर्ण हो, जिसका एक-एक अवयव किसी के व्याधिहरण का पर्याय बने, जिसका कण-कण मानवता एवं जीव मात्र के कल्याण की सोद्देश्यता लिए हुए हो। इसीलिए 'अथर्ववेद' में शत-प्रतिशत प्रयोजनी औषधियों के उगने एवं होने की अपेक्षा की गई है—

'मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां
मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव।
मधुमत्पर्ण मधुमत्पुष्पमासां' (अथर्ववेद, 8/7/12)

अतः ऐसी औषधियों को उगाया जाए जिनके मूल, मध्य, अग्र, पत्ते, फूल अर्थात् संपूर्ण मृदुता से युक्त सामग्री का उपयोग जीव सृष्टि एवं मानव देह हेतु नितांत उपयोगी हो। वेदों में वैज्ञानिकता एवं पर्यावरण संरक्षण के अनेकों मंत्र वेदों में प्रसंगानुसार उल्लिखित हैं। प्राचीन काल में व कहीं-कहीं आज भी छोटे-छोटे जलाशयों एवं तालाबों के समीप सुंदर फुलवाड़ी तथा बाग-बगीचों के होने का उल्लेख मिलता है। इसका प्रयोजन जहाँ पूजा-अर्चना के लिए शुद्ध जल लाना था, वहीं देव-दरबार अथवा देवालय की पूजार्चना हेतु पुष्पों की उपलब्धता का होना भी रहा होगा। ऐसे छोटे जलाशय बहु-प्रयोजनी सिद्ध होते थे। प्रथम प्रकार के उद्देश्यों के अतिरिक्त ये जीव-जंतुओं हेतु पेयजल तथा शेष खेती आदि के उपयोग में आ जाता रहा होगा। इसी की संकल्पना 'अथर्ववेद' में मूल रूप से इस प्रकार की गई थी—

उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः
(अथर्ववेद 4/34/5-7)

जल-संरक्षण चाहे मनुष्यों के लिए हो अथवा जीव जगत के लिए, इसके भंडारण एवं शुद्ध जल-संग्रहण के बारे में भी उल्लेख है। भारतीय ग्रामों और विशेषकर पर्वतीय संदर्भों में (गढ़वाल, कुमाऊँ एवं अन्यत्र फहदीन में भी) जलाशयों के निर्माण की परंपरा पुरानी है। अपने आवासों के इर्द-गिर्द अपने पालतू पशुओं हेतु जलाशयों (चौरों) का निर्माण तो होता ही है, लेकिन ऊँचे-ऊँचे जंगलों के मध्य अपनी मवेशियों के लिए अथवा जंगली जानवरों को पानी पीने के लिए भी चौड़े एवं गहरे मिट्टी के तालों (खालों) के निर्माण की परंपरा अत्यंत प्राचीन है। वर्षा जल से भरे ये ताल वर्ष के कई महीने जीव-जंतुओं की प्यास बुझाने में भरपूर सहयोग करते हैं।

यही नहीं, अत्यंत प्राचीन काल से अछरी ताल, महासर ताल, सहस ताल, यम ताल, मंसूर ताल (टिहरी), तप्त कुंड, विष्णु ताल, रूपकुंड, हेमकुंड, लोकपाल, सतोपंथ, लिंगा ताल, बेनिताल, विरही ताल (चमोली) शरवदी ताल (गांधी सरोवर), भेंकताल, बदाणी ताल, गोहना ताल, देवरिया ताल, बासुकि ताल, नांदीकुंड (रुद्रप्रयाग), फाचकंडी, बयां ताल (उत्तरकाशी) नैनीताल, भीमताल, नौखुछिया ताल, सात ताल, खुरपा ताल, सूखा ताल (नैनीताल) जैसे कुछ महत्वपूर्ण ताल इसी परंपरा के पवित्र ताल हैं, जिनका वर्णन 'अथर्ववेद' की इस मंत्र में इस रूप में मिलता है—

इमा आपः प्र क्षमाभदाम्यक्ष्मा यक्ष्मनाशिनी।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना।।
(अथर्ववेद, 3/12/9)

वाणी, मनुष्यों के पारस्परिक संवाद, मैत्री एवं शत्रुता की मुख्य कड़ी है। यह ही हमें संसार से छुड़वाती है तथा यही संसार से जुड़वाती है। इसी के निरुद्देश्य उपयोग से ध्वनि प्रदूषण जैसी समस्याएँ जन्म लेती हैं तथा इसी का सदुपयोग समाज में मृदुता घोल अपनी मोहिनी वाणी से

सबको अपना बना लेता है। वाणी से शहद (मधु) की वर्षा भी हो सकती है और विष-वर्षा भी। वेदों में वाणी के संयम एवं सदुपयोग से पारस्परिक मैत्री एवं प्रेम की दृढ़ता का संदेश इन प्रेरक शब्दों में दिया गया है—

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम।
ममदेह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।

(अथर्ववेद, 3/34/2)

भौगोलिक संरचनाओं के अनुरूप कृषकों द्वारा कृषि करने की अलग-अलग पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं। कहीं पर्याप्त जल की उपलब्धता के कारण अच्छी सिंचाई से कृषि कार्य संपन्न होता है, जबकि कई पर्वतीय भूभागों में खेती और सिंचाई, वर्षा-जल पर ही निर्भर रहती है। पर्वतीय भू-भागों में अधिक ऊँचाई वाले स्थानों पर अधिकांशत: ऊसर धरती रहती है। इनमें भी दो प्रकार की खेती....अर्थात एक बिना सिंचाई वाले तथा उन्हीं में से कुछ अच्छे खेत वर्षा-जल की सिंचाई वाले होते हैं।

जिन पर अनेकानेक वर्षों से प्रबल आस्था के प्रतीक के रूप में पर्वतीय कृषक ज्योतिष की शुभ तिथियों के अनुरूप किसी निश्चित तिथि को सिंचाई करने की तैयारी कर बैठते हैं एवं आस्थानुरूप समय पर वर्षा भी होती है एवं मिल-जुलकर सिंचाई का कार्य संपन्न होता है।

यद्यपि कालांतर से यह कार्य संपन्न होता चला आ रहा है, लेकिन अब धीरे-धीरे धार्मिक आस्था-अर्चना में आ रही कमी तथा पारिस्थितिकीय असंतुलन के कारण यह व्यवस्था किंचित गड़बड़ाने लगी है। लेकिन वेदवर्णित विधानों के तहत वर्षा-जल की अपेक्षा की कामना के तहत ही वर्षों से ऊसर धरती पर भी सिंचाई जैसा कार्य सहजता से संपन्न हो रहा है, जैसा कि 'ऋग्वेद' के इस मंत्र में अपेक्षित है—

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षमाम जिन्वथ ।
आपो जन यथा च न:।। (ऋग्वेद, 10/9/3)

अत: कहा जा सकता है की पर्यावरण-संरक्षण की चिंता, जो स्वस्थ चिंतन की दृष्टि से हमारे पौराणिक ग्रंथों, विशेषकर वेदों में उल्लेखित है, वह निश्चित रूप से मानव के कल्याण के लिए ही है। जब तक मनुष्य इन वेदोक्त मंत्रों और प्रावधानों से अधिशासित होकर विशुद्ध हृदय से इनका अक्षरश: पालन सुनिश्चित करता आ रहा था, तब तक प्रकृति उसके लिए आनंद, शांति, करुणा, चिंतन एवं साधना की उत्कर्ष-स्थली थी। उससे वह, वह सब कुछ पा सकता था, जो वह पाना चाहता था, लेकिन जब से वह प्रकृति व वेदोक्त अपेक्षाओं से दूर हो, स्वयं को कर्ता मान इसकी नैसर्गिक संरचना से छेड़छाड़ करने लगा, तभी से प्रकृति उसके क्रियाकलापों से मानो रुष्ट हो गई है....और उसको प्राप्त होने वाली खुशी, शांति एवं आनंद के संपूर्ण गवाक्ष तथा द्वार मानो उसके लिए बंद ही होते चले गए।

पहले जो प्रकृति उसके सकारात्मक आदर्शों व क्रियाकलापों से प्रसन्न हो उसकी नेह-करुणा की भाव-डोरी से अधिशासित होती थी, अब वही क्रुद्ध हो उसको, उसके कुचिंतन का प्रतिफल (दंड) चुकाने के लिए डटकर एवं कमर कसकर उससे प्रतिशोध लेने के लिए तैयार खड़ी है। जिस-जिस अनुपात में मनुष्य प्रकृति से दूर होता गया है, उसी अनुपात में खुशियाँ, आनंद और शांति भी उसके हृदय-कानन से लुप्त होती चली गई है।

मानव ने अपने चंद स्वार्थों के लिए प्रकृति से खिलवाड़ कर न केवल अपने लिए खुशियों के दरवाजे हमेशा-हमेशा के लिए बंद कर दिए हैं, बल्कि जीव-जगत एवं जैव-विविधता के लिए भी प्राण-संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी है। अत: मानवता के कल्याण के लिए तथा पारिस्थितिकीय संकटों से उबरने के लिए हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा बताए गए मार्गों एवं विधानों का अनुसरण कर ही पर्यावरण-संरक्षण को गति दी जा सकती है। आज और अभी उस पौराणिक ज्ञान-संपदा के पुनर्पाठ एवं आचरण करने की घड़ी आ गई है, जिससे समाप्त होते इस दुर्लभ वैश्विक अध्याय को बचाया जा सकता है।

V

डीन, आधुनिक ज्ञान विज्ञान संकाय एवं अध्यक्ष,
भाषा एवं ज्ञान विज्ञान विभाग, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय
157, गढ़ विहार, फेज-1, मोहकमपुर, देहरादून-248005
ई-मेल : chamoladc@yahoo.com
फोन : 0135 2660414, मोबाइल 09411173339

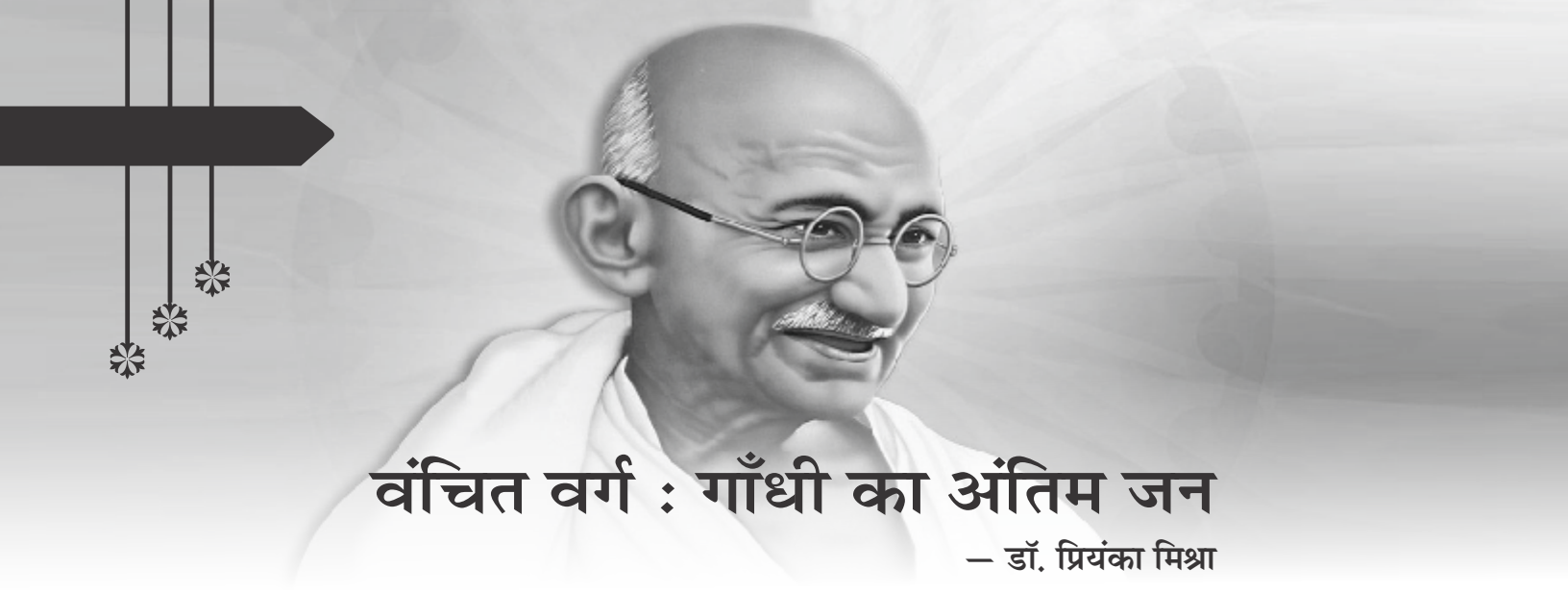

वंचित वर्ग : गाँधी का अंतिम जन

— डॉ. प्रियंका मिश्रा

वास्तव में विश्व समाज के सम्मुख ये आर्थिक असमानता की चिंता सदियों से चली आ रही है। निर्धनता ने मनुष्य को दासत्व की ओर धकेल दिया। निर्धन व्यक्ति की समाज में कोई प्रतिष्ठा ही नहीं होती। उसे आत्मसम्मान से जीने का अवसर भी समाज नहीं देता। निर्धनता के कारण ही व्यक्ति की क्षमताएँ क्षीण हो जाती हैं और निर्धन व्यक्ति को अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होने लगता है। इसी कारण निर्धन व्यक्ति का शोषण समाज की सबसे बड़ी विडंबना होती है। शोषण का अमानवीय कृत्य हिंसा का ही एक रूप है। हत्या से भी जघन्य अपराध का दंश झेल रहे इन आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को सशक्त बनाना महात्मा गाँधी का लक्ष्य था।

भारतीय समाज ने महात्मा गाँधी को जिस रूप में आज तक समझा है, गाँधी जी उनसे कहीं अधिक विराट व्यक्तित्व के स्वामी रहे हैं। उनके विचार स्वत: ही भारतीय जीवन में दर्शन के रूप में समाहित हो गए। राष्ट्र के निर्माण में उनके विचारों की महती भूमिका रही है। भारतीय समाज की समग्र चेतना का गहन व्यावहारिक अध्ययन करते हुए गाँधी जी ने महसूस किया कि भारतीय समाज की वास्तविक धुरी किसान, मजदूर, भूमिहीन कामगार, स्त्री और हरिजन वर्ग के लोग हैं। राष्ट्र को उन्नत और सभ्य बनाने में इन वर्गों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। साधनविहीन होने के बावजूद इन वर्गों के सामाजिकों ने भारत की अस्मिता का निर्माण अपने श्रम और पसीने की बूँदों से किया। ऐसे में भारत का विकास समाज के इन वर्गों के बिना संभव हो ही नहीं सकता।

गाँधी जी अपने समाज के सजग द्रष्टा थे। अपने समय के समाज की जीवनधारा से वे भली-भाँति परिचित थे। उनका यह मत था कि यदि भारत राष्ट्र को उन्नत और श्रेष्ठ बनाना है तो सबसे पहले समाज के अंतिम व्यक्ति का विकास करना आवश्यक है। उनका यह मूल-मंत्र था कि किसी भी समाज के वंचित वर्ग का अंतिम व्यक्ति जब तक सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से मुख्यधारा के व्यक्ति के समरूप नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का विकास भी अधूरा ही रहेगा।

भारतीय समाज में ही नहीं वरन् विश्व समाज में भी भारतीय महात्मा मोहनदास करमचंद गाँधी का जो स्थान है वह अतुलनीय है। विश्व उन्हें अहिंसा के प्रतीक रूप में देखता आया है। लेकिन स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी केवल अहिंसा के पथ-प्रदर्शक ही नहीं थे बल्कि उनका व्यक्तित्व उससे भी कहीं अधिक विराट रहा है। उनके विचारों ने भारतीय समाज को स्वतंत्रता के लिए तो प्रेरित किया ही,

साथ ही उनकी वाणी में समाहित विचार भारतीय जीवन में दर्शन के रूप में स्थापित हो गए। इसी कारण उन्हें महात्मा विशेषण से संबोधित किया गया।

भारत राष्ट्र में विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों और दार्शनिक वेत्ताओं के विचारों ने ही इसे विश्व गुरु के रूप में पहचान दी। लेकिन समय के चक्र ने भारतीय समाज की चेतना के प्रमुख सामाजिकों के जीवन को हाशिए पर ला खड़ा किया। महात्मा गाँधी ने यह महसूस किया कि भारतीय समाज की वास्तविक जीवन धुरी तो किसान, मजदूर, भूमिहीन कामगार, स्त्री, हरिजन समाज आदि वर्गों के लोग हैं। इन्हीं लोगों ने जहाँ राष्ट्र को उन्नत और सभ्य बनाने में अपना योगदान दिया वहीं राष्ट्र की स्वतंत्रता के महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुति भी भेंट की। साधनहीन होने के बावजूद इन वर्गों ने जहाँ भारत की अस्मिता का निर्माण अपने श्रम और पसीने की बूँदों से किया वहीं भारत की गौरवशाली परंपरा के रक्षार्थ अपने रक्त को भी बहाया। गाँधी जी का मानना था कि भारत का विकास समाज के इन वर्गों के बिना संभव हो ही नहीं सकता।

गाँधी जी अपने समय की जीवन चेतना से भली भाँति परिचित थे। उनके पास एक विरल दृष्ट थी। वे अपने समाज के सजग द्रष्टा थे। वे मानता थे कि यदि भारत राष्ट्र को समृद्ध, उन्नत और श्रेष्ठ बनाना है तो सबसे पहले समाज के उस वंचित वर्ग का उद्धार करना होगा जिसने अपने स्वेद कणों से इस धरती को उर्वर बनाए रखा। उनका मत था कि समाज के अंतिम व्यक्ति का विकास किए बिना राष्ट्र का विकास संभव ही नहीं है। समाज के विभिन्न वंचित वर्गों को समाज की मुख्य धारा में लाकर ही उन्हें सशक्त बनाया जा सकता है। उनकी शक्ति के विस्तार से ही भारत का विस्तार हो सकता है।

गाँधी जी समाज के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के प्रति सबसे अधिक चिंतित थे। विशेष रूप से इनमें दलित वर्ग और भूमिहीन कृषकों की विकट स्थितियों को देखकर वे चिंतित रहा करते थे। उनका यह मूल मंत्र था कि किसी भी समाज के वंचित वर्ग का अंतिम व्यक्ति (विशेष रूप से दलित वर्ग) जब तक सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से मुख्यधारा के व्यक्ति के समरूप नहीं होगा तब तक राष्ट्र का विकास भी अधूरा ही रहेगा। इसीलिए उनकी चेतना के केंद्र में सामाजिक रूप से पिछड़े लोग थे। इस वर्ग के लोग अपने अधिकारों से पूर्ण रूप से वंचित थे। समाज में उनके प्रति घृणा और अस्पृश्यता के भाव थे। समाज की मुख्यधारा से बहिष्कृत इस समाज को वे ईश्वर का प्रतिरूप स्वीकार किया करते थे। इसीलिए वे उन्हें 'हरिजन' कहकर संबोधित करते थे। गाँधी जी मानते थे कि जब तक समाज के सभी वर्ग के लोग एक साथ नहीं होंगे तब तक देश का उद्धार संभव नहीं है।

अंग्रेजों ने जब 1932 में दलित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन जैसा विभेदकारी प्रस्ताव रखा तो गाँधी जी ने इसका प्रबल विरोध किया। उन्होंने उस समय इंग्लैंड के मुख्यमंत्री मेकडोनाल्ड को टेलीग्राम भेजकर इस प्रस्ताव को वापस लेने को कहा। उस समय वे पूना की यरवदा जेल में थे। गाँधी जी ने जेल में ही आमरण अनशन आरंभ कर दिया। उनके इस अनशन से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचन के स्थान पर सुरक्षित स्थान का पक्ष लिया तब जाकर गाँधी जी ने अपना अनशन तोड़ा। इतना ही नहीं 'यरवदा जेल में जब गाँधी कस्तूरबा के हाथ से नारंगी के रस का गिलास ले रहे थे, रवीन्द्रनाथ 'जीवन जखोन सुकाये जाय, करुणा धारे एसो' गाना गाँधी को सुना रहे थे। गाँधी के उपवास का जबरदस्त प्रभाव पड़ा। कलकत्ता का काली मंदिर तथा कई अन्य मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिए गए। इलाहाबाद के बारह मंदिर पहली बार हरिजनों के लिए खोले गए। हजारों हिन्दू स्त्रियों ने नेहरू की माँ श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू का अनुसरण करते हुए अछूतों के हाथ से खाना खाया। अछूतों ने प्रतिबंधित कुओं से पानी

भरना शुरू कर दिया। इस उपवास ने समाज-सुधार को भी गति दी। शूद्रों में साहस और शक्ति का संचार हुआ और समाज समानता की दिशा में आगे बढ़ा।'

गाँधी जी यह भी जानते थे कि मनुष्य का मनुष्य को हीन समझना और उससे घृणा करना मानवता का सबसे वीभत्स रूप है। यह आपसी प्रेम और भाईचारे के समाप्त होने का अंतिम चरण है। जब तक एक मानव का दूसरे मानव के प्रति सम्मान नहीं जगेगा, तब तक राष्ट्र का उद्धार भी संभव नहीं है। इसीलिए महात्मा गाँधी अस्पृश्यता को समाप्त करने का संकल्प लेते हैं। उनके अनुसार,— 'अछूतपन का विचार हमको इस तरह नहीं करना चाहिए। हमको तो प्रार्थना करनी चाहिए कि अगर अछूतपन हिंदू धर्म का अंग है और वह नहीं मिट सकता तो भले ही हिंदू धर्म मिट जाए।.....मैं वर्षों से चीख-चीखकर कह रहा हूँ कि जिस मंदिर में हमारे अछूत भाई नहीं जा सकते, वहाँ हम न जाएँ। क्या इस मंदिर में मेरी पत्नी, लड़की या माँ जा सकते हैं/हमारा कर्तव्य है कि उन्हें समझाएँ और यदि वे न माने तो हमारा कर्तव्य है कि माता को भी त्याज दें और पिता को भी।'[1]

गाँधी जी पूरी साफगोई से उस समय के समाज को ये बता देते हैं कि इस समाज का प्रत्येक वर्ग इसी समाज का महत्वपूर्ण स्तंभ है और राष्ट्र को संचालित करने एवं उसे

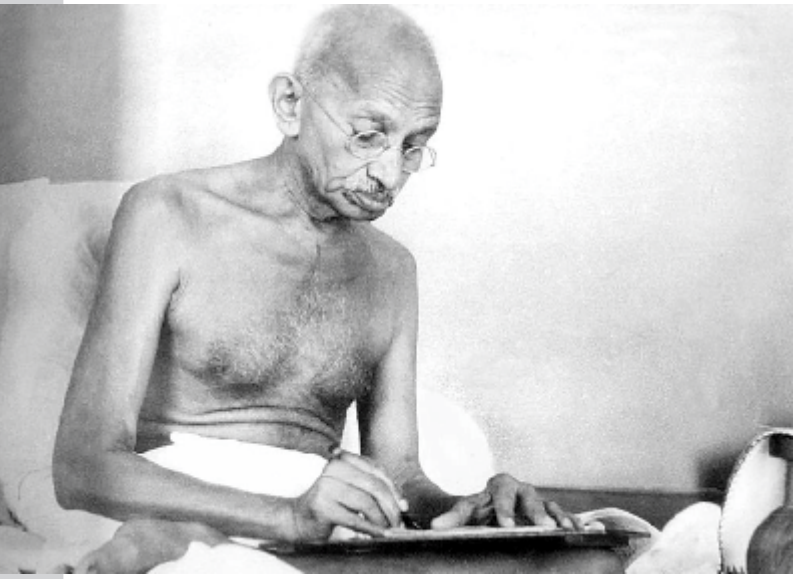

उन्नति के शिखर पर ले जाने में उसका भी उतना ही योगदान है जितना बाकी सामर्थ्यवान लोगों का। उनका मानना था कि वंचित वर्ग के पास अपने जितने भी साधन हैं, उन असीमित साधनों से भी वहे राष्ट्र के लिए अपना योगदान दे रहा है। इसीलिए तो वे बार-बार अपना प्रिय भजन गाते हुए कहते हैं—

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाणे रे,

पर दु:ख उपकार करे जोय मन अभिमान न आणे रे।

गाँधी जी जानते थे कि भारतीय समाज चाहे कितना भी समृद्ध क्यों न हो जाए लेकिन भारतीय समाज की उन्नति का द्वार तभी खुल सकता है जब इस समाज में आर्थिक-असमानता दूर हो सके। वे मानते थे कि 'मेरे लिए तो भारतीय आर्थिक स्वाधीनता का अर्थ हर व्यक्ति का आर्थिक उत्थान है हर पुरुष और स्त्री का, उसके अपने ही जागरुक प्रयत्नों द्वारा। इस पद्धति के अंतर्गत हर पुरुष और स्त्री के लिए पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध रहेंगे। सिर्फ कमर में लपेटने भर के लिए कपड़े का टुकड़ा नहीं बल्कि पहनने के लिए जरूरी कपड़ों से जो कुछ समझा जाता है वह सब और पर्याप्त खुराक, जिसमें दूध और मक्खन भी शामिल होंगे, जो आज करोड़ों को नसीब नहीं होते।'[2]

वास्तव में विश्व समाज के सम्मुख आर्थिक असमानता की चिंता सदियों से चली आ रही है। निर्धनता ने मनुष्य को दासत्व की ओर धकेल दिया। निर्धन व्यक्ति की समाज में कोई प्रतिष्ठा ही नहीं होती। उसे आत्मसम्मान से जीने का अवसर भी समाज नहीं देता। निर्धनता के कारण ही व्यक्ति की क्षमताएँ क्षीण हो जाती हैं और निर्धन व्यक्ति को अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होने लगता है। इसी कारण निर्धन व्यक्ति का शोषण समाज की सबसे बड़ी विडंबना होती है। शोषण का अमानवीय कृत्य हिंसा का ही एक रूप है। हत्या से भी जघन्य अपराध का दंश झेल रहे इस आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को सशक्त बनाना महात्मा गाँधी का

लक्ष्य था। उनका मानना था कि 'जब तक एक भी व्यक्ति भूखा है, कुपोषित है अथवा उपयुक्त आवास से वंचित है, तब तक सामाजिक व्यवस्था वैधता के अभाव की दोषी होती है। समाज के संसाधनों पर पहला अधिकार मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं का है और समाज का यह दायित्व है कि वह आर्थिक मामलों को इस ढंग से व्यवस्थित करे कि उसके सारे सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।'[3] इसीलिए गाँधी जी व्यवस्था को आर्थिक रूप से विपन्न लोगों के लिए स्वरोजगार और आत्मनिर्भरता का मंत्र देते हैं।

गाँधी जी का यह विचार मानवीय गरिमा को विराटता तक ले जाने वाला विचार है। उनका यह भाव किसी ममत्व से कम नहीं है। समाज के वंचितों के प्रति उनकी उदारमना दृष्टि किसी के प्रति भेद नहीं करती। अमीर, गरीब, छोटा, बड़ा, ऊँच, नीच, वंचित, समृद्ध, हरिजन, अभिजन सभी उनकी दृष्टि में समान भाव से आते हैं। एक पुरुष होने के बावजूद गाँधी जी का समाज के प्रति ममत्व-भाव किसी स्त्री के अपनी संतान के ममत्व-भाव से कम नहीं है। समाज के प्रति उनके मन में संरक्षण का भाव ही उन्हें भारत में 'राष्ट्रपिता' की संज्ञा से भी अभिहित करता है।

गाँधी जी के संबंध में यह कथन उल्लेखनीय है कि वे एकमत से सभी के आदर्श थे। उनके विचारों को मानने वाला किसी एक मत, पंथ, जाति या संप्रदाय का व्यक्ति नहीं था। स्वतंत्रतापूर्व भारत का विशाल भूगोल और उसमें रहने वाले लोगों में किसी एक व्यक्ति के प्रति श्रद्धा का भाव यदि शिखर पर था तो वे थे महात्मा गाँधी। गाँधी जी भी समाज के सभी वर्गों और पंथों के लिए एक समान दृष्टि रखते थे। उनके लिए मनुष्यता से बढ़कर कोई धर्म नहीं था। तात्कालिक समाज में अंग्रेजी सत्ता की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का परिणाम स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। अपनी-अपनी अधिसत्ता और समाज में उसके नियंत्रण के लिए ही सांप्रदायिक स्थितियाँ भयंकर रूप धारण कर चुकी थीं। गाँधी जी इससे चिंतित थे। वंचित समाज में धर्म (संप्रदाय) का संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष को बेकार कर रहा था।

विश्व में अपनी महान संस्कृति के कारण धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की छवि रखने वाले भारत के भीतर ही आपसी मतभेदों ने भारतीय मूल्यों को नुकसान पहुँचाया था। गाँधी जी का मत था कि जो लोग सांप्रदायिक विद्वेष का भाव अपने मन में रखते हैं वे धार्मिक रूप से पिछड़ेपन के शिकार होते हैं। उनकी दृष्टि में असहिष्णुता भारतीय जीवन-मूल्य नहीं है। भारत तो सहिष्णुता का पर्याय है। इसलिए वे प्रत्येक संप्रदाय और मत के व्यक्ति के लिए सहिष्णुता के संचार को लक्षित करते हैं। वे कहते हैं कि 'अगर हम सभी एकमत हो जाएँ तो फिर सहिष्णुता के इस उदार गुण के लिए गुंजाइश ही कहाँ रह जाए? फिर भी, सबको एकमत बना सकने का प्रयास आकाश-पुष्प को पा सकने के ही समान व्यर्थ है। इस प्रकार, एक ही उपाय बचा रहता है कि हम एक-दूसरे के मत को सहन करें।'[4] गाँधी जी के ये विचार केवल अलग-अलग संप्रदायों के लिए ही नहीं थे, वरन् ये वंचित समाजों के बीच जातिगत विद्वेष की स्थितियों पर भी करारा प्रहार थे। एक संप्रदाय के भीतर जाति, जातियों के भीतर जातियाँ, दलितों के बीच महादलित....आखिर सहिष्णुता थी तो कहाँ! इसीलिए तो गाँधी जी के लिए सभी संप्रदायों में वंचित वर्ग विद्यमान थे।

भारत की स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज में किसानों और मजदूरों का शोषण एक सामान्य घटना थी। प्रेमचंद, निराला और उनके समकालीन रचनाकारों ने जमीदारी प्रथा और उसके कारण कर्ज में डूबते मजदूर और किसान की भयावह दशा का यथार्थ चित्रण किया है। अपनी ही जमीन पर एक मजदूर के रूप में काम करने को विवश कृषक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर्ज की अंतहीन यात्रा के कारण मजदूर तथा किसान और अधिक निर्धन होते जा रहे थे। पूँजीपतियों

का सत्ता और भूमि पर आधिपत्य किसानों और मजदूरों के शोषण का न समाप्त होने वाला चक्र बन गया था। कर्ज में डूबे किसानों की जमीनों पर भी जमीदारों या धनिकों ने आधिपत्य जमा लिया था। ये उन्हीं किसानों से उन्हीं की जमीनों पर मजदूरी करवाते। गरीब नागरिकों, भूमिहीन किसानों के पास जीविकोपार्जन के अन्य साधन न होने के कारण वे इन भूपतियों के यहाँ खेती, मजदूरी करने के लिए बाध्य थे। स्वयं की भूमि से वंचित इन किसानों के पास शादी-विवाह या अन्य मंगलोत्सव के लिए या फिर विकट परिस्थिति के लिए धन न होने के कारण इन्हीं पूँजीपतियों से कर्ज लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। कर्ज का यह धीमा जहर इन किसानों की पीढ़ियों को कर्जदार बनाकर छोड़ जाता। इतना ही नहीं इन किसानों और मजदूरों के श्रम का उचित मूल्य भी इन्हें नहीं मिल पाता था।

गाँधी जी का ध्यान जब इन शोषित और अपनी ही भूमि से वंचित कृषकों और मजदूरों की तरफ गया तो वे इनके प्रति चिंतित हो उठे। उन्होंने इस शोषण का विरोध किया। उनकी दृष्टि में भूमि पर अधिकार उसी व्यक्ति का होना चाहिए जो उस पर श्रम करता है। उन्होंने वर्ष 1942 में अंग्रेज पत्रकार लुई फिशर को एक साक्षात्कार में किसानों को इसके लिए संघर्ष करने के लिए कहा,—'भूमि का समाज वितरण सुनिश्चित करने के लिए भूमिहीन किसानों का अपने स्वामियों के साथ सहयोग करने से इंकार करना और यहाँ तक कि कर चुकाने से इंकार करना भी उचित होगा। उन्होंने स्वीकार किया कि इससे भू-स्वामी हिंसा पर उतारू हो सकते हैं, लेकिन उनका जोर इस बात में था कि यह हिंसा बहुत सीमित होगी और आसानी से नियंत्रण में लाई जा सकेगी।'[5]

गाँधी जी जानते थे कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष एक उपाय है लेकिन वे शांतिपूर्ण संघर्ष के समर्थक थे। वे जानते थे कि विरोध का प्रतिरोध हिंसा से भी हो सकता है लेकिन अपने अधिकारों के लिए यदि इस हिंसा का भी सामना करना पड़े तो वे वंचितों को उनके अधिकार दिलाने के प्रतिदान-स्वरूप इसके लिए भी तत्पर थे।

भारतीय समाज में नारी को उच्च स्थान दिया गया है। मनुस्मृति में तो यहाँ तक कहा गया है कि 'जहाँ नारी की पूजा होती है, वहीं देवताओं का वास होता है' (यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता) लेकिन वहीं 'पिता रक्षति कौमार्ये भर्ता रक्षति यौवने, पुत्राश्च स्थविरे काले नास्ति स्त्रीणाम स्वतन्त्रता' अर्थात कौमार्यवस्था में पिता स्त्री की रक्षा करते हैं, जवानी में वह पति के संरक्षण में रहती है और वृद्धावस्था में पुत्र की देखभाल में रहती है, कहकर स्त्री को सदैव अपने नागरिक और मनुष्य अधिकारों से भी वंचित रखा गया। मध्यकाल में तो स्त्री के पास अपने जीवन-यापन के जो अधिकार थे, वे भी उससे छीन लिए गए। गाँधी जी स्त्री-अधिकारों के लिए भी प्रयत्नशील रहे। उनकी दृष्टि में समाज का जो व्यक्ति सामाजिक अधिकारों से वंचित है वह शोषित है।

गाँधी जी अपने दर्शन में स्त्री-पुरुष समानता पर बल देते हैं। लेकिन उनके लिए स्त्री समानता का अर्थ वैसा नहीं जैसा आजकल 'स्त्री-विमर्श' के आवरण में स्त्री-स्वातंत्र्य के नाम पर माना जाता है। 'गाँधी यह नहीं चाहते थे कि स्त्रियाँ पुरुष जैसी हो जाएँ या पुरुषों में 'कन्वर्ट' हो जाएँ अथवा पुरुषों की तरह शारीरिक शक्ति के प्रदर्शन को ही जीवन का अभीष्ट मान लें।' गाँधी जी का मत था कि स्त्री को वे सभी अधिकार मिलने चाहिए जो तत्कालीन समाज में पुरुषों के पास थे। वे उन्हीं के समान रोजगार कर सकें। वे स्त्री में प्रकृति प्रदत्त दैवीय गरिमा को देखते थे। उनका मत था कि स्त्री को भी पुरुष के समान आर्थिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। वह स्वयं आत्मनिर्भर बन सके इसके लिए समाज को प्रयत्न करने चाहिए। वे स्त्री और पुरुष दोनों को एक-दूसरे का पूरक

स्वीकार करते थे। दिनकर का गाँधी जी के स्त्री-पुरुष समानता के संबंध में मत रहा कि—'गाँधी प्रत्येक नर को 'अर्धनारीश्वर' और प्रत्येक नारी को 'अर्धनरेश्वर' बनाना चाहते थे।' गाँधी जी के लिए स्त्री समाज के विकास का अभिन्न अंग है। इसलिए वे उसे समाज की मुख्य इकाई के रूप में स्थापित करना चाहते थे। लेकिन गाँधी जी स्त्री समाज से यह भी अपेक्षा करते थे कि वह स्वतंत्र तो रहे, किंतु पश्चिमी स्त्री की तरह पुरुष से स्वतंत्र होकर नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति की मर्यादा में रहकर। स्पष्ट है कि गाँधी जी तत्कालीन वंचित स्त्री समाज के अधिकारों के प्रति तो सचेत थे किंतु उन अधिकारों को भारतीय संस्कृति और गरिमा के अनुरूप संपोषित करने के आग्रही थे।

अस्तु, गाँधी जी समाज के प्रत्येक वर्ग को समान दृष्टि से देखते थे। वे किसी के विरोधी नहीं थे, लेकिन समाज के जिन वर्गों का शोषण किसी विशिष्ट वर्ग द्वारा किया जा रहा था, वे उसका प्रबल विरोध किया करते थे। उनकी दृष्टि में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से समाज में जीने का अधिकार है। जब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति का विकास नहीं होता तब तक निश्चित रूप से समाज का विकास भी अधूरा है। समाज के हरिजन, दलित, मजदूर, भूमिहीन कृषक और स्त्री वर्गों के अधिकारों से वंचित होने तक राष्ट्र का विकास भी अधूरा होगा। गाँधी जी का मानना था कि जब तक समाज का एक भी व्यक्ति भूखा है तो वे भी भूखे हैं, यदि एक भी व्यक्ति का कंठ प्यासा है तो उनकी भी प्यास अधूरी है। वे जंगलों में रहने वाले आदिवासियों, निर्वासन का दंश झेल रहे शरणार्थियों और उन सभी वर्गों की चिंता करते दिखाई देते हैं जो अपने अधिकारों से वंचित कर दिए गए हैं। उनकी यह सोच भारतीय समाज के वंचित वर्गों की आवाज ही नहीं, बल्कि विश्व के वंचित समाज का दर्शन बन गई है। गाँधी जी सच में वंचित समाज के अधिकारों के संघर्ष करने वाले पुरोधा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. झा, राकेश कुमार, गाँधी, चिंतन में सर्वोदय, प्रथम संस्करण 1995, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर
2. श्रीमन्नारायण, बापू के सपनों का भारत, गुजरात विधानसभा की रजत जयंती के अवसर पर राज्यपाल श्रीमन्नारायण द्वारा 14 अगस्त की मध्यरात्रि में दिया गया अभिभाषण, प्रकाशन गुजरात राज्य सरकार
3. शर्मा, आनंद (संपादक), गाँधी का पथ : शांति, अहिंसा और सशक्तिकरण, संपादक आनंद शर्मा, प्रकाशक एकेडेमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008
4. सिंह, डॉ. राकेशचंद्र (संपादक), दार्शनिक (त्रैमासिक पत्रिका), अखिल भारतीय दर्शन परिषद्, वर्ष 56 अंक 1, जनवरी-मार्च 2010
5. श्री भगवान, गाँधी और दलित भारत जागरण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2008
6. शंभूनाथ (प्र.सं.), हिंदी साहित्य ज्ञानकोश (खंड 5), भारतीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, प्रथम संस्करण 2019
7. साउथवर्ड, बारबरा; 'फेमिनिज़्म ऑफ महात्मा गाँधी', गाँधी मार्ग, वॉल्यूम 13, अक्तूबर 1981
8. गाँधी, एम.के.; हरिजन (अंक 13, 14, 15, 17, 19, 20)
9. गाँधी, एम.के.; यंग इंडिया पत्रिका (अंक 1, 2, 3, 6, 8, 9, 10, 12)
10. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2009
11. प्रो. मोहन (संपादक), गवेषणा (इस दौर में महात्मा गाँधी) अंक 101 (2013), केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा
12. विवेक, रामलाल, भारत में विचार क्रांति (मार्क्स, गाँधी और नेहरू), प्रथम संस्करण 1989, श्याम प्रकाशन, जयपुर
13. शेखर, सुधांशु; गाँधी विमर्श, संस्करण 2015, दर्शना पब्लिकेशन्स, भागलपुर, बिहार।

V

एच-3/243, सैक्टर 16, रोहिणी, दिल्ली-110089
ई-मेल : priyadarshnimishra85@gmail.com
मोबाइल : 9625327115

अवधी लोकगीतों में रामकथा की परंपरा

— डॉ. प्रदीप कुमार सिंह

आदि कवि वाल्मीकि की रामायण को रामकथा का आदिस्रोत माना जाता है, जिसमें उन्होंने राम को एक महापुरूष के रूप में चित्रित किया है। डॉ. नगेन्द्र ने गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना को लोकसंग्रह की भावना से अभिप्रेरित बताते हुए लिखा है,—''जिस समय समसामयिक निर्गुण भक्त संसार की असारता का आख्यान करा रहे थे, और कृष्ण भक्त कवि अपने आराध्य के मधुर रूप का गुणगान करते हुए जीवन जगत में व्याप्त नैराश्य को दूर करने का प्रयास कर रहे थे। उस समय गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से संबलित अद्‌भुत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया।''

मनुष्य के पास अभिव्यक्ति के तमाम साधन उपलब्ध हैं, साहित्य भी एक तरह की मानवीय अभिव्यक्ति है, जिसमें से उसकी वाणी ही सबसे प्रबल और समर्थ माध्यम है। वाणी का मूल स्रोत लोकोद्धार ही हैं, फलतः किसी भी महान साहित्य को समग्रता से समझने हेतु हमें लोकतत्व की ही शरण में जाना पड़ता है। रामकथा के इतिहास पर यदि हम थोड़ी दृष्टि डालें तो ''वैदिक युग से लेकर पौराणिक युग तक जैसे-जैसे ज्ञान एवं कर्म की अपेक्षा भक्ति का विकास होता गया, वैसे-वैसे विष्णु के अवतार के रूप में राम की प्रतिष्ठा दृढ़ होती चली गई। वैष्णव भक्ति के उद्‌भव और विकास की इस परंपरा में रामानुज, रामानंद आदि आचार्यों ने रामकथा को दर्शन एवं भक्त की सहज ग्राह्य मनोवैज्ञानिक भावभूमि प्रदान की।''[1]

भारतीय हिंदू जनता के आराध्य राम के भव्य मिथकीय चरित्र ने प्रागैतिहासिक युग से आधुनिक युग तक विविध रूपों में जनमानस को आकर्षित किया है। ''रामकाव्य परंपरा के उद्‌भव एवं विकास का अनुशीलन करने वाले विद्वानों के मतानुसार राम उत्तर वैदिक काल के दिव्य महापुरूष है। वेदों में कुछ स्थलों पर राम शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है, किन्तु उसका अर्थ दशरथ पुत्र राम नहीं अपितु अन्यान्य व्यक्तियों से है।''[2]

मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम की कथा भारतीय जनमानस और उनके जीवन में रची-बसी है। उनका मर्यादित चरित्र किसी भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को आदर्शपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। शायद यही कारण है कि वाल्मीकि से लेकर गोस्वामी तुलसीदास तक तथा आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त ने राम जैसे आदर्श चरित्रों का बखूबी वर्णन किया है। देश के तमाम अन्य कवियों ने समय-समय पर अपनी-अपनी भाषाओं में राम के चरित्र का चित्रण किया है। बौद्ध एवं जैन कवियों ने भी रामकथा को अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। साहित्य से इतर हमारे लोकगीतों में भी रामकथा का पर्याप्त वर्णन हुआ है।

अवधी एवं भोजपुरी जैसी लोकभाषाओं में राम के आदर्श एवं नैतिक चरित्रों का वर्णन संक्षिप्त और विस्तार दोनों रूपों में मिलता है। लोककवियों के माध्यम से रचित

रामकथा विषयक लोकगीत सामान्य जन के कंठों में समाए हुए हैं। लोकगीतकारों ने रामकथा को अत्यधिक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक रूप प्रदान किया है। यही कारण है कि ये गीत आज भी विशेष रूप से नारी के कंठों से भी सुनने को मिल जाते हैं। लोककवि बड़ी ही सतर्कता के साथ रामकथा को गीतों में पिरोने में कुशल रहे हैं। लोकगीतों में रामजन्म से लेकर सीता विवाह, रामवन गमन और लक्ष्मण मूर्छा का मार्मिक वर्णन मिलता है। अवधी में प्रचलित एक गीत में जाति की मालिन राजा दशरथ के निरवंशी होने पर उन्हें ताने कसती है, मालिन द्वारा कही गई बात रानी कौशल्या तक पहुँच जाती है और वे बहुत दुखी हो जाती हैं, महाराजा दशरथ भी तनाव में आ जाते हैं, वे कौशल्या से वार्तालाप करते हुए कहते हैं कि—

''रानी जतिया कै हीनि मालिनियाँ, कहे लै रानी बाझिन हो।
एतनी बचन रानी सुननी, सुनहु नाही ही पउनी न हो
रानी कोंइछा में लिही तिल चाउर, सुरजू मनावै नी हो।
सुरजू जतिया के हीनि मलिनियाँ कहै लै रानी बाझिन हो।।
जाहू न ए रानी घर के तू अपनी महल के न हो,
रानी आजु के नवएँ महिनवाँ होरिल तुहरा होइहै,
बधइया घरा बाजी, अँगनवाँ शुभ सोहर हो।

इसी प्रकार अवधी लोकगीतों की परंपरा मात्र सोहर जैसी शैली में ही नहीं और भी अन्य शैलियों में यथा गारी गीत, फगुआ गीत, कजरी गीत, विवाह गीत के एवं अन्य ठेंठ अवधी लोकगीतों के रूप में भी वह समाज के सामने आता है। रामजन्म को लेकर इन्हीं लोकगीतों में से एक लोकगीत अवधी के सोहर छंद में लिखा गया है जो देखते बनता है-'ढ़िमिकि ढ़िमिकि ढोलिया बाजै, अहो ढोलिया बाजई हो,

हो मोरे राजा राम लखन कै नेहछुआ,
मछलियाँ ढोलिया बाजई हो।
काउही मोरे राजा दशरथ, कहत निक लागइ हो,
हो मोरे राजा राम लखन कै जनेऊआ,
महलियाँ ढ़ोलिया बाजई हो।'

इसी तरह से राम और लक्ष्मण सीता सहित जब वनगमन को चले जाते हैं तो वहाँ पर निषाद राज से भेंट होने के बाद वन के कोल, किरात सीता को अपने पास बैठाकर उनसे उनका परिचय जानना चाहते हैं, जिसे अवधी लोकगीत के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'बनवाँ में घेरि के भिलनियाँ, सिया जी से पूछइ बचनियाँ हो।
कहँवा से अइलू हो कहँवा के जइबू
अबकी गये बेलिनि कहिया भेटइबू
एतना बता दा मोरी रनियाँ, सिया जी से पूछै बचनियाँ हो।
हे हो सखी एक शंका भारी दुइ-दुइ पुरूषवा तुंही एक नारी।
भउजी हऊ की बहिनियां सिया जी से पूछे बचानियाँ हो।

अवधी लोकगीतों की परम्परा बड़ी ही प्राचीन रही है, मिथिला में राम विवाह के अवसर पर गारी गीत भी बड़े ही लोकप्रचलित रहे हैं, जिसकी मधुर ध्वनि बड़ी ही कर्ण-प्रिय जान पड़ती है-

'बइठा न रउरे को चनन पिढ़इया
सुनि ल्या सुराजी गारी, हाँ सीता राम से बनी
भारत नगरिया में चोरवा घुसरि गइनै
लूटि लिहनै महल अटारी, हाँ सीता राम सेबनी।
अनधन सोनवा सबहि लूटि लिहने हो,
अरे लूटि लिहनै इज्जत तुम्हारी, हाँ सीताराम से बनी।

रामकथा के ही संदर्भ में सीता का घर से निष्कासन का प्रसंग भी बड़ा ही कारूणिक रहा है। लोक में ननद, भौजाई का पारस्परिक द्वेष भी जग प्रसिद्ध है। कवि ने सीता निर्वासन का कारण भौजाई के प्रति ननद की ईर्ष्या को मानकर लोकगीत की सुन्दर रचना की है और यह लोक गीत जन सामान्य में भी प्रचलित है-

ननद, भौजाई दूनो पानी भरन गई, अरे पानी भरन गई हो
पनिया भरत रानी करन लागी रवनवा के बात,
भउजी जउन रावन तू है हरि लइगै ओके
ओर ही देखावा न हो।

सीता लक्ष्मण के साथ वन के लिए चल देती है और उस समय बड़ा ही करुणाजनक दृश्य लोक-कवि अपने गीत से प्रस्तुत करते हैं जो कुछ इस तरह से है—

एक बन नाध्यो, दुसर बन नाध्यो, तिसरे में लगिगे पियासि।
बइठा हो भउजी तू कदम की छइयां में, मैं देखि आऊँ बनवास॥

सीता के निर्वासन का यह गीत थोड़े बहुत अंतर के साथ अवधी भाषा में लोक प्रचलित है। करूण रस प्रधान उपरोक्त लोकगीत को सुनकर बरबस ही कंठ भर जाता है, और सहज ही नेत्रों में आँसू भर जाते हैं।

आदि कवि वाल्मीकि की रामायण को रामकथा का आदिस्रोत माना जाता है, जिसमें उन्होंने राम को एक महापुरूष के रूप में चित्रित किया है। डॉ. नगेंद्र ने गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना को लोकसंग्रह की भावना से अभिप्रेरित बताते हुए लिखा है—''जिस समय समसामयिक निर्गुण भक्त संसार की असारता का आख्यान करा रहे थे और कृष्ण भक्त कवि अपने आराध्य के मधुर रूप का गुणगान करते हुए जीवन जगत में व्याप्त नैराश्य को दूर करने का प्रयास कर रहे थे उस समय गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से संबलित अद्‌भुत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया।''[3]

यह सच है कि तुलसी के दीनदयाल प्रभु राम अवध के लोक के आराध्य भी हैं। इसलिए तो मुश्किल परिस्थितियों में लोक भी अपने आराध्य राम की ही शरण में जाता है। वह अपने अधीर व्याकुल मन को धीरज धारण करने की प्रार्थना भी करता है। अवधी की ही एक लोकगीत की परंपरा के अनुसार राजा दशरथ एक दिन अपनी सभा में ही बैठे-बैठे यह सोचने लगे कि मेरे तो एक भी पुत्र नहीं हैं। मेरा जीवन निर्वाह कैसे होगा? इतना सोचने के पश्चात् वे अपने गुरू के पास गए तथा उनसे निवेदन किया कि गुरूदेव कुछ ऐसा उपाय बताइए जिससे मेरा भी जीवन निर्वाह हो सके-

''सभा में बइठि राजा दशरथ मनहिं मन सोचै न हो
रामा नाहिं घर एकहु बतकवा कइसे दिना कटिहैं हो।
राम जाई पहुँचे गुरू द्वारे तो ठाढ़े अरज करैं हो,
गुरूजी अइसन जतन बतावा, बधैया धरा बाजई हो।'

इसी लोकगीत को गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस् में कुछ इस तरह से व्यक्त किया है—

''एक बार भूपति मन माहीं, भई ग्लानि मोरे सुत नाहीं।
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला,
चरन लागि करि विनय बिसाला।''[4]

गुरू के बताए अनुसार राजा दशरथ यज्ञ का आयोजन करते हैं और उसी यज्ञ का प्रसाद रानियाँ खाती हैं तो उन्हें पुत्र की प्राप्ति होती है।

'जेहि दिन राम जनम भए धरती अनन्द भई
होई गए सुरपुर सोर, अवधपुर सोहर हो।
चैतहि की तिथि नवमी तौ नौबति बाजय हो
बाजइ दसरथ द्वार कौसिल्या रानी मंदिर हो।।'

यहाँ पुत्र-जन्म की खुशी में ऊँच-नीच का भाव भी तिरोहित हो जाता है। राजा दशरथ के महल में अनेकों दास-दासियाँ होते हुए भी राजा दशरथ बच्चों का नाल काटने के लिए 'धगरिन' को बुलाने स्वयं ही जाते हैं। यह लोकतत्व की ही विशिष्टता है, जो राजसी ठाट-बाट और उसके वैभव को भी काफी पीछे छोड़ देता है।

'ऊँच नगर पुर पाटण आले बाँसे छाजन हो
राम लिहे अवतार एकल जग जानै हो।
सोने के खडउवाँ राजा दशरथ धगरिन बोलावै चलै हो।'

अयोध्या में जहाँ राम तो जनकपुर में सीता धीरे-धीरे बड़े हो रहे हैं। लोकतात्विक विशेषता के साथ सीता द्वारा शिव का धनुष उठाए जाने, राजा जनक की सीता के योग्य वर प्राप्ति की चिंता तथा सीता द्वारा की गई भवानी-पूजा भी लोकगीतों में ही वर्णित है। राम-सीता के विवाह से संबंधित लोकगीत दर्शनीय हैं।

'एक सुंदर घोड़ा, एक सुंदर घोड़ा, राम भए असवार जी
गले परी जयमाला, गले परी जयमाला,
सीता बियहि लई जाई जी।

मिथिला में राजा जनक जी के धनुष उठाने की प्रतिज्ञा का वर्णन लोकगीतों के माध्यम से गारी छंद में बड़े ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। इसी भावबोध की पंक्तियाँ अवधी लोक साहित्य में भी देखी जा सकती हैं। यथा—

'राजा जनक जी प्रण एक ठाने, धनुषा देत धराई सखी
बाजै बधई जनकपुर में।
जे एही धनुषा के तोड़ि वहइ हैं
सीता बियहि लई जाई सखी,
बाजै बधइया जनकपुर में।
मुनि के संग दुई बालक आए, मुनि आदेश लगाई सखी
बाजै बधइया जनकपुर में।'
लिए धनुष अब किए नमन हैं, धनुषा तोड़ि बहाई सखी
बाजै बधइया जनकपुर में।

लोकगीतों में ही राम को मिलने वाला बनवास का संकेत भी होता है

''संधुरा का लै राम घर का जौ लौटे,
दाएँ-बाँए बोला है काग,
दान भल पउबा, दहेज भल पउबा, पउबा तू कन्या कुमारि'
चटकी चुनरिया धूमिल नाहीं होईहैं, तुंहका लिखा बनबास।'

अवध की लोक-संस्कृति में हर दूल्हा राम और हर दुलहिन सीता है। इस क्षेत्र में गाए जाने वाले सोहर तथा विवाह गीतों में दूल्हा राम और दुलहिन सीता-माता कौसल्या तथा पिता राजा दशरथ ही रहते हैं। तुलसी द्वारा स्थापित आदर्श परिवार की कल्पना इस क्षेत्र विशेष के तमाम लोकगीतों में की गई है—

बबुआ रामचन्द्र माई बाप निरधन
किया दहेज पवला थोर हो,
किया बबुआ रामचंद्र सीता छोटी बाड़ी हो,
काहें नयनवां ठुरे लोर हो।
मचियहिं बइठी कोसिल्या रानी, बहुअरि अरज करैं हो।

राम-रावण, मेघनाद युद्ध में लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर अवधी लोकगीतों की शैली में राम कुछ इस तरह से विलाप करते हैं—

'गोंदिया में लइके रोवै राम तनी मुख बोला भइया
बोला तू बोला भइया, अंखिया तू खोला भइया
तुहरा के लागल शाकती बान, तनी मुख बोला भइया'।

इसी प्रकार से हनुमान जी जब सीता की खोज में लंका की अशोक वाटिका में वृक्ष के ऊपर जब बैठते हैं तो सीता जी के पास जब मुंदरी गिरती है तो वे आश्चर्यचकित होकर कहती हैं-

'सीता सोचे अपने मन मा, मुंदरी कहवाँ से गिरी।'

कजरी जैसे लोकगीत भी अवध की परंपरा और संस्कृति के वाहक रहे हैं। जब हनुमान जी सीता जी की खोज में निकलते हैं और राम-लक्ष्मण आपस में संवाद करते हैं कि इतनी विकट घनघोर अँधेरी काली रात में सीता कहाँ और किस दशा में होंगी, उसकी एक बानगी अवधी में देखिए'

'लक्षमण कहाँ जानकी होईहैं, अइसन विकट अंधेरिया न।
कइसे सीता के पहिचनला, अंजनी के बारे ललनवाँ न।'
या कपि हो कनक भवन कइसे कुदला, बइसे पार उतरला न,

बहुत से लोकगीतकार इस बात से बिल्कुल ही अनजान हैं कि राजा दशरथ की मृत्यु तो बहुत पहले ही हो चुकी है। लोकगीत में पहला निमंत्रण सीताजी राजा दशरथ को भेजती हैं दूसरा कौसल्या रानी को तथा तीसरा देवर राजा लक्ष्मण को, किंतु राम को इसकी खबर तक नहीं लगने देती हैं—

पहिला लोचन राजा दसरथ, त दुसरा कौसल्या रानी
तिसरा लोचन लक्ष्मण देवरा, रमैया न जनाइउ हो।

सीता के माध्यम से वस्तुत: लोकगीत लोक की नारी का ही आक्रोश है, जिस राम ने सीता को गर्भावस्था की स्थिति में घर से निकाला है, उसे बिल्कुल भी मत बताना कि उसे पुत्र हुआ है। लोकगीतों में जनमानस की आस्था के प्रति विद्रोह भी झलकता है।

मानव-मस्तिष्क के ऐतिहासिक विकास की परंपरा में राम कथा, विशेष रूप से अवध की अवधी राम कथाओं का विशेष महत्व है। लोकगीत और लोकसाहित्य हमें इस राम कथा को समझने का एक अलग दृष्टिकोण देता है। आज हमारे समाज मे लोकसाहित्य एक विज्ञान के रूप में उन्नत समाज विज्ञानों में स्थान प्राप्त कर चुका है। जो मानव हृदय और मन की बहुत-सी जिज्ञासाओं तथा प्रश्नों की व्याख्या करने में भी सामर्थ्यवान है। इस रूप में अवधी लोकगीत राम कथा के विकास को समझने में तथा उसकी व्याख्या करने में बड़ा ही प्रभावशाली और समर्थ रहा है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ-182
2. वही पृष्ठ-180
3. वही पृष्ठ-189
4. रामचरितमानस् गोस्वामी तुलसीदास, सटीक मझला साइज, पृष्ठ-163

V

हिंदी विभाग प्रमुख, साठये महाविद्यालय
दीक्षित रोड, विले पार्ले (पूर्व)
मुंबई-57 मोबाइल : 9869913892

सुषम बेदी के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना

— डॉ. गुरमीत सिंह

"जब मैं लिखती हूँ तो वह एक तरह का मैडिटेशन होता है। समस्याओं पर गौर करना, परिस्थितियों और पात्रों के माध्यम से उसकी गहराई में जाना, उसकी एक-एक परत खोलना और फिर उसके भीतर घुसकर जानने की कोशिश करना कि आखिर सच्चाई क्या है? जो सच्चाई पाती हूँ उसी को पाठक तक पहुँचाना मेरे लेखन कर्म का लक्ष्य होता है। मेरी बेचैनी ही मेरी रचनाओं का स्त्रोत बनती है।"[1] —सुषम बेदी

अपने समय और समाज की परिस्थितियों एवं विसंगतियों से उत्पन्न वास्तविकताओं को उजागर करने की बेचैनी तथा पाठक वर्ग को उनके प्रति सचेत कर नवचेतना का संचार करना एक सजग एवं संवेदनशील साहित्यकार की सबसे बड़ी पहचान होती है। प्रत्येक युग का साहित्यकार अपने लेखन द्वारा तत्कालीन समय और समाज में सामाजिक- सांस्कृतिक सरोकारों एवं प्रगतिशील मूल्यों को साथ लेकर एक ऐसी परंपरा विकसित करता है जो पूरी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक बनकर उभरती है। वर्तमान साहित्यकार अपने लेखन में नारी, दलित, आदिवासी, पर्यावरण आदि विविध विमर्शों के माध्यम से अपनी परिवेशगत विसंगतियों एवं समस्याओं को सामने लेकर आ रहा है। इन विमर्शों में प्रवासी विमर्श एक ऐसा वैचारिक एवं रचनात्मक विमर्श है जिसमें प्रवासी जीवन एवं समाज की परिस्थितियों को यथार्थ के धरातल पर उकेरने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रवासी साहित्य में मुख्यत: भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति के मध्य झूलते व्यक्ति के अंत:संघर्ष को आधारभूमि बनाया गया है। अपनी जन्मभूमि को छोड़ पराए देश में प्रवास करने वाले व्यक्ति को विषम सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का सामना करते हुए किस प्रकार के बाह्य और आंतरिक संघर्षों से गुजरना पड़ता है, उसका जीवंत चित्रण प्रवासी साहित्यकारों की रचनाओं में व्यापक फलक पर देखने को मिलता है। इन संघर्षों में सबसे अधिक व्यक्ति का सांस्कृतिक पक्ष प्रभावित होता है, जहाँ वह दो विभिन्न संस्कृतियों के मध्य या तो सामंजस्य बिठा ही नहीं पाता या फिर सामंजस्य बिठाते-बिठाते अपनी मूल अस्मिता को ही गवाँ बैठता है। विदेशी सभ्यता और संस्कृति की चमक-दमक तथा चकाचौंध में अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को बचाए रखने की जद्दोजहद, आशाएँ-आकांक्षाएँ, सफलताएँ-विफलताएँ, विसंगतियाँ-समस्याएँ आदि की अभिव्यक्ति द्वारा प्रवासी साहित्यकार प्रवासी व्यक्ति के जीवन को रचनात्मक आयाम देने का प्रयास करता है। इन साहित्यकारों ने एक नई दुनिया की पहचान करवाने के साथ-साथ उस दुनिया में जाकर बसने वालों के संघर्षों को जो यथार्थ अभिव्यक्ति दी है, वह अपने आप में साहित्यकार की वैश्विक स्तर पर सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के प्रति सजगता एवं सचेतना को स्पष्ट करती है। साहित्य की इसी महत्ता को स्पष्ट करते हुए मीना बुद्धिराजा लिखती हैं, "साहित्य का मूल उद्देश्य

सामूहिक अस्मिता के स्वप्नों को पूरा करने, जीवन में अदम्य आस्था और संकीर्णताओं-सीमाओं से मुक्त विराट जन-जीवन की वैश्विक दृष्टि में समाहित होती है।"[2] इसी प्रकार के विराट जनजीवन को वैश्विक दृष्टि में समाहित करने वाले साहित्यकारों में सुषम बेदी ऐसा ही एक नाम है जो सदैव पाठक वर्ग के मध्य अपनी अस्मिता को जीवंत बनाए रखेगा। सुधा ओम ढींगरा के शब्दों में,—"सुषम बेदी अमेरिका की उन रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने वैश्विक हिंदी साहित्य को गौरव प्रदान किया है।"[2]

सुषम बेदी प्रवासी साहित्य लेखन के क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर एवं महान कथाकार के रूप में विद्यमान रहेंगी, जिन्होंने प्रवासी जीवन के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्ति देते हुए उनसे जुड़ी वास्तविकताओं को परत-दर-परत खँगालने का प्रयास किया। 1 जुलाई, 1945 ई. को पंजाब के फिरोजपुर में जन्मी सुषम बेदी की बचपन से ही साहित्य के प्रति रुचि रही। स्कूली शिक्षा के समय से ही उन्होंने साहित्य पढ़ना और कविताएँ लिखना प्रारंभ कर दिया था। साहित्य की कक्षा में पढ़ाई जाने वाली प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, वर्ड्सवर्थ, कैंट, शैली, ब्रायन जैसे महान कवियों की रचनाएँ उनमें एक नवीन चेतना का संचार कर उनके बालमन को लेखन के प्रति उद्वेलित करती थीं। इनका पारिवारिक वातावरण संपन्न, सुखद एवं शांत था जिसका प्रभाव इनके व्यक्तित्व में और अधिक परिपक्वता लेकर आया। इनके पिता का तबादला शहर-दर-शहर होता रहा और सुषम इन शहरों से जुड़े अनुभव संजोती गईं। अंततः पूरा परिवार दिल्ली आकर बस गया जहाँ इन्होंने कॉलेज की पढ़ाई के साथ-साथ रेडियो और दूरदर्शन के कार्यक्रमों में भाग लेना शुरू कर दिया। रेडियो कार्यक्रमों के जरिए इनकी मुलाकात अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा जैसे साहित्यकारों से हुई। रंगमंच और दूरदर्शन पर अपने अभिनय से इन्होंने व्यापक जन-समूह को प्रभावित किया। 1960-1970 के समय में वह दूरदर्शन की बेहतरीन अदाकारा रहीं। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.फिल. तथा पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की तथा पंजाब विश्वविद्यालय में ही अध्यापन का कार्य भी किया। पंजाब में जन्मी होने के कारण इनका पंजाब की भूमि तथा पंजाब विश्वविद्यालय से गहरा लगाव रहा है। उस समय पंजाब विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में विभागाध्यक्ष के पद पर डॉ. इंद्रनाथ मदान आसीन थे तथा इन्हीं के दिशा-निर्देशन में इन्होंने शोध कार्य पूर्ण किया। प्रो. वीरेंद्र मेंहदीरत्ता के व्यक्तित्व से ये काफी प्रभावित रहीं तथा उनके निर्देशित नाटकों में भाग लिया करती थीं। पंजाब विश्वविद्यालय से ही सुषम बेल्जियम के शहर ब्रसल्स चली गई जहाँ इनके पति की नौकरी लगी थी। वहाँ ये 'Times of India' समाचार पत्र की संवाददाता रही। 1979 में सुषम बेदी अमेरिका जाकर बस गईं। 1990-91 में बी.बी.सी. के साप्ताहिक कार्यक्रम 'Letters from Abroad' में वे न्यूयार्क में जीवन के विविध पहलुओं पर विचार-विमर्श किया करती थीं। सुषम बेदी ने कोलंबिया विश्विद्यालय में हिंदी और उर्दू विभाग में निदेशक के पद पर कार्यरत रहते हुए साहित्य जगत को अपनी अनुभवजनित कृतियों से जोड़े रखा। इनका व्यक्तित्व कला, साहित्य और संगीत की त्रिवेणी कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इन्होंने प्रमुखतः कहानी और उपन्यास साहित्य की रचना की जिनमें विदेशी परिवेश में जीवन व्यतीत करते भारतीयों की अंतर्वेदना एवं सांस्कृतिक चेतना स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

संस्कृति प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें जीने का ढंग निहित है। इसी में व्यक्ति की अस्मिता, धर्म, विश्वास, आस्थाएँ, परंपराएँ, प्रथाएँ,

रहन-सहन, आचार-विचार, भाषा आदि समाहित है। व्यक्ति जिस भी समाज में रहता है उसका सांस्कृतिक परिवेश आजीवन उसके अस्तित्व को प्रभावित करता है। भारत के किसी भी भाग से जब व्यक्ति विदेशों में प्रवास करता है तब वह अपना सांस्कृतिक परिवेश त्याग कर या पीछे छोड़ कर नहीं जा सकता, वह अपनी संस्कृति की हर पहचान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में साथ ले जाता है। वहाँ जाकर जब वह अन्य संस्कृतियों के संपर्क में आता है तो उसका उन संस्कृतियों के साथ टकराव होता है तथा अनेक संघर्ष, समस्याएँ, उलझने एवं द्वंद्व पैदा होते हैं। पुरातन परंपराओं और आधुनिक सभ्यता के मध्य वह अनिर्णय की स्थिति में पहुँच जाता है। प्रवास में रहते हुए वह दूसरी सामाजिक व्यवस्था तथा सांस्कृतिक वातावरण में स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना करने हेतु संघर्ष करता है तथा कई बार उसे विभिन्न स्तरों पर मानसिक और सामाजिक प्रताड़नाओं तथा उपेक्षाओं का शिकार होना पड़ता है। समानता, न्याय, आत्मसम्मान तथा अधिकारों की पूर्ति के लिए उसका संघर्ष विरोध-प्रतिरोध में बदल जाता है। सुषम बेदी के कथा साहित्य का केंद्र बिंदु प्रवासी भारतीयों के इसी संघर्ष, द्वंद्व और विरोध-प्रतिरोध को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करना है। स्वयं प्रवास में रहते हुए प्रवासी भारतीयों की विषमताओं एवं विसंगतियों को देखकर उनके मन में जो संवेदना उमड़ती है उसी संवेदना को वह अनुभवजनित अभिव्यक्ति देती हैं। बेदी जी के शब्दों में,—"मैंने जो कुछ भी लिखा है, उसे अपने आसपास से ही उठाया है। जीवन से प्रेरित हुई हूँ, जीवन की विडम्बनाओं से, विसंगतियों से, जीते-जागते लोगों से।"[4] सुषम बेदी के लेखन के विषय में डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव का यह कथन कहीं अधिक सटीक बैठता है,—"विदेशों में रहने वाले लेखक जब संस्कृति के टकराव के बारे में लिखते हैं तो लोगों को उच्च श्रेणी के साहित्य से मुखातिब होने का अवसर मिलता है।"[5] वास्तव में उनका साहित्य उच्च श्रेणी की कोटि में रखा जा सकता है। उनके साहित्य में पुरातन भारतीय मूल्यों एवं संस्कारों को एक नवीन दृष्टिकोण, विचारधारा एवं मान्यताओं के साथ प्रस्तुत किया गया है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास दूसरी दुनिया की चकाचौंध के पीछे छिपे अँधियारे सच को पाठक वर्ग के सम्मुख लेकर आती हैं। उनमें वैश्विक जीवन की समस्याएँ, सांस्कृतिक आचार-विचार में विघटन, आधुनिकता की भौतिक दौड़ में भटकता व्यक्ति और मानसिक द्वंद्व को झेलते जीवन की सच्चाईयाँ स्पष्टत: परिलक्षित होती हैं। संभवत: कहा जा सकता है कि सुषम बेदी का कथा साहित्य विभिन्न देशों की संस्कृतियों के समन्वय के साथ-साथ सांस्कृतिक अलगाव और तनाव झेल रहे प्रत्येक प्रवासी की पीड़ा को उजागर करता है। स्वदेश और परदेस के द्वंद्व पर टिकी उनकी रचनात्मक भूमि हिंदू जीवन मूल्यों तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के साथ-साथ एक नई व्याकुलता और बेचैनी को अभिव्यक्त करती है। विभा मल्लिक के अनुसार,—"प्रवास करते भारतीयों तथा उनकी संस्कृति, सभ्यता, रस्मों-रिवाज, पहनावा, खान-पान आदि को कैसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, उनके साथ कैसे भेदभाव किया जाता है, इन सभी समस्याओं पर सुषम बेदी का साहित्य ध्यान आकृष्ट कराता है। इसके साथ ही साथ प्रवास के दौरान होने वाले सांस्कृतिक टकरावों के फलस्वरूप जीवन के मानवीय मूल्य किस प्रकार परिवर्तित होते हैं इस ओर भी बेदी जी का साहित्य ध्यान आकृष्ट कराता है।"[6] द्वंद्वात्मक सांस्कृतिक परिवेश में पल रहे व्यक्ति की जिस स्थिति को सुषम बेदी ने अधिकांशत: अपने कथा-साहित्य में उजागर किया है वह है विदेश में जाकर भी भारतीय संस्कारों एवं मूल्यों का त्याग न कर पाना। 'हवन' उपन्यास में गुड्डो का संपूर्ण जीवन इसी द्वंद्वात्मक स्थिति का उदाहरण प्रस्तुत करता है। विधवा होने के बाद अपनों के जीवन को सुधारने हेतु गुड्डो अमेरिका अपनी बहन-जीजा के पास आती है। धीरे-धीरे भारतीय रिश्तों की पकड़ विदेशी परिवेश में कमजोर पड़ने लगती है। गुड्डो सोचती है कि उसका अतीत कितने सुनहरे मानवीय मूल्यों से सन्निहित था। जब उसके पति की मृत्यु हुई तथा आर्थिक तंगी के चलते उसे नए पलंग का जोड़ा बेचना पड़ रहा था, तो उसके जीजाजी ने पाँच-सौ रुपये निकाल कर गुड्डो को सौंपते हुए कहा था कि इन्हें

बेचने की आवश्यकता नहीं है, यह तुम्हारे पति की निशानी है और आज पराए देश में उन्हीं दीदी-जीजा का व्यवहार इतना बदल सकता है यह बात गुड्डो को सालती जाती थी। वह अलग होकर एक दूसरे अपार्टमेंट में रहना शुरू कर देती है। उसकी बेटियाँ और दामाद भी वहाँ आकर रहना प्रारंभ कर देते हैं। उसका बेटा राजू विदेशी परिवेश के अनुकूल स्वयं को ढाल नहीं पाता। बेटियाँ और दामाद भी पूरी तरह विदेशी चकाचौंध के शिकार हो जाते हैं। गुड्डो को पारिवारिक आजीविका हेतु निम्न स्तर की नौकरियाँ करनी पड़ती हैं। उसे अनेक उपेक्षाओं के वातावरण का सामना करना पड़ता है। वह पुरातन भारतीय संस्कारों और आधुनिकता की चमक-दमक के द्वंद्व में झूलती रहती है। प्रत्येक स्तर पर उसे स्वयं को साबित करना पड़ता है। भरे-पूरे परिवार के साथ होते हुए भी उसे अलगावबोध की स्थिति से गुजरना पड़ता है। कथाकार के शब्दों में,—"गुड्डो को चंडीगढ़ और उसकी सर्दियों का गुनगुनाती धूप याद आती। बाहर लॉन में चारपाई डलवाकर धूप सेकने का भी मजा था। फिर किसी फेरीवाले की आवाज सुनकर उसे बुलाना और भुनी मूँगफली, मुरमुरे या गज्जक खरीदकर चबाते रहना या संतरे वाले से संतरे खरीद, नमक लगाकर एक-एक फाड़ी का रस लेना, कभी दाँतों से छील छीलकर गन्ना चूसना या रस वाले को रोककर नींबू और काला नमक मिला गन्ने का रस पीना, ये छोटी-बड़ी बातें, बड़े मीठे से अनुभव बनकर स्मृति के कैमरे के फोकस में आ जाते। कभी कोई पड़ोसन आकर बैठ जाती या अपने लॉन से ही आवाज ऊँची कर हाल-चाल पूछा जाता। कभी कोई दूर दराज का रिश्तेदार ही आ जाता। रोज ही बिना इंतजार के मेहमान, यहाँ कभी कोई बिना सूचना दिए किसी के घर थोड़े ही जा सकता है, बाकायदा फोन करके वक्त तय करके मिलने जाना, यहाँ तक कि बहनों के घर भी बिना अपॉइन्ट्मेन्ट के नहीं जाया जा सकता। रिश्तों में सहजता और अनौपचारिकता की बहुत कमी महसूस करती थी गुड्डो।"[7] इस तरह बेगानेपन और अलगाव की भावना गुड्डो की तरह हर प्रवासी को अतीत की सुखद स्मृतियों में ले जाती है, जहाँ से उसका अंतर्द्वंद्व प्रारंभ होता है। गुड्डो विदेशी सांस्कृतिक परिवेश में भारतीय संस्कारों और मूल्यों को साथ लेकर चलना चाहती है और यही स्थिति उसके आजीवन संघर्ष का कारण बनती है। दूसरी ओर 'लौटना' उपन्यास की मीरा दोनों ही संस्कृतियों में एक नए अस्तित्व को तलाशने का प्रयास करती है। अमेरिका में रहते हुए मीरा को अपने नर्तकी बनने की इच्छा का गला घोंटना पड़ता है। विजय से विवाह करके वह अमेरिका तो पहुँच जाती है परंतु वहाँ पति की पारंपरिक पुरुषवादी मानसिकता, पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ तथा सामाजिक परिवेश की उपेक्षाओं का सामना करना पड़ता है। भारत में उसका मित्र कृष्णन उसकी इच्छाओं को जब अहमियत देता है, उसके भीतर परिस्थितियों का सामना करने की चेतना उत्पन्न करता है, तब मीरा के मन में उत्पन्न संस्कारगत द्वंद्व का जन्म होता है, वह सोचती है कि कृष्णन और उसकी मुलाकात के विषय में विजय को बताना चाहिए या नहीं, क्या यह बात भारतीय संस्कारों के अनुकूल है,—"वे सारे संस्कार, जिनकी खुराक पैदा होने से ही लगातार पिलाई जाती है, वे तो अब माँसपेशियों तक में घुसे हुए हैं। वे कैसे चले जाएँगे? नहीं, मीरा को अपने वर्ग से ऊपर उठना है, झूठ-मूठ की नैतिकता और संस्कारों के कब्जे लगाकर उसे जिंदगी के सहज स्वच्छंद प्रवाह को नहीं रोकना। जब उसने नर्तकी का जीवन चुना था तभी उसकी मध्यवर्गीय नैतिकता दाँव पर लग गई थी। शायद पापा इसीलिए उसे नर्तकी नहीं, एक एकेडेमिशियन बनाना चाहते थे, इंटलैक्चुअल बनाना चाहते थे। विजय से विवाह में भी शायद पापा की सहमति इसलिए थी कि मीरा का जीवन एक बँधी-बँधाई लकीर पर चलने लगेगा, जहाँ सर्वोपरिता माँ की नहीं, विजय की होगी। पर मीरा को किसी के भी बताए दिखाए रास्ते पर नहीं चलना, अपना रास्ता उसे खुद ढूँढना है। लेकिन इस अपनी खोज में वह कहीं बँट नहीं गई? पहले मम्मी और पापा के बीच और अब विजय और कृष्णन के बीच।"[8] मीरा का संघर्ष भारतीय संस्कारों, मातृभूमि की ओर लौटने का संघर्ष है जिसके संदर्भ वह भारतीय पौराणिक कथाओं में ढूँढने का प्रयास

करती है। वह राम, कृष्ण और बुद्ध के चरित्र में अपने प्रश्नों के उत्तर तलाशती है,—"पर क्या सच में ऐसा हो पाता है हमारी जिंदगी में। पीछे का सब कुछ मिट जाए, उसकी याद ...उसकी चाह...उसकी हूक–कुछ भी न रहे और मीरा के भीतर अपनी पहचानी दुनिया में लौट जाने की इतनी जबरदस्त इच्छा जगी कि उसकी आँखों में आँसू भर आए। इतना कुछ खोकर इस नए देश में जिंदगी की शुरुआत किसलिए? लेकिन जिस मिट्टी से गढ़े गए, उसी मिट्टी पर जिंदगी गुजार कर उसी में मिल जाना क्या जिंदगी की पूरी संभावनाओं को कहीं कुंद कर देना नहीं है? क्या तब व्यक्ति जिंदगी को पूरे विस्तार और आयामों के साथ जी पाता है? शायद नहीं।"[9] यही प्रश्न व्यक्ति और सांस्कृतिक परंपराओं के मध्य एक ऐसे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं जहाँ वह पुराने और नए के मध्य चुनाव नहीं कर पाता और दोनों परिस्थितियों के मध्य झूलता रहता है। मीरा की भाँति 'मोरचे' उपन्यास की तनिमा भी अपने रूढ़िवादी पति अनुज की प्रताड़नाओं का शिकार है। वह दोनों डॉक्टर है परंतु अनुज उसे कभी बराबरी का दर्जा नहीं देना चाहता है। आरंभ में वह उसकी हर उपेक्षा को सहन करती है क्योंकि उसकी माँ के संस्कार और मध्यवर्गीय जीवन मूल्य उसे पति की अवहेलना करने की अनुमति नहीं देते। एक सफल और सशक्त होने के बाबजूद भी वह अपना वैवाहिक जीवन बचाने तथा बच्चों को पिता के सान्निध्य से दूर न करने हेतु हर प्रताड़ना सहती चलती है। तनिमा के शब्दों में,—"जिस तरह मुझसे मेरे पापा छीन गए मैं नहीं चाहती इन बच्चों का बाप भी इनसे छिने। मैं अलग नहीं होना चाहती ठीक हो जाएगा, किसी तरह निभा लूँगी।"[10] इस तरह विदेशी भूमि पर भारतीय स्त्रीवादी संस्कारों के तले तनिमा अपने जीवन को अँधियारे गर्त में धकेलती चलती है। उपन्यासों की भाँति सुषम बेदी की कहानियों में भी विदेशी भूमि पर जीवन यापन करते भारतीयों की दोहरी सांस्कृतिक मानसिकता को यथार्थ अभिव्यक्ति मिली है। 'अंजेलिया के रंगीन फूल' कहानी में मि. मिलर ऊपरी तौर पर तो पूर्णत: अमेरिकी होने का दिखावा करती है परंतु भीतर से कहीं न कहीं उसे अपनी पहचानी भूमि की ओर लौटने का मन होता है। उसके द्वारा बनाई गई चाय का भारतीय स्वाद उसके भीतर की स्थितियों का उद्घाटन करता है। वह कहती है कि,—"शायद मैं खुद अपनी पहचानी दुनिया के करीब जाना चाहती हूँ, एक अरसा घूमघाम के अब अपने घर लौट आने का मन होता है।"[11] मि. मिलर अमेरिका में रहना चाहती है, वहीं की होकर परंतु अमेरिकी नहीं एक विदेशी की भाँति, वहीं 'अवसान' कहानी में अपने मित्र दिवाकर की मृत्यु में चर्च में शामिल अंग्रेजों तथा पाश्चात्य तरीके से होते उसके अंतिम संस्कार को देखकर शंकर का मन अवसाद और कुंठा से भर जाता है। पादरी के कहे गए शब्दों की जगह उसके कान भारतीय पंडितों के मंत्रोच्चारण, उसकी नाक हवन की सामग्री की सुगंध को तरस रहे थे। वह चाहता था कि दिवाकर का अंतिम संस्कार हिंदू रीति–रिवाजों के साथ हो परंतु दिवाकर की ईसाई पत्नी को यह मंजूर नहीं था। वह अंतत: चर्च में ही अपने मित्र की अंत्येष्टि हेतु गीता के श्लोक उच्चारित करने लगता है, अपने दोस्त के लिए कुछ गीता के श्लोक और उसने संस्कृत और अंग्रेजी अनुवाद करते हुए एक के बाद एक श्लोक उच्चरित करने शुरू कर दिए। गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक थे ये,—"ये न कभी हत होता है न हत्यारा, न कभी जन्मता है न विनशता, जन्म मरन से परे देह नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता, जिस तरह घिसे हुए वस्त्रों का त्याग कर नर नए धारण करता है उसी तरह घिसी देह का त्याग कर नई अपनाता है देही।"[12] उसे लगा उसके इस तरह के व्यवहार से ताबुत में लेटे दिवाकर के चेहरे पर खुशी की लकीर उभर आई हो। अत: सुषम बेदी के साहित्य में प्रवासी भारतीयों के जीवन की इस तरह की मानसिक स्थितियाँ जगह–जगह दृष्टव्य हो जाती है जहाँ वे अपनी परंपराओं और संस्कारों का न तो पूर्णत: त्याग ही कर पाते हैं और न ही उन्हें साथ लेकर चल सकते हैं।

सांस्कृतिक विघटन और तनाव की स्थिति वहाँ भी उत्पन्न होती है जहाँ पराई संस्कृति में व्यक्ति को यह अहसास होता है कि वह दूसरों के लिए उपेक्षा का पात्र है, उसके साथ रंग, जाति, धर्म के आधार पर भेदभाव किया जा रहा है तथा

वह सदियों से वहाँ बसने के बाद भी उन सबके समान नहीं है। सुषम बेदी का कथा साहित्य इस तरह के भेदभावपूर्ण परिवेश में पल रहे व्यक्ति की स्थितियों को व्यापक अभिव्यक्ति देता है। भारतीय प्रवासियों के साथ आजीविका के क्षेत्र में, शिक्षा में, धर्म के आधार पर, रंग के आधार पर जो भेदभाव किया जाता है उससे इनके मन में अलगाव के साथ-साथ हीनता की ग्रंथि विकसित होती जाती है जो जीवन की सही चल रही राह में अड़चने बनकर उभरती है और व्यक्ति का सामाजिक और मानसिक संघर्ष कड़ा होता चलता है। 'हवन' उपन्यास में गुड्डो की बेटी अणिमा को इस भेदभाव का शिकार होना पड़ा है। जब वह इंटरव्यू के लिए जाती है तो सबके मन में यही बात खटकती है कि एक एशियाई महिला अमेरिकनों को अंग्रेजी कैसे पढ़ा सकती है। अणिमा अपने मित्र अरविंद को अमेरिकीय मानसिकता से परिचित करवाते हुए कहती है,—"अरविंद यह देश पहले कुछ खेपों में आए उन गोरों का है जो यहाँ के शासक और नियम विधायक हैं। यहाँ की मल्टी नेशनल कंपनियों के मालिक हैं। अभी तुम विद्यार्जन कर रहे हो, कल नौकरी ढूँढने जाओगे तो देखना। ओफ्फ! कितनी दुविधाग्रस्त है इन राज करने वालों की नीतियाँ। एक तरफ यह देश दम भरता है कि संसार के हर इंसान को आजादी और तरक्की का माहौल देने के लिए दरवाजा खुला है, दूसरी तरफ यहाँ जो आ चुके हैं वे अपने पीछे दरवाजा बंद कर देना चाहते हैं।"[13] अणिमा इस बात को भी स्पष्ट करती है कि यहाँ के लोगों को भारतीय संस्कृति या धर्म के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं है। इनके लिए वे केवल मनोरंजन या मात्र दिल बहलाने के साधन है,—"आप हरे राम, हरे कृष्णा का धोती-टीका लगा लीजिए या योगतंत्र की धूनी रमाइए तो खूब वाहवाही होगी। लोग हैरानी और अचरज से आपको वैसे ही देखेंगे जैसे आप आसमान में उड़ने वाले स्पुतनिक हों। हमारी गरीबी, भुखमरी, हमारे धार्मिक कर्मकांड, हमारे मंदिर और हमारे अजंता-एलोरा अद्‌भूत खिलौने हैं इनके लिए। जब खेल कर ऊब जाते हैं तो किसी और देश की संस्कृति आकर्षित कर लेती है-चीन, जापान या जावा और सुमात्रा की। पर हमारी मानवता से कोई ताल्लुक नहीं।"[14] यही नहीं अणिमा तो इस बात से भी भली-भाँति परिचित है कि जब तक प्रवासी लोग यहाँ के लोगों के साथ समांतर रूप से नतमस्तक होकर चलते हैं तभी तक उन्हें अच्छे लगते हैं अगर कहीं उनसे आगे निकलने की बात की जाए या फिर अपने अधिकारों को लेकर आवाज उठाई जाए तो यही लोग हमें बदनाम गद्दाफी की भाँति देखते हैं। इसी तरह 'लौटना' उपन्यास में मीरा जब अपनी शिक्षा के आधार पर नौकरी प्राप्त करना चाहती है तो उसे इस भेदभावपूर्ण नीति का सामना करना पड़ता है,—"मुझे नहीं लगता तुम्हें असिस्टैंट प्रोफेसर बनने की उम्मीद भी करनी चाहिए...वह कभी नहीं होगा। देखो हिंदुस्तान से पीएच.डी. कर लेना कोई बड़ी बात नहीं। सैंकड़ों पीएच.डी. करते हैं, वहाँ। कोई ठीक स्टैंडर्ड तो है नहीं वहाँ...अब यहाँ तो पीएच.डी. में इतना काम करना पड़ता है...पहले कोर्स वर्क ही दो चार साल करते रहो, तब जाकर थीसिस लिखने की बात होती है। भारत में तो बस छूटते ही थीसिस लिखी और बात खत्म...तभी बड़ी, कच्ची, बड़ी घटिया किस्म की थीसिस लिखते हैं लोग। हिंदूस्तानी पीएच.डी. के बूते पर तुम्हें नौकरी ढूँढनी ही नहीं चाहिए। उनकी कोई कीमत नहीं यहाँ।"[15] यह प्रसंग भारतीय शिक्षा पद्धति को हीन भाव से देखने की मानसिकता को स्पष्ट करता है। 'अंजेलिया के रंगीन फूल' कहानी में भी नस्लवादी भेदभाव की समस्या को देखा जा सकता है जहाँ खुली मानसिकता वाला पाश्चात्य समाज भी अंतर्नस्लीय विवाह को मान्यता नहीं देता है। मि. मिलर और निक के विवाह को बीस वर्ष हो गए हैं, परंतु आज भी जब मि. मिलर किसी से मिलती है तो उससे उसके देश की पहचान पूछी जाती है। वह आज भी अपने पति के समाज में स्वीकार्य नहीं है, "जानती हैं मुझे कैसा लगता है ख़ासकर जब भी मैं निक के साथ इन अभिजात अमरीकियों के घर जाती हूँ तो नहीं, कहता कोई कुछ नहीं पर जैसे उन आँखों में एक भाव रहता है जैसे कि मैं निक की कोई गलती हूँ, ऐसी गलती जिसे वे शायद माफ कर देंगे, आखिर पत्नी के चुनाव की गलती तो बहुत लोगों से हो जाती है, पर उस पत्नी के

साथ निभाना उनकी मजबूरी नहीं। वे निक को स्वीकार तो करते हैं क्योंकि वह उन्हीं के बीच का हैं लेकिन मुझे पता नहीं कैसे वे महसूस करा ही देते हैं कि मैं उनके बीच की नहीं कि निक ने अगर गलती की हैं तो या तो उसका सुधार कर ले या फिर खुद ही भोगे, उनसे तो ऐसी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वे मुझे सिर पर चढाए सिर्फ इसलिए कि उनके समाज का एक सदस्य पागलपन कर बैठा है!"[16]—यही धारणाएँ व्यक्ति के मन को अधीर और अशांत बना देती है जहाँ वह या तो हीन भाव से ग्रसित हो जाता है या फिर व्यवस्था का विद्रोही।

दो संस्कृतियों में अंतर्द्वंद्व की जिस अन्य समस्या को सुषम बेदी ने उद्घाटित किया है वह है पीढ़ीगत अंतराल की समस्या। प्रवासी भारतीय अपनी मूल संस्कृति का त्याग नहीं कर पाते और नवीन को अपना नहीं पाते और उनकी आगे वाली पीढ़ी पुरातन संस्कारों को अपनाना नहीं चाहती। ऐसी स्थिति में मानसिक द्वंद्व और कड़ा हो जाता है और सांस्कृतिक मूल्यों में तनाव और विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। माता-पिता की पुरातन सोच अपने बच्चों के मशीनी और अत्याधुनिक होते माहौल में सामंजस्य नहीं बिठा पाती और बच्चे माता-पिता के हिंदूस्तानी मूल्य नहीं अपना पाते या समझना ही नहीं चाहते। इस स्थिति को लेखिका ने 'हवन' उपन्यास की राधिका के माध्यम से स्पष्ट किया है। राधिका गुड्डो की बहन की बेटी है जो पाश्चात्य माहौल में पूरी तरह रंग चुकी है यहाँ तक कि वह अपनी सहेलियों को अपना नाम राधिका नहीं बल्कि लॉरा जॉनसन बताती है,—"मम्मी, वह तो मैंने मजाक में मैंने अपना नाम इन्हें लोरा जॉनसन बतला दिया था, करें क्या आपके हिंदुस्तानी नाम किसी की समझ में नहीं आते। मुझे सब बुलाते थे-रै..डि.. खा..इट इज सो फनी, इजंट इट।"[17] यहाँ तक कि घर में करवाए जाने वाले पूजा-पाठ और हवन की गंध में उसका दम घुटता है। माता-पिता उसकी भटकती राह पर अंकुश लगाना चाहते हैं परंतु वह स्वच्छंद होकर विचरण करना चाहती है और उसकी यही स्वच्छंदता उसके जीवन को स्वाह कर देती है। अंततः वह सामूहिक बलात्कार का शिकार होकर जीवन समाप्त कर लेती है। इस तरह की स्थितियाँ व्यक्ति को अत्यंत भयानक परिवेश में डाल दोती है। कई बार बच्चा अपने माता-पिता की महत्वाकांक्षाओं का शिकार हो जाता है और अपने अस्तित्व को बचाए रखने में असक्षम। 'कतरा-दर-कतरा' उपन्यास का कुक्कू इसी तरह की स्थितियों का शिकार है जहाँ वह अपने माता-पिता की उपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पाता और मानसिक हीनता का शिकार हो जाता है। घर का सबसे लाडला घरवालों के लिए उपेक्षित हो जाता है, "कुक्कू अभी से हम सभी के लिए निःशेष हो गया था। उसे अस्पताल भेजना क्या उसके अनसित्व की घोषणा थी। क्या किसी का बीमार होना इतनी शर्मनाक बात होती है कि उसकी हस्ती तक को नकार दिया जाए..उसका अस्पताल का कमरा मरघट का चौखटा मान लिया जाए।"[18] कुक्कू आजीवन एक अपराधबोध से ग्रस्त हो जाता है क्योंकि न तो वह घरवालों की अपेक्षाओं पर खरा उतर पाता है और न ही अपनी पहचान बना पाता है। विदेश में रहते हुए भारतीय संस्करों को साथ लेकर चलने वाले माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे भी उन संस्कारों को अपनाए, परंतु नई पीढ़ी के बच्चे स्वयं को पूरी तरह विदेशी ही कहलाना पसंद करते है और हिंदुस्तानी संस्कारों का प्रतिरोध करते हैं। इस तरह की स्थितियों को 'चिड़िया और चील' तथा 'झाड़' कहानी के माध्यम से देखा जा सकता है। 'चिड़िया और चील' कहानी में चिड़िया के माता-पिता उसे बड़े लाड़-प्यार और चाव से पालते-पोषते हैं, उसकी हर इच्छा को पूरा करते हैं। चिड़िया की माँ उसे भारतीय संस्कार भी सिखाना चाहती है परंतु चिड़िया किसी भी स्तर पर स्वयं को भारतीय नहीं मानती है। वह अपने माता-पिता को कोई महत्त्व नहीं देती और स्वतंत्र होकर जीना चाहती है। उसके लिए माता-पिता मात्र सुख-सुविधाओं को पूरा करने वाले साधन थे। अंततः जब उसके माता-पिता उस पर अंकुश लगाने का प्रयास करते हैं तो वह विद्रोही स्वभाव में कहती है, चिड़िया कड़की, ठीक है रखलो सँभाल कर... चिता पर धर कर साथ ले जाना, जीते जी मुझे डिप्राईव करके सुख मिलता है तो लो...मैं भी तुम दोनों के मरने का

इंतजार कर लूँगी...माँ-बाप भी पता नहीं किस बात के बदले लेते रहते हैं....ट्रस्ट को पैसा देंगे अपनी औलाद को नहीं... पैदा करने का यह मतलब तो नहीं कि सारी उम्र उन्हें दबोच कर कोख में ही रख लिया जाये।"[19] उसी तरह 'झाड़' कहानी की अन्विता भी अपने बेटे समीर को विदेशी रंग में रंगते देख अपनी माँ को भारत से बुला लेती है ताकि वह उसे भारतीय मूल्य और संस्कार सिखाए। परंतु समीर को नानी का आना उसकी स्वतंत्रता में बंदिश लगता है। वह नानी को पास भी आने नहीं देता, उनका प्यार और दुलार उसे कतई अच्छा नहीं लगता था,—"नानी हमेशा उसके खेल में दखलअंदाजी करती है। हर वक्त उनकी आँख उस पर लगी रहती है। यह सब सैम को पसंद नहीं है जैसे कोई बेबात उस पर हक जमाए जा रहा हो, उससे हर वक्त हुक्म-बुलंदी की अपेक्षा कर रहा हो, उसे बड़ा बोझ सा लगता है। उसके स्वातंत्र्य बोध का इनकी उपस्थिति से बड़ा हर्जा हो रहा है।"[20] यहाँ तक कि जब नानी उसे समीर कहकर बुलाती है तो वह इसका भी विरोध करते हुए कहता है कि उसका नाम समीर नहीं सैम है। पहली पीढ़ी चाहती है कि उसके बच्चे उनके सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाएँ परंतु वह मूल्य तो दूर की बात स्वयं को भारतीय कहलाना भी पसंद नहीं करते। राधिका हो सैम हो या चिड़िया सभी अमेरिकी संस्कार और सभ्यता को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इस तरह की स्थिति पहली पीढ़ी के भीतर गहरी पीड़ा का संचार करती है।

संस्कृति का सर्वाधिक एवं महत्वपूर्ण अंग है भाषा। सुषम बेदी ने सांस्कृतिक विघटन के परिवेश में बढ़ते संकट व्यक्तिगत अस्मिता के साथ-साथ भाषाई अस्मिता के संकट को भी यथार्थ एवं अनुभवजनित अभिव्यक्ति दी है। 'हवन' उपन्यास में गुड्डो को भाषा के आधार पर अनेक तरह की उपेक्षाएँ झेलनी पड़ती है। भाषाई व्यवहार के दोहरेपन के कारण उसके आर्थिक, भावात्मक और सांस्कृतिक तीनों पक्ष प्रभावित होते हैं। उसे मातृभाषा से प्रेम है तभी जब विदेश में उसके साथ कोई उसकी भाषा में बात करता है तो उसे अपनेपन का एहसास होने लगता है। उसे अंग्रेजी का भारतीयपन अखरता है क्योंकि उस भाषा में अपनापन नहीं बल्कि ऊपरी दिखावा झलकता है परंतु वहाँ बने रहने और आजीविका हासिल करने के लिए उसे स्वयं बनावटी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। पुरानी पीढ़ी को अपनी मातृभाषा के प्रति लगाव है परंतु नई पीढ़ी ऐसा महसूस नहीं करती बल्कि वह तो 'हवन' की राधिका, 'चिड़िया और चील' की चिड़िया 'झाड़' के सैम की तरह अपने और माता-पिता के हिंदूस्तानी नामों को भी अंग्रेजियत में देखना और सुनना चाहते हैं।

सांस्कृतिक टकराव से उत्पन्न इस तरह की तमाम परिस्थितियाँ प्रवासी भारतीय के जीवन को पूर्णत: संघर्ष और द्वंद्व से ग्रसित कर देती है। विदेशी सुख-सुविधाओं की लालसा में व्यक्ति पराई धरती पर तो आ जाता है परंतु उसे अपनी अस्मिता के संरक्षण हेतु संपूर्ण जीवन होम करना पड़ता है। वह 'हवन' उपन्यास की गुड्डो की तरह अंतत-सोचता है कि तमाम उम्र सब के लिए संघर्ष करने के पश्चात उसके जीवन में शेष क्या रह गया है। उसका जीवन तो उसके अपनों के साथ इस संघर्ष रूपी हवन में आहुति बन चुका है, "ओह गुड्डो, तू सोचती थी सब बन रहे हैं...सबकी जून सुधर रही है...उजलेगा अनागत..कहाँ गया वह सब कुछ जो कोमल, सुगंधित, नवनीत और पवित्र था... राधिका का भोता बचपन...राजू का मेधावी सर्जन....सभी कुछ भस्म....कौन बना है सामग्री इस हवन में...वह स्वयं क्या बची रह गई या बन गई हवि।"[21] गुड्डो तो दो संस्कृतियों के मध्य झूलती हुई अपनी पूर्ण जीवन होम कर देती है परंतु दूसरी ओर 'मोर्चे' उपन्यास की नायिका तनिमा तमाम प्रताड़नाओं और उपेक्षाओं को झेलने के बाद अंतत: संघर्षों के बीच से मार्ग खोजते हुए अपने लिए एक नई दुनिया की स्थापना करती है। वह तमाम उम्र अपनी शादी को बचाए रखना चाहती थी परंतु अनुज की क्रूरता और रूढ़िवादी मानसिकता को कारण ऐसा संभव न हो सका। अनुज उसकी अस्मिता को मिटाने का पूर्ण प्रयास करता है, उसे पागल घोषित करवा बच्चों की कस्टडी भी उससे छीन लेता है परंतु वह हार नहीं मानती। कथाकार के शब्दों में,—"तनु घिरी है कितने ही मोर्चे से। लगातार लड़ना है उसे। कभी माँ

बनकर आती है उसकी रक्षा को, कभी भाई तो कभी बहन। लेकिन लड़ाई उसकी अपनी है, इसी से उसी को जूझना है। पुरुष समाज के अनाचारों से। लड़ाई में हथियार चाहे वह खुद को बनाए या अपनी संतान को, ऊर्जा तो उसे अपने भीतर ही पैदा करनी है जो उसे लड़ने का मादा दे सके।"[22] संभवत: लेखिका हर उस व्यक्ति के भीतर उस जीवतंता को बचाने हेतु प्रयासरत दिखती है जो संघर्षों का सामना करने के लिए उसे चेताए रखे क्योंकि समाज और परिवेश चाहे कैसा भी हो व्यक्ति को हर जगह विभिन्न स्तरों पर स्वयं को साबित करना ही पड़ता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सुषम बेदी का साहित्य वास्तव में दो विभिन्न संस्कृतियों के विविध पहलुओं को प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करता है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के बदलते संदर्भों में व्यक्ति को जिन तमाम समस्याओं और विसंगतियों से जूझते हुए आगे बढ़ना पड़ता है, उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति उनके साहित्य में परिलक्षित होती है। प्रवासी जीवन के विविध पक्षों को अनुभवजनित अभिव्यक्ति के साथ व्यापक पाठक समूह तक पहुँचाकर उन्होंने प्रवासियों के जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण एवं वैचारिक वातावरण का निर्माण किया है। मार्मिक संवेदनाओं और व्यापक सरोकारों की इस सजग कथाकार का 20 मार्च, 2020 को हमेशा के लिए विदा होना वास्तव में साहित्य जगत की बहुत बड़ी क्षति है। सुषम बेदी का अप्रतिम साहित्य सदैव उन्हें साहित्य के वैश्विक धरातल पर जीवंत बनाए रखेगा।

संदर्भ :

1. सुधा ओम ढींगरा, लेखक की पहचान एक देश से जोड़ी जाए यह जरूरी नहीं, https://up.nyu.edu/virtualhindi/sudha-dhingra/
2. मीना बुद्धिराजा, अस्मिता विमर्श के स्वर (लेख) www.jansatta.com/sunday-magazine/sandarbh-about-asmita-vimarsh-ke-swar/663148/
3. सुधा ओम ढींगरा, लेखक की पहचान एक देश से जोड़ी जाए यह जरूरी नहीं, https://up.nyu.edu/virtualhindi/sudha-dhingra/
4. डॉ. सुधा एस. (सं.), नया साहित्य : नए प्रश्न, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2019, पृ. 171
5. डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव, प्रवासी हिंदी साहित्य और संस्कृति : एक मूल्यांकन, https://www.aarambhpatrika.com/pravasi-hindi-sahitya-aur-sanskriti-ek-mulayakan-dr-sanjay-prasad-shirivastav/
6. विभा मल्लिक, The contestation of values in Diaspora literature https://grfdt.com/AbstractDetails.aspx?TabId=2258
7. सुषम बेदी, हवन, शाहदरा : अभिरुचि प्रकाशन, 1996, पृ. 43
8. http://www.abhivyakti-hindi.org/upanyas/lautana/lautana01.htm
9. वही।
10. सुषम बेदी, मोरचे, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006, पृ. 65
11. https://www.abhivyakti-hindi.org/kahaniyan/vatan_se_door/2003/azalea/azelea3.htm
12. https://www.abhivyakti-hindi.org/kahaniyan/vatan_se_door/2002/avasan/avasan3.htm
13. सुषम बेदी, हवन, शाहदरा : अभिरुचि प्रकाशन, 1996, पृ. 98
14. वही।
15. http://www.abhivyakti-hindi.org/upanyas/lautana/lautana01.htm
16. https://www.abhivyakti-hindi.org/kahaniyan/vatan_se_door/2003/azalea/azelea3.htm
17. सुषम बेदी, हवन, शाहदरा : अभिरुचि प्रकाशन, 1996, पृ. 55
18. सुषम बेदी, कतरा-दर-कतरा, चंडीगढ़ : अभिषेक प्रकाशन, पृ. 58
19. सुषम बेदी, चिड़िया और चील, शाहदरा : अभिरुचि प्रकाशन, 1997, पृ. 36
20. वही, झाड़ (कहानी) पृ. 47
21. सुषम बेदी, हवन, शाहदरा : अभिरुचि प्रकाशन, 1996, पृ. 189
22. सुषम बेदी, मोरचे, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006, पृ. 221

❖

ई-27, सेक्टर 14, पंजाब विश्वविद्यालय
चंडीगढ़-160014 मोबाइल 9815801908
ईमेल : gurmeetpu@gmail.com

रेणु की कहानियाँ :

शब्द, चित्र और चेतना की त्रिवेणी

— प्रो. विनोद कुमार मिश्र

रेणु कहानियाँ लिखते नहीं, बुनते थे, जैसे कबीर बुनते थे चादर। रेणु कथा-लेखन के कबीर ही तो हैं। वह भी तन्मय होकर कहानियाँ रचते थे। उनकी कहानियाँ पढ़ते समय शब्द अदृश्य होने लगते हैं, महत्वहीन होने लगते हैं और पाठक के अंतस में परिवेश जाग्रत और मूर्तिमान हो जाता है, जिसमें राग भी है, अनुराग भी है और विराग भी। परिवेश का संपूर्ण रूप उनकी कहानियों में राग और अनुराग-विराग बन उभरता है। 'रसप्रिया' उनकी ऐसी अद्‌भुत प्रेमकथा है, जिसमें वे पँचकौड़ी मिरदंगिया के बहाने ग्रामीण जीवन के रोमांस और उसकी परिणति को समग्रता एवं सौष्ठव के साथ रखते हैं।

उपन्यासकार की तुलना में कहानीकार के रूप में रेणु मुझे कुछ अधिक ही प्रिय है। हिंदी कहानियों में प्रेमचंद के बाद गाँव लुप्त हो जाते, यदि रेणु का आगमन न होता। प्रेमचंद की समाधि का बिरवा रेणु देखते-देखते उनके उत्तराधिकारी होने का प्रमाण दे जाते हैं। यद्यपि रेणु की आंचलिक कथा को बांग्ला से प्रभावित भी माना जाता है। इनके साहित्यिक गुरु थे-सतीनाथ भादुड़ी, जिनका आंचलिक उपन्यास 'ढोंढ़ाई चरित मानस' दो खंडों में प्रकाशित हुआ। इसकी पृष्ठभूमि भी मिथिलांचल ही है। इसके पूर्व बांग्ला में आंचलिक उपन्यास ताराशंकर वंद्योपाध्याय लिख चुके थे-गणदेवता और पंचग्राम। उससे भी पहले युवा माणिक वंद्योपाध्याय ने बांग्ला का अमर आंचलिक उपन्यास 'पद्‌मा नदी का माझी' लिख दिया था। ताराशंकर का सर्वश्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास 'हँसुली बांक की उपकथा' भी काफी पहले आ गया था। रेणु को इस परंपरा से जोड़ना भी अनुचित न होगा। आजादी के बाद कथा साहित्य में जो युवा स्वर उभर रहे थे, उनका भी हाल कुछ अच्छा न था। नयी कहानी आंदोलन तो मध्यवर्ग का साहित्य आंदोलन बन गया था, जिसकी जड़ें नगरीय जीवन में थीं। ग्रामीण परिवेश-पृष्ठभूमि के साथ कोई समर्थ हिंदी कथाकार उन दिनों नहीं था। ऐसे में रेणु अपने ठेठ ग्रामीण परिवेश और पूरे आंचलिक वितान के साथ हिंदी कहानी के परिदृश्य पर उभरते ही नहीं हैं पसर जाते हैं और अपनी रचनात्मकता से धमक भी पैदा करते हैं। इनकी कहानियाँ संरचना, प्रकृति और शिल्प में एक अलग और नई पहचान लिए हुए थीं। वास्तव में एक नई कथा-धारा का प्रारंभ इन्हीं कहानियों से होता है। ये कहानियाँ विचार या आदर्श को केंद्र में रखकर नहीं बुनी गई हैं, अपितु ये सीधे-सादे जीवन में

उतरती हैं। इसलिए इन कहानियों से सरलीकृत रूप में निष्कर्ष निकालना जरा कठिन है। रेणु का कथा संसार मात्र आंचलिकता के घेरे में नहीं है, बल्कि आंचलिकता के अतिक्रमण में है। रेणु के आते ही गाँव हिंदी कहानी के केंद्र में एक बार फिर अधिक ताकत और विश्वसनीयता से अपनी पहचान स्थापित करता है। प्रेमचंद के बाद गाँव अपनी समग्रता में रेणु की कहानियों में ही स्थान पाता है। हिंदी कहानी को सबसे अधिक विश्वसनीय ग्रामीण पात्र रेणु ने ही दिए हैं। उनके पात्र हमें स्वयं अपनी उस आंचलिक दुनिया में खींच ले जाते हैं, जो भारतीय गाँवों में रचे-बसे हैं। वे पात्र अपने दिल की बात अपनी पूरी रागात्मकता से करते हैं। उनकी कोशिश निरंतर अपने परिवेश में समाहित कर लेने की रहती है। वे जब कथा के चित्र उकेर रहे होते हैं, तब इतने तन्मय हो जाते हैं कि उनके शब्द, चित्र और चेतना की त्रिवेणी एक नई संगमस्थली निर्मित करती हैं। रेणु हिंदी कहानी की किसी धारा अथवा आंदोलन से कभी नहीं जुड़ते, चाहे कलावादी खेमा हो अथवा प्रगतिशील कहे जाने वाला मार्क्सवादी खेमा हो। वे अपनी जगह खुद निर्मित करते हैं। लेकिन उनकी कहानियाँ हमें भारत के हाशिये के समाज जीवन से अवश्य जोड़ती हैं और जीवन की विविध छवियों को आत्मसात करती हैं। लोक जीवन एवं उसकी संवेदना और विवेक को रेणु ने अपनी कहानियों में अपने अंदाज में पकड़ने की कोशिश की है। देशकाल तथा परिवेश जितना रेणु की कहानियों में जीवंत हुआ है, उतना शायद अन्य किसी कहानीकार में नहीं। हिंदी जगत को 'तीसरी कसम अर्थात मारे गए गुलफाम', लाल पान की बेगम' आत्मसाक्षी', 'रसप्रिया' और 'ठेस' जैसी अविस्मरणीय कहानियाँ रेणु ने दी हैं। यद्यपि वे कुल (63) कहानियाँ ही हिंदी-साहित्य को दे पाए, लेकिन सब एक से बढ़कर एक। उनकी पहली कहानी 'बट-बाबा' 1944 में कोलकाता के 'विश्वमित्र' में प्रकाशित हुई। और अंतिम कहानी 'अग्निखोर' नई दिल्ली से प्रकाशित 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के नवंबर 1972 के अंक में। 1944 से 1953 तक उनके कहानी-लेखन का आरंभिक दौर है, जब उनकी पंद्रह कहानियाँ प्रकाशित हुईं। 1955 से 1959 तक की अवधि उनकी कहानियों का स्वर्ण युग है। 'तीसरी कसम' पर फिल्म बनी और रेणु कुछ समय के लिए फिल्मी-दुनिया के होकर रह गए थे। 'तीसरी कसम' फिल्म की प्रसिद्धि ने रेणु को आकाशीय ऊँचाई प्रदान की।

यद्यपि कहानियाँ तो उन्होंने 1972 तक लिखीं और वे प्रकाशित भी हुईं, लेकिन रसप्रिया, आत्मसाक्षी, तीसरी कसम, लाल पान की बेगम, ठेस, पंचलाइट, जैसी मील का पत्थर सिद्ध हुईं कहानियाँ वह फिर न लिख सके। उनके कथा-लेखन के तीन पड़ाव हैं—पहला पड़ाव 1953 तक आता है। 1954 में अपने पहले ही उपन्यास 'मैला आँचल' के प्रकाशन से उन्हें खूब ख्याति मिली। 1955 में 'रसप्रिया' के प्रकाशन के बाद उन्होंने एक से एक अविस्मरणीय कहानियाँ लिखीं। उनका तीसरा पड़ाव 1966 में आरंभ होता है।

रेणु कहानियाँ लिखते नहीं, बुनते थे, जैसे कबीर बुनते थे चादर। रेणु कथा-लेखन के कबीर ही तो हैं। वह भी तन्मय होकर कहानियाँ रचते थे। उनकी कहानियाँ पढ़ते समय शब्द अदृश्य होने लगते हैं, महत्वहीन होने लगते हैं और पाठक के अंतस में परिवेश जाग्रत और मूर्तिमान हो जाता है, जिसमें राग भी है, अनुराग भी है और विराग भी। परिवेश का संपूर्ण रूप उनकी कहानियों में राग और अनुराग विराग बन उभरता है। 'रसप्रिया' उनकी ऐसी अद्‌भुत प्रेमकथा है, जिसमें वे पँचकौड़ी मिरदंगिया के बहाने ग्रामीण जीवन के रोमांस और उसकी परिणति को समग्रता और सौष्ठव के साथ रखते हैं। देश-काल से सचेत रेणु चुपचाप अपने समय का इतिहास लिख रहे होते हैं। मानव समूह की नियति को देखने की कोशिश करते हुए रेणु मूक पात्रों के मुखवीर हैं। रेणु मानते हैं कि ग्रामीण सर्वहारा के जीवन में आर्थिक दु:ख के सिवा और भी दु:ख होता है। वह यह भी कहना चाहते हैं कि उनकी आर्थिक-सामाजिक विपन्नता और दीनता उनके जीवन को कई स्तरों पर विरूपित कर देती है। उनका कुछ भी शेष नहीं रह जाता। उनका जीवन-राग मुश्किल में तो

होता है, फिर भी वे राग-अनुराग से विरत नहीं हो पाते। वह अपनी धड़कनों को अनसुनी नहीं कर पाते।

'पंचलाइट' के गोधन और मुनरी, 'तीसरी कसम' का हीरामन, 'अच्छे लोग' के उजागिर और बिरौली वाली या फिर 'भित्तिचित्र की मयूरी' की फुलपतिया सब एक ही पीड़ा में डूबे हुए पात्र हैं। रेणु लोक जीवन के प्रचलित गीतों, जनश्रुतियों और उनके राग-अनुराग का प्रयोग अपनी कथा बुनने में करते अवश्य हैं। रेणु जन-गण-मन के असली चितेरे हैं। वे ग्राम्य जीवन के आरोह-अवरोह, उत्कर्ष-अपकर्ष, राग-विराग को समग्रता में पाठकों के सामने रखते हैं। 'तीसरी कसम' का हीरामन तत्कालीन भारत के गाँवों के युवाओं का प्रतिनिधित्व करता है। हीरामन जैसा सीधा, सच्चा, सरल और सुलभ कैरेक्टर को गढ़ना या बुनना कोई मामूली बात नहीं है। वह सब कुछ छोड़ सकता है लेकिन गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता। हीरामन और उसके सर्जक रेणु की यही असाधारणता है। 'तीसरी कसम' की कथा-वस्तु को रेणु ने स्वयं बुना है। वह उनकी अलग किस्म की रचना है जो उन्हें लीजेंड बनाती है, जिसमें लोक गीतों के खूबसूरत इस्तेमाल उन्होंने अपनी बुनावट में किए हैं। लोकतत्वों के प्रयोग की कला उनमें जन्मजात दिखती है।

'तीसरी कसम' कहानी पर फिल्म भी बनाई गई, जो कई कारणों से चर्चित भी हुई, लेकिन उस फिल्म को देखने और कहानी को पढ़ने के अनुभव अलग-अलग होते हैं। कहानी के लालित्य की अनुभूति फिल्म में नहीं होती है। कहानी-पाठ का जो स्थायी प्रभाव संवेदनशील मन पर होता है, वह फिल्म से कहाँ? फिल्म से कहानी का रस पाना भी आत्म मोह या बेजा माँग है। वह अपना रस देती है। और ठीक से फिल्म देखने के बाद जो गहरे उदास न हो जाए बासु दा-शैलेंद्र-रेणु की तिकड़ी ने कहानी नहीं बनाई है, कहानी पर फिल्म बनाई है। उसके मर्मों को खोलने के लिए नए पात्र भी सिरजे हैं, नये दृश्य भी बनाए हैं। पाठक ही नहीं, दर्शक के लिए भी कहानी खिल गई है।

रेणु की कहानियों की यह विशेषता रही है कि उसके रूपांतर से उसकी प्रभान्विति खत्म हो जाती है। 'रेणु अपनी कहानियों में वातावरण अत्यंत सहजता के साथ सृजित और संयोजित करते हैं। वातावरण से ही वे आंचलिक रोमांस के कथाकार हैं, रेणु की कहानियों का वातावरण प्रत्यक्ष होता है। सभी कहानियों में ऐसे अनंत भाव और अतल गहराइयाँ हैं जिन्हें थहाते जाना आसान नहीं है।'

रेणु की सबसे लंबी और चर्चित कहानी 'तीसरी कसम' अर्थात 'मारे गए गुलफाम' है। विधुर गाड़ीवान हीरामन की इस कथा का आरंभ ही होता है और इसके इर्द-गिर्द है उसका पूरा स्वरूप जिसमें उसके दोस्त-यार, उसकी भौजाई, उसके प्यारे बैल और कमली गाय और उसके समय का

सारा दुख है। महुआ घटवारिन की व्यथा है, सौदागर है। 'तीसरी कसम' का नायक हीरामन काला-कलूटा, चालीस साल का देहाती-गँवार नौजवान। भारतीय काव्यशास्त्र ने नायक के लिए जो धीरललित, धीरोदात्त, और धीरप्रशांत के प्रतिमान बनाए हैं, उस पर भला हीरामन कहाँ खरा उतर सकता है? लेकिन रेणु उसे खड़ा करते हैं..उनका हीरामन हीराबाई द्वारा परख लिया गया है।

"हीराबाई ने परख लिया, हीरामन सचमुच हीरा है।"

रेणु को हीरामन के व्यक्तित्व की ही नहीं, उसके समाज और उसकी सोच की भी परवाह है। हीरामन आम से कुछ

अलगखास किस्म का चरित्र है। श्रमवीर श्रमिक के लिए श्रम करना भार नहीं होता है, वह जीवन का गीत है, श्रम परिहार गीत है, जिसके बिना श्रमिक रह ही नहीं सकता। हीरामन सबकुछ छोड़ सकता है किंतु बैल गाड़ी चलाना नहीं छोड़ सकता। जैसे कबीर चादर बुनना और रैदास जूता मरम्मत करना। दोनों दूसरों के श्रम पर जीने वाले परजीवी नहीं हैं, वे श्रमवीरों के समूह से हैं, स्वयं श्रमिक कवि हैं।

प्रगतिवादियों के लिए रेणु को समझना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन रहा है। साहित्य के पारंपरिक ढाँचों में रखकर उनके साहित्य को परखना तो और मुश्किल रहा इसलिए नहीं कि उनका ज्ञान किताबी रहा...बल्कि इसलिए कि विश्व में मार्क्सवाद चाहे जितना सबल दर्शन रहा हो, किन्तु अधिकांश मार्क्सवादी कभी इतने उदारमना नहीं हुए कि 'आत्मसाक्षी' लिखने वाले को स्वीकार कर पाएँ-'भित्ति चित्र की मयूरी' जैसी कहानी की सार्वजनीन प्रासंगिकता को स्वीकार कर सके। रामविलास शर्मा जैसे ठेठ प्रगतिवादी तबियत के आलोचकों को भी रेणु-साहित्य शायद इसलिए भी नहीं पसंद आया कि रेणु ने अपने तरीकों से विमर्श किया और अपने लेखन को बिना किसी वैचारिकी की मुहर लगाए महनीय बनाया तथा सांस्कृतिक वर्चस्व की चुनौतियों को गंभीरता से वैसे ही समझा, और उनका मुकाबला किया जैसा कभी मुकाबला प्रेमचंद ने किया था।

जीवन में रोटी का अपना महत्व है, इसे वे समझते थे, लेकिन वही सब कुछ नहीं है, इसे हमेशा जेहन में रखते थे। किसी प्रगतिवादी कहानीकार की तुलना में उनकी कहानियों में सर्वहाराजन-मन की धड़कन हम अधिक विश्वसनीयता से सुन सकते हैं। रेणु के सर्वहारा पात्र आर्थिक रूप से भले गरीब हों, सांस्कृतिक रूप से काफी संपन्न हैं। प्रेमचंद के घीसू-माधव यदि रेणु के यहाँ नहीं हैं तो इसके कुछ विशेष कारण अवश्य होंगे।

रेणु अपनी कहानियों द्वारा हमारी चेतना को एक नया आयाम देते हैं। रेणु ने नि:संदेह अपने लेखन में अपनी पूर्ववर्ती परंपरा और प्रयोग को अपने तरीके से शामिल करने की कोशिश की। इसी तरह प्रेमचंद से उन्होंने मजदूर तबके से जुड़े रहने की जीजिविषा को आत्मसात किया। यही कारण है कि आर्थिक और सामाजिक रूप से उत्पीड़ित और शोषित तबके की जितनी छवियाँ रेणु की कहानियों में मूर्तमान हुई हैं, उतनी शायद ही दूसरों की कहानियों में। उनके अनुसार गाँव-गिरांव के धूल-धूसरित अनमोल अपरूप ही भविष्य के भारत के असली नायक होंगे। हीरामन, पँचकौड़ी, हरगोबिन, सिरचन आदि ही नए भारत और उसके जनतंत्र का इतिहास रचेंगे जो न तो गँवार हैं, न ही अबोध। वे पूरी तरह सचेष्ट हैं। सामाजिक-आर्थिक बदलावों पर उनकी नजर है। सामाजिक गतिकी को रेणु सूक्ष्मता से समझते हैं। वे अपने पात्रों से एकात्म हैं, वह उसके लिए तनिक भी बाहरी नहीं हैं, यही उनकी विशेषता है। उनकी कहानियों पर विमर्श करते हुए, हमें इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। वैसे भी जैसे-जैसे वक्त बीतेगा और रेणु को हम जितनी बार पढेंगे, उनका वैचारिक संसार और उसमें रचा गया साहित्य अपने पंचलैटी प्रकाश से पाठकों और आलोचकों को नवीन-तत्व-बोध से आलोकित करेगा। अधिकतर कहानियाँ बोझिल किए बगैर आम पाठक से लेकर बौद्धिक जन को अपनी रचनाओं के निकट ले आती हैं, बार-बार पढ़ी हुई कहानियों को फिर पढ़ने का मन करता है, वह भी कई नजरियों से। यही रचनाकार की सफलता भी है। रेणु जी के साहित्य को सिलसिलेवार और व्यापक ढंग से समझने के लिए रेणु जी की एक-एक कहानी के लिए गंभीर विमर्श की आवश्यकता है। इसलिए उनकी सभी कहानियों पर बात करते हुए गहराई में जाना और उन परतों को खोलकर विमर्श के धरातल पर ले आ पाना संभव भी नहीं है।

V

महासचिव, विश्व हिंदी सचिवालय
(भारत व मॉरीशस सरकार की द्विपक्षीय अंतरराष्ट्रीय संस्था)
मॉरीशस, मोबाइल : +23052570861
ई-मेल : vkmgci@gmail.com

जाति ही पूछो रेणु की

— भारत यायावर

लेखक की जाति क्या होती है? लेखक-समाज के लोग बस लेखक ही हैं। लेकिन उनके कुल-वंश को जानने के लिए मैंने विस्तार से बताया है। रेणु को ठीक तरह से जानने के लिए उनका साहित्य ही साक्ष्य है कि वे किस तरह के लेखक हैं।

रेणु ने अपने साहित्य में बहुत सारे रहस्य छोड़ दिए हैं। उनके सही अर्थ तक पहुँचने के लिए बहुत सारे संदर्भ भी हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए जूझने की आवश्यकता है। रेणु की हर रचना में स्थूल विवरणों के बीच सूक्ष्म चेतना है, उसे पाना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए।

रेणु की जाति के बारे में जिज्ञासा है तो सब कुछ जानकर भी इसी स्थापना को स्वीकार करना है कि रेणु रचनाकार थे, शब्द-शिल्पी थे। और यही उनकी जाति थी।

रेणु जब तक जीवित रहे, किसी ने उनकी जाति नहीं पूछी। मगर उनकी मृत्यु के बाद उन्हें जन्म से ब्राह्मण बनाने की एक मुहिम-सी चली। यह कैसी विडंबना है कि किसी लेखक की पहचान उसकी जाति से हो। ऐसा भारत जैसे रूढ़िग्रस्त देश में ही होता है। ज्यादातर लोग पूछते हैं कि रेणु किस जाति के हैं? उनका कुल-वंश क्या है?

रेणु की जाति को लेकर कई दिलचस्प किस्से हैं। कई किंवदंतियाँ हैं। कई तरह के मत-मतांतर हैं। सच क्या है? इसकी पड़ताल करने की मैंने यहाँ कोशिश की है।

फणीश्वरनाथ रेणु का देहावसान 11 अप्रैल, 1977 को हो गया। तब उनकी जाति की तलाश शुरू हुई। बिहार में एक सुबल गांगुली थे। उन्होंने 1973 में सतीनाथ भादुड़ी पर बांग्ला में एक पुस्तक प्रकाशित की थी-'सतीनाथ स्मरणे'। इसमें उन्होंने बांग्ला भाषा में रेणुजी से सतीनाथ भादुड़ी पर संस्मरण लिखवाया था, जिसे हिंदी में अनुवादित कर मैंने 'वन-तुलसी की गंध' नामक पुस्तक में पहली बार 1984 में संकलित किया था। इतनी अनुपम और विलक्षण बांग्ला में लिखित रेणु की रचना को देख उनके मन में इच्छा जगी कि रेणु को बंगाली ब्राह्मण सिद्ध किया जाए। उन्होंने लतिका रेणु से इस विषय में बात कर 'देश' और 'आनंदबाजार पत्रिका' में लेख लिखे कि रेणु बंगाली ब्राह्मण थे। रेणु ने अपने हाथ में 1935 में गुदना गुदवा लिया था-F.N.M.। यह उनके नाम के प्रथमाक्षर थे। उस समय उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि F की जगह P लिखना चाहिए। इस गुदने को आधार बनाकर उन्होंने M को मुखर्जी बना दिया। मतलब यह कि सुबल गांगुली ने रेणु को बंगाली ब्राह्मण के रूप में अपनाया। लेकिन पूर्णिया जिले के राय रामनारायण नामक विद्वान ने सुबल गांगुली की इस स्थापना को खंडित कर

दिया कि वे मुखर्जी नहीं मंडल थे, तब लतिका जी का झूठ भी पकड़ में आया और उन्होंने कहा कि रेणु ने जाति छुपाकर उनसे शादी की।

हुआ यह कि हिंदी में 'आजकल' का रेणु पर विशेषांक छपा। उसकी सामग्री के संकलन के लिए सहायक संपादक प्रसिद्ध कथाकार पंकज बिष्ट पटना आए और लतिका रेणु का इंटरव्यू लिया। लतिका ने भी उनके बंगाली ब्राह्मण कहकर शादी करने की कहानी दुहराई। इससे रेणु के चरित्र पर कई सवाल उठे।

तो बहुत सारे लेखक, पत्रकार पटना आते और लतिका रेणु का इंटरव्यू लेते। वे दोहरातीं कि रेणु ने झूठ बोलकर उनसे शादी की। मैं रेणु की रचनाओं की तब खोज कर रहा था। कवि के रूप में मेरी पहचान बन चुकी थी। दिल्ली में पंकज बिष्ट से एक बार भेंट हुई तो उन्होंने कहा कि रेणु कथाकार के रूप में बड़े लेखक थे, लेकिन उस बंगाली महिला से झूठ बोलकर शादी की, यह ठीक नहीं है। पहले से उनकी शादी हो चुकी थी, उस पर उनकी छोटी जाति के होने की बात को छुपाना! मैंने कहा कि लेखक की रचना ही महत्त्वपूर्ण है, उसी पर मैं ध्यान दे रहा हूँ।

इधर लतिका का तरह-तरह का वक्तव्य आता रहा। 1984 ई. में फणीश्वरनाथ रेणु की असंकलित रचनाओं की तीन पुस्तकें मेरे संपादन में छपीं। अक्टूबर महीने में मैं अपने महाविद्यालय से दीर्घ अवकाश मिलने पर पटना गया। कदमकुआँ के रेणुजी के समधी रजनीकांत सिन्हा के घर ठहरा हुआ था। एक दिन लतिका जी कहीं ट्यूशन पढ़ाने पैदल जा रही थीं। वे मुझे मिलीं। मैंने उनका चरणस्पर्श किया और उन्हें तीनों पुस्तकें (वन तुलसी की गंध, एक श्रावणी दोपहरी की धूप और श्रुत अश्रुत-पूर्व) भेंट की। उन्होंने मुझे रविवार को अपने घर पर बुलाया। मैं नियत समय पर उनके पास पहुँचा। वे बहुत खुश हुईं कि मैं रेणुजी पर खोजकार्य कर रहा हूँ। उन्होंने मुझे बैठाकर चाय-नाश्ता करवाया। रेणुजी की आधी-अधूरी लिखी बहुत-सारी रचनाएँ दीं, जिन्हें मैंने उतारकर 'रेणु रचनावली' में बाद में संकलित किया। उन्होंने दुमका के एक बंगाली व्यक्ति का नाम लिखकर दिया और बताया कि उनके पास 'नई दिशा' के सभी अंक हैं। 'नई दिशा' रेणु द्वारा संपादित-प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका थी। पर मैं दुमका जाकर उसे प्राप्त नहीं कर पाया।

लतिका जी से मेरी यह पहली और आखिरी भेंट थी। उनका रेणु के प्रति अनन्य प्रेम था। लेकिन वे स्मृति-भ्रम में पड़ने लगी थीं। फिर भी स्नेहमयी स्वरूप ही उनका प्रकट होता था।

हजारीबाग में तब मेरे कई बेहद आत्मीय साहित्यिक रहते थे और मैं बोकारो में चास महाविद्यालय में पढ़ाता था। मैं बोकारो से रामगढ़ और हजारीबाग आता रहता था। 1984 के अंत में एक दिन मैं चंद्रेश्वर कर्ण को साथ लेकर लतिका जी के मायके गया। उनके बड़े भाई सुशील राय चौधरी से लंबी बातचीत हुई। उन्होंने बताया कि रेणु जैसा मानवीय और परोपकारी आदमी तो मैंने देखा नहीं। उन्हीं के कारण मैं अपनी बेटी और बहन की शादी कर पाया। मैंने उनसे पूछा कि कैसे? तब उन्होंने रेणु की दानशीलता की बात बताई। रेणु ने अपनी सब धन-संपत्ति उनकी बेटी की शादी में खर्च कर दी थी। उनसे मैंने पूछा कि क्या रेणुजी ने अपनी जाति और पहले से हुई शादी की बात छुपाकर शादी की थी। अपने को मुखर्जी बताया करते थे। तब उन्होंने कहा कि नहीं तो। रेणु जैसा ईमानदार, सत्यनिष्ठ, संवेदनशील आदमी मिलना कठिन है। रेणु की सभी वास्तविकताओं को मैं, मेरा घर और लतिका सबको पता था।

फिर आगे सुशील राय चौधरी ने बताया कि वे पूर्णिया में मेडिकल रिप्रेजंटेटिव का काम करते थे। अचानक एक दिन शिलानाथ मंडल मिल गए और उन्हें आग्रह कर अपने साथ अपने गाँव औराही हिंगना ले गए। लतिका और रेणु के बीच के स्नेह-संबंध को उनके घर के लोग और सुशील राय चौधरी जानते थे। यहाँ तक कि रेणु के जितने साथी-दोस्त थे, वे सभी जानते थे। लतिका जी ने अपने घर वालों को बता रखा था और रेणु ने अपने घर वालों को। दोनों के बीच

प्रेम का संबंध था और रेणु के मन में कोई कुंठा नहीं थी, इसलिए वे सभी को अपने प्रेम-प्रसंगों के बारे में बताया करते थे। सुशील राय चौधरी आधुनिक विचारों के थे और अंतर्जातीय विवाह-संबंध के समर्थक थे। हिंदू लॉ बिल 1956 ई० में बना और बहुविवाह की प्रथा समाप्त हो गई। लेकिन उसके पहले दूसरी शादी को कोई बुरा नहीं मानता था। पद्माजी को भी लतिका के साथ उनके संबंधों की पूरी जानकारी थी।

सुशील राय चौधरी का औराही-हिंगना जाना 1950 के प्रारंभिक महीनों में हुआ था। वे उनके गाँव, घर, जाति, उनका विवाह सबसे परिचित थे। मैंने कहा कि लतिका जी बहुत सारी बातें ऐसी कह रही हैं, जिससे रेणु के प्रति हिंदी के साहित्यकारों में वितृष्णा फैल रही है। इस पर सुशील राय चौधरी ने कहा कि पता नहीं उसे किसने ये सब करने को बरगलाया है?

मैं चंद्रेश्वर कर्ण के साथ विचार-विमर्श करता हुआ लौट रहा था और कबीर की तरह रेणु को ब्राह्मण जाति का बनाए जाने पर हँस रहा था।

घर लौटकर मैंने लतिका जी को एक लंबा पत्र लिखा कि मैं आपके बड़े भैया सुशील राय चौधरी से मिला और उन्होंने बताया कि मैं और लतिका ही नहीं हमारा पूरा परिवार ही रेणु के कुल-वंश के बारे में जानता रहा है, फिर आपने व्यर्थ का ये सब मिथ्यावाद क्यों फैला रखा है? इस पर लतिका ने अंग्रेजी में मुझे पत्र लिखा कि मैं अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर रहा हूँ। मैंने क्यों उनके बड़े भैया से भेंट की, क्यों ये बातें पूछीं? मैंने फिर उन्हें लिखा कि मैं खोजकर्ता हूँ और सत्य की खोज करना ही मेरा लक्ष्य है। उनसे मैंने फिर मिलने की कोशिश की, परंतु उन्होंने इंकार कर दिया। दरअसल वह बिल्कुल अकेली हो गई थीं। रेणु के बाल-बच्चों के प्रति कभी लगाव नहीं दिखाया। उनकी बेटी नवनीता और उसकी ससुराल के बारे में यह अफवाह फैलाई कि ये लोग उन्हें राजेंद्र नगर के फ्लैट से बाहर निकालना चाहते हैं। जबकि ऐसी कोई बात नहीं थी।

एक बार समीर राय चौधरी ने मुझे बड़े पते की बात बताई कि रेणु जी अपनी दोनों पत्नियों को अपने हृदय में बहुत ऊँचा मान देते थे। बहुत आदर और मान-सम्मान। आदर्शवादी नारियाँ। किंतु ये शरतचंद्र की नायिकाएँ नहीं थीं। बिल्कुल सामान्य नारियाँ थीं। बहुत सीधी-सादी। सुबल गाँगुली को लतिका जी को सिखा-पढ़ाकर उन्हें बंगाली ब्राह्मण बनाने की कोशिश में जब सफलता नहीं मिली तो उन्होंने रेणु को झूठ बोलकर शादी करने का बहाना बनाया। दरअसल रेणु और लतिकाजी का संबंध स्वाभाविक प्रेम पर आधारित था, जहाँ झूठ-फरेब की तो कोई बात ही नहीं थी।

दूसरी तरफ मैथिल ब्राह्मण समाज के एक बड़े समूह ने रेणु को मैथिली ब्राह्मण बनाने की मुहिम जारी रखी। कुछ लोगों ने उन्हें कायस्थ तक बना दिया। 'आजकल' के जुलाई, 1977 अंक में नागार्जुन ने उन्हें कूर्मवंशीय क्षत्रिय लिखा। इसकी क्या आवश्यकता थी?

कोई भी लेखक जाति जैसे संकीर्ण दायरे से बाहर आकर ही बड़ा लेखक बनता है। 'मंडल' को तिलांजलि देकर ही वे रेणु बने थे। उन्हें जातिवादी चक्रव्यूह में फँसाने वाले बाद में बैकवर्ड जाति का लेखक बनाने पर तुल गए।

ऐसे में, उनके साहित्य पर ध्यान केंद्रित न होकर फालतू प्रसंगों पर ज्यादा चर्चा होने लगी। बात फिर भी रुकी नहीं। इस मैदान के सूरमा नए-नए तर्कों के साथ उतरते रहे। दिल्ली से 'पाखी' नाम की पत्रिका निकलती है। इसमें एक बार कहानीकार शिवमूर्ति का इंटरव्यू प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने यह स्थापित किया कि फणीश्वरनाथ रेणु त्रिवेणी संघ से जुड़े थे। अब देखिए कि उनकी यह थ्योरी क्या है? त्रिवेणी संघ तीन जातियों का एक संघ है, जिसमें कोयरी, कुर्मी और यादव जाति के लोग हैं। मैं इस इंटरव्यू को पढ़कर देर तक हँसता रहा था। यह एक और जातिवादी जाल था, जिसमें रेणु जैसे लेखक को फँसाया जा रहा था। जो लेखक जिन पतनशील प्रवृत्तियों से जीवन भर संघर्ष करता रहा, उसी गड्ढे में उसे धकेला जा रहा था।

अब भी लोग पूछते हैं, रेणु की जाति क्या है?

रेणु लेखक थे। लेखक होना ही उनकी पहचान है। उनके पिता की जाति थी और उस जाति का इतिहास था, लेकिन रेणु की पहचान तो एक लेखक की थी।

समीर राय चौधरी ने लतिका का रेणु पर एक संस्मरण टेप किया और 'कृतिबास' (बांग्ला की एक प्रमुख पत्रिका जिसके संपादक सुनील गंगोपाध्याय थे) के रेणु विशेषांक में एक कल्पित नाम देकर प्रकाशित किया। वह कल्पित नाम था-कमलिका महाजन। कई लालबुझक्कड़ खोजते रह गए कि यह कमलिका महाजन कौन है? मैथिली के लेखक सुभाष चंद्र यादव ने इस लेख का बांग्ला से हिंदी में अनुवाद किया और कमलिका महाजन के बारे में पत्र लिखकर पूछा। पर लतिका इसका उत्तर नहीं दे पाई। रेणु की मृत्यु के बाद वे अजीब मानसिक दशा में जी रही थीं। स्मृति-लोप भी हो रहा था। स्मृतियों में बहुत कुछ गड्ड-मड्ड हो रहा था। उनसे बातें कर पंकज बिष्ट के सामने रेणु की जो छवि निर्मित हुई वह एक झूठे आदमी की थी। रेणु का एक खंडित और फरेबी व्यक्तित्व उभरकर आ रहा था। लेकिन लतिका को इसका होश नहीं था।

बिहारी लोगों का जातिवादी कुरूप चेहरा उभरकर तब सामने आया, जब कुछ मैथिल ब्राह्मणों ने रेणु को मैथिली ब्राह्मण बनाने का अभियान शुरू किया। पटना में दरभंगा महाराज का एक भवन है, जिससे दैनिक पत्र 'आर्यावर्त' निकला करता था। नाम था 'आर्यावर्त' लेकिन इसमें संपादक से चपरासी तक मैथिल ब्राह्मण ही काम करते थे। इसी संस्थान से मैथिली भाषा की एक पत्रिका निकलती थी-'मिथिला मिहिर'। इसका रेणु स्मृति अंक निकला। इस अंक में मैथिली के विद्वानों ने यह सिद्ध करने में पूरा जोर लगा दिया कि रेणु मैथिल ब्राह्मण थे।

जब मैं रेणु के देहांत के बाद ये सब परिदृश्य देख रहा था, तो हैरत में था। जो लेखक जिंदगी भर जातिवादी चेतना से जूझता और सामाजिक-सांस्कृतिक समरसता के लिए लड़ता रहा, उसे ही जातिवाद के दलदल में घसीटा जा रहा था। 'मैला आँचल' के पहले खंड के नौवें अध्याय में उन्होंने जिस पात्र के द्वारा अपनी मानसिकता और विचारों को सबसे अधिक प्रकट किया है, वह है प्रशांत। वह रेणु की जातिवादी जड़ता के विरुद्ध किया गया उद्घोष है। रेणु लिखते हैं-

डाक्टर प्रशांत कुमार!

जात?....

नाम पूछने के बाद ही लोग यहाँ पूछते हैं-जात?

जीवन में बहुत कम लोगों ने प्रशांत से उसकी जाति के बारे में पूछा है। लेकिन यहाँ तो हर आदमी जाति पूछता है। प्रशांत हँसकर कभी कहता है,—"जाति? डॉक्टर!"

"डॉक्टर! जाति डॉक्टर! बंगाली है या बिहारी?"

"हिंदुस्तानी!" डाक्टर जवाब देता है।

जाति बहुत बड़ी चीज है। जात-पात नहीं मानने वालों की भी यहाँ जाति होती है। सिर्फ हिंदू कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण है? कौन ब्राह्मण! गोत्र क्या है? मूल कौन है? शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना! लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका पानी तक नहीं चल सकता।

तो रेणु की भी जाति की तलाश होने लगी। कुछ लोग उन्हें बंगाली ब्राह्मण बनाने पर तुले थे तो कुछ लोग मैथिल ब्राह्मण। दरअसल जातिवाद ब्राह्मणवाद का ही एक रूप है। धारणा यह है कि कोई ब्राह्मण है, तभी श्रेष्ठ है। दूसरे वर्ण का लेखक हो ही नहीं सकता, यह जड़ स्थापना लोगों के मन में घर कर गई है।

जब मैं रेणु की जीवनी लिखने की बात करने लगा तो कई लोगों ने मुझे आगाह किया कि रेणु जी की बाँह में जो गोदना था-F.N.M., उसका पूरा नाम हुआ, फणीश्वरनाथ मिश्र। अब बताइए, उनके नाम के साथ मिश्र कितना शोभायमान होता है। कई बंगालियों ने कहा-फणीश्वरनाथ मुखर्जी ही लिखिएगा। मंडल कमीशन आने के बाद बिहार चार वर्णों में बँट गया-फारवर्ड कास्ट, बैकवर्ड कास्ट,

सिड्यूल्ड कास्ट और मुस्लिम कास्ट। राजनीति की एक शब्दावली ही बन गई कास्ट। रेणु जिन पतनशील प्रवृत्तियों से लड़ रहे थे, उसका ही शिकार हो गए थे। 9 दिसंबर, 1966 के 'दिनमान' में उन्होंने एक टिप्पणी लिखी थी-'जातिवाद और भुखमरी'। भुखमरी गरीबी की सबसे दयनीय दशा है। इसके प्रारंभ में ही वे लिखते हैं,—"बिहार की राजनीति जातिवाद और भुखमरी के दो पाटों के बीच दबी हुई है। एक तरह से बिहार की समस्त जनता ही इस संघर्ष में कुचल दी गई है। बिहार का संकट पुराना है।"

यह संकट बिहार ही नहीं कमोबेश पूरे देश का है। लेकिन बिहार और उत्तर प्रदेश में तो यह चरम पर है। हर जाति को अपनी ओर खींचने के लिए सभी पार्टियाँ जोड़-जुगाड़ करती रहती हैं। साहित्यकारों की एक जमात भी इस जातिवाद के चक्कर में पड़कर अपनी महत्ता खोज रही है। एक साहित्यकार ने फोन करके मुझे कहा था कि अब बैकवर्ड राज कायम हुआ है तो रेणु का एक बड़े लेखक के रूप में सम्मान होगा। चूँकि रेणु बैकवर्ड जाति के थे, इसलिए उन्हें बहुत दबाया गया और सताया गया।

दरअसल ऐसे ही विचारों से रेणु जीवन भर लड़ रहे थे। उनके साहित्य में सामंतवादी जकड़न से जनता को उबारने की छटपटाहट है।

लेकिन जात-पात को न मानने वाले रेणु की भी जाति थी और क्या थी? बहुत सारे लेखकों की मान्यता है कि इस बारे में भी बताया जाए ताकि रेणु को जातिवादी उलझनों से निकाला जाए। रेणु जाति से महत्त्वपूर्ण पेशा को मानते थे। वे लेखक भी थे और नागार्जुन के शब्दों में दर्दी किसान भी थे। खेती करने में उन्हें कविता लिखने का आनंद आता था। खेती-किसानी से ही उनका गुजर-बसर होता था और वे अज्ञात कुलशील लोगों की कथा लिखा करते थे। दिनकर ने ऐसे ही मनुष्य के बारे में लिखा है—

मैं उनका आदर्श नहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे।
पूछेगा जग, किंतु पिता का नाम न बोल सकेंगे।

रेणु ऐसे अबोले मनुष्यों को शब्द दे रहे थे। हाशिए पर पड़े हुए, उपेक्षित, भुखमरी के शिकार मनुष्यों की करुण कथा लिख रहे थे।

तो रेणु की जाति क्या थी, कुछ तो कथा रही होगी। फिर भी रेणु की जाति पूछने वालों के लिए मैं भारत में जाति की परंपरा पर अपनी जानकारी को यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में आख्यान की अद्‌भुत परंपरा रही है। वैदिक काल के मनुष्य कृषि-संस्कृति से सम्पृक्त थे। उन्होंने मनुष्य को चार कोटियों में विभाजित किया था, जो कर्म आधारित था। इसे ही वर्णाश्रम कहा जाता था। यह आश्रम स्थायी नहीं था।

वर्ण का मतलब होता है रंग। तो चारों वर्ण के लोग चार रंग के कपड़े पहनते थे। कुछ लोग ज्ञान, कला, विद्या की साधना में रत रहते थे-ये ब्रह्म की शक्तियों की खोज करते थे और ब्राह्मण कहे जाते थे। शासन-प्रशासन, सुरक्षा-प्रबंध में लगे लोग क्षत्रिय, कृषि-कार्य, पशु-पालन, बागवानी करने वाले लोग वैश्य और अपराध करने वाले को शूद्र कहा जाता था। आदिम युगीन इस अवधारणा में वंशवाद का पदार्पण धीरे-धीरे हुआ। भारत में सरस्वती नदी के किनारे बसी छोटी-सी आबादी को विकसित रूप दिया मनु ने। इसी मनु को सूर्य का पुत्र माना गया और उनके वंश को सूर्यवंश। उनके ही वंश के लोगों ने दुनिया के अनेक भू-भागों में जाकर प्राचीन काल में सभ्यता का विकास किया। इस वंश के राम तो किंवदंती पुरुष बनकर जन-जन में व्याप्त हो गए। पुरुरवा से चंद्रवंश की शुरुआत हुई। बहुत बाद में मगध का राजा जरासंध, यदु के वंशज यादव, कुरु के वंशज कौरव आदि हुए। हैहयवंशी क्षत्रिय आज कलवार, शौंडिक, तैलिक आदि जातियों में उपस्थित हैं। ये क्षत्रिय से वैश्य बन गए हैं। उसी प्रकार उग्रसेन महाराज चक्रवर्ती सम्राट थे, क्षत्रिय थे, उनके वंशज अग्रवाल समाज के लोग आज वैश्य कहे जाते हैं। भारत में अनेक तरह के अन्य वंश भी रहे हैं-अग्निवंश, नागवंश आदि। कायस्थ

जाति भी क्षत्रिय वर्ण से निकली है। राजघरानों में जो लोग वित्त-प्रबंध को देखते थे, वही कायस्थ कहे गए।

इन्हीं तमाम तरह की क्षत्रिय जातियों में राजस्थान में कुछ लोगों को शासन व्यवस्था की दीक्षा देकर राजपूत जाति का निर्माण किया गया।

सूर्यवंश के शेष लोग बाद में अलग-अलग जाति-समूहों में बँट गए। इनमें दो प्रमुख जाति-समूह है कोयरी और कुर्मी। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य कोयरी जाति से आते थे। उन्हें चाणक्य ने योग्य बनाकर मगध की गद्दी पर बिठाया। यही कारण है कि आज बहुत सारे कोयरी लोग, जो अपने को कुशवाहा, बनाफर, डांगी आदि लिखते थे, अब अपने नाम में मौर्य लिखने लगे हैं। राम के वंशजों में सबसे सशक्त जाति है कुर्मी। कर्म को ही आधार बनाने के कारण ही इसे कुर्मी कहा जाता है। अवध से बहुत बाद में विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बसे अवधिया कुर्मी उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक जगहों पर रहते हैं और बेहद विकसित अवस्था में हैं। कुर्मी एक जाति समूह है। इसे ही गुजरात में पटेल, महाराष्ट्र में भोंसले, आंध्र में नायडू कहा जाता है। शिवाजी इसी कुर्मी जाति के थे। कुर्मी जाति के समानांतर सूर्यवंशी क्षत्रिय में धानुक जाति का विकास हुआ।

सूर्यवंशियों में धानुक लोग राम को अपना आदर्श मानकर तीर-धनुष से सज्जित होकर रहते थे। वे तीर-धनुष का निर्माण भी करते थे। प्राचीन काल में प्रसिद्ध योद्धा धनक हुए। वे राजा थे। उनके चार पुत्र हुए-कृतकार्य, कृताग्न, कृतवर्मा और कृताजा ने राजा धनक के नाम से अपने वंश को चलाया। यह कुर्मियों का सहवर्ती जाति-समूह था, जो पूरे भारत, नेपाल, बंगाल में फैला था। झारखंड के धानुक गोरे और सुंदर होते हैं। वे अपने नाम के साथ सिंह लिखते हैं। बिहार और बंगाल के धानुक कुर्मी के रूप में जाने जाते हैं। ये कुर्मी जाति की तरह महतो, मंडल, राय, विश्वास, पटेल आदि लिखते हैं।

भारत में जाति-प्रथा पर बहुत सारी पुस्तकें लिखी गई हैं। अमृतलाल नागर ने 1975 ई० में 'नाच्यौ बहुत गोपाल' नामक एक उपन्यास लखनऊ के मेहतर जाति को आधार बनाकर लिखा। इसमें उन्होंने यह स्थापित किया कि विभिन्न क्षत्रिय जातियों को मुस्लिम शासन-काल में गुलाम बनाकर उनके सामने दो शर्तें रखी गई कि वे मुसलमान बन जाएँ, नहीं तो हिंदू बने रहना है तो मेहतर बनकर जीना होगा। इन लोगों ने मेहतर बनना पसंद किया। उनका एक शोध-पत्र 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुआ। इन क्षत्रिय जातियों में धानुक जाति का भी उल्लेख था, जिनको लखनऊ में

मेहतर बना दिया गया था। उनके शोध-पत्र से असहमति जताते हुए भारतीय धानुक जाति संघ के सभापति सुंदरलाल धानवीक का एक पत्र 9 नवंबर, 1975 के 'धर्मयुग' में छपा। उन्होंने सबसे पहले अमृतलाल नागर को दलितों पर उपन्यास की रचना करने पर बधाई दी, फिर कुछ नई जानकारियाँ प्रस्तुत कीं-धानुक वर्ग के बारे में उनकी (अर्थात् नागर जी की) सूचनाएँ एकांगी हैं। वस्तुतः धानुक केवल लखनऊ में नहीं, बल्कि उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में भी काफी संख्या में हैं। उनका कार्य मेहतरों का नहीं रहा है। राहुल सांकृत्यायन तथा अन्य विद्वानों का संदर्भ देते हुए उन्होंने कहा,—"यह धनुष-बाण चलाने वाली एक पुरानी लड़ाकू जाति रही है। कुछ विद्वानों ने इसको कुरमी तथा कुछ ने क्षत्रिय वंश से संबंधित माना है। आज इस जाति के अनेक लोग उच्च शिक्षा प्राप्त हैं और ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित हैं।"

सुंदरलाल धानवीक का शोध-पत्र पढ़कर नागर जी ने अपनी अवधारणा में काफी सुधार किया। नागर जी के अध्ययन एवं अनुभव का क्षेत्र लखनऊ के आस-पास का ही रहा है। इसलिए वे वहाँ के अन्य क्षत्रिय जातियों के साथ धानुक जाति के लोगों के मेहतर या भंगी बना दिए जाने के बारे में जान पाए। जाति की गरिमा भंग हो जाने के कारण उन्हें भंगी कहा गया। वे भंगी होकर भी अपनी महत्ता की रक्षा कर पाए और मेहतर कहलाए। राहुल सांकृत्यायन ने पूरे भारत का भ्रमण कर अनेक जातियों के गौरवशाली इतिहास का पता लगाया और धानुक जाति को कोयरी तथा कुर्मियों के समकक्ष बताया। इन तीनों जातियों के प्राचीन युग में क्षत्रिय होने के उन्होंने कई प्रमाण भी दिए।

धानुक एक जाति नहीं, जाति-समूह है जो भारत के लगभग सभी हिस्सों में पाया जाती है। अभी तक खोज में 60 तरह के धानुक जाति-समूह का पता चला है। विभिन्न जगहों में इस जाति के लोगों के अलग-अलग नाम है, जो इस प्रकार हैं-अटकन, इंदौरा, नूगारिया, निनानिया, माबर, पचरवाल, बगरी, बवालिया, बुमरा, किराद, खाटक, लदवाल, कायत, सुरालिया, बमानिया, टोंक, खरेरा, देहदन, मुंडारिया, जाट धानुक, सोलिया, गुरैया, दबल, कटारिया, कठौरिया, भांड, बदगुजर, खुंडिया, खंडेलवाल, भोसाद, फरंद, दागल, बोकेद, होटला, मोरवाल, तुरकिया, खास, तुर्र, जरोलिया, धालोद, भोपद, चौरा, शिवम, बचरवाल, रंगभरा, भुरतिया, गूंदला, जान्ध, सरोहा, बरवाल, खारोद, खरकटा, सीलम आदि।

इन धानुक समूह की जातियों के अलग-अलग जगहों पर देशभर में उपस्थिति रही है। कोशी अंचल के रहने वाले धानुक भी कई तरह के हैं। उनमें से कुछ अपने को कुर्मी मानते हैं। रेणु जी की जाति भी कुर्मी धानुक थी। ये अपना मंडल उपनाम लिखते थे। अन्य धानुक जातियों में कोशी अंचल के निवासी जयसवाल कुर्मी, मघहिया कुर्मी, सिलोटिया कुर्मी, खोपड़िया कुर्मी, गेंधुवा कुर्मी कहलाते हैं। धानुकों की ये सभी उपजातियाँ अपने में ही शादी-विवाह करती थीं। इसके कारण बहुत परेशानियाँ होती थीं। जितने तरह के धानुक हैं, सभी आपस में मिलजुल कर रहें और वैवाहिक संबंध स्थापित करें, इस बात की आवश्यकता को ध्यान में रखकर शिलानाथ मंडल ने 1950 ई० के प्रारंभ में कटिहार जिले के नोहरी तिलास नामक जगह में एक बड़ी सभा की थी और कोशी अंचल के सभी तरह के धानुक समाज के लोगों को इसमें आमंत्रित किया था। रेणु अपने वृद्ध पिता का सहारा बनकर साथ उपस्थित थे। उन्होंने सभी तरह के धानुक जातियों के बीच रोटी-बेटी का संबंध स्थापित करने का प्रस्ताव रखा, जिसे सर्वसम्मति से पास किया गया।

रेणु जी के पूर्वज मंडल उपनाम लिखते थे। एक बार नवेंदु घोष को रेणु जी ने बताया था। 'तीसरी कसम' की शूटिंग के सिलसिले में रेणु जी बम्बई गए हुए थे। नवेंदु घोष उसके स्क्रिप्ट राइटर थे। उन्होंने अपने घर पर रेणुजी को भोजन के लिए बुलाया। नवेंदु घोष लिखते हैं-

रेणु जी मेरे घर दाल, भात, बझका खाने के लिए आए। बातों-बातों में मेरी पत्नी ने बताया,—"मैं उत्तरी

बंगाल के मालदह की लड़की हूँ।" तो उन्होंने सिर हिलाया और कहा,—"वही तो!"

मैंने सवाल लिया,—"इसका क्या मतलब हुआ?"

रेणुजी ने कहा,—"तभी तो अनजाने में ही मुझे अपना-सा लग रहा था। हम लोगों का आदि निवास मालदह का हरिश्चंद्रपुर है। हालाँकि यह बहुत साल पहले की बात है।"

अर्थात् रेणु जी के कोई पूर्वज जमीन-जायदाद के मोह में पूर्णिया आकर बस गए थे।

चूँकि उनके पूर्वज जब मालदह जिले से औराही-हिंगना में आकर बसे थे तो अपने साथ कृतिबास रामायण लेकर आए थे और बांग्ला भाषा के साथ-साथ स्थानीय भाषिक संस्कार में रँगते गए थे। रेणु के पूर्वजों के बारे में जो जानकारी मिलती है, उनमें उनके प्रपितामह जानकी मंडल का जिक्र आता है। जानकी मंडल के तीन पुत्र हुए-सनफूल मंडल, लैमड़ मंडल और अमृत मंडल। अमृत मंडल रेणु जी के दादा थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। प्रथम पत्नी से गोविंदनाथ मंडल और दूसरी पत्नी से शिलानाथ मंडल और दिलानाथ मंडल का जन्म हुआ। जब अमृत मंडल की मृत्यु हुई, तब गोविंदनाथ मंडल अपने सौतेले भाइयों से बँटवारा कर अलग हो गये। शिलानाथ मंडल के तीन पुत्र हुए-(1) फणीश्वरनाथ मंडल, (2) हरिहरनाथ मंडल और (1) महेंद्रनाथ मंडल। दिलानाथ मंडल के चार पुत्र हुए-(1) उपेंद्रनाथ मंडल, (2) जगदीश मंडल, (3) नगेंद्रनाथ मंडल और (4) शंभुनाथ मंडल।

रेणु जी के प्रपितामह जानकी मंडल के तीन छोटे भाई थे-रतन मंडल, श्याम मंडल और सत्तल मंडल। औराही गाँव में इन चारों भाइयों की वंशबेल फैलकर एक बड़ी आबादी में परिणत हो गई है। औराही गाँव में जानकी मंडल का कुनबा ही फैला हुआ है। आबादी बढ़ते-बढ़ते हिंगना टोले से मिल गई है। रेणु जी औराही और हिंगना दोनों को मिलाकर चलते थे और जीवन भर उन्होंने दोनों को समान दर्जा दिया।

शिलानाथ मंडल रेणु के पिताजी थे और पन्नो देवी उनकी माँ थी। पन्नो-पन्ना शब्द से निर्मित है। उनके सात बच्चे हुए-तीन बेटे और चार बेटियाँ, जिनका क्रम इस प्रकार है—

लुटकी या लुचकी शिलानाथ मंडल की सबसे बड़ी बेटी थी। उसके जन्म के तीन वर्षों के बाद रेणु का जन्म हुआ। शिलानाथ मंडल ने बड़ी बेटी का नाम लतिका रखा था, लेकिन गाँव में नाम का रूपांतरण कैसे होता है, यह दिलचस्प प्रसंग है। लतिका को लोग लटिका कहने लगे। फिर कुछ लोग लुटकी तो कुछ लोग लुचकी। जब वह बारह साल की हुई तब उसकी शादी पूर्णिया शहर के समीप कस्बा प्रखंड में बरेटा गाँव में झिलकू विश्वास से हुई। बरेटा गाँव गढ़बनैली से करीब है। रेणु जब स्कूल में पढ़ते थे तब अपनी दीदी से मिलने प्रायः जाते रहते थे। लतिका और रेणु का चेहरा बेहद साम्य रखता था। उनके चार बच्चे हुए-सुशीला, सत्यनारायण, तेजनारायण और निर्मल। चारों कुशाग्र बुद्धि के। तीनों बेटे उच्च शिक्षित। रेणु के जन्म के दो वर्षों के बाद उनके छोटे भाई हरिहर का जन्म हुआ। उनकी शादी हुई, लेकिन मलेरिया से वह काल-कवलित हो गए। उनकी पत्नी लम्बी उम्र जीकर मरीं।

हरिहर के बाद बुली का जन्म हुआ। बुल्ली नाम से लोग पुकारते थे, लेकिन उनका शुद्ध नाम भूलवती शिलानाथ मंडल ने रखा था। रेणु ने उनके नाम में भारती जोड़कर भूलवती भारती कर दिया।

भूलवती भारती रेणु से तीन-चार साल छोटी थी। उनकी शादी पूर्णिया के करीब के गाँव दसपत्तर के फागू विश्वास से हुई। उनके चार बेटे और दो बेटियाँ हुईं। उनके बेटों के नाम हैं-वीरेंद्रनाथ विश्वास, उमेश विश्वास, महेंद्र विश्वास और सुबोध विश्वास। अरुणा और विमला दो बेटियाँ हैं। रेणु ने अपनी भगिनी विमला की शादी अपने गाँव के सबसे अमीर रासमोहन विश्वास के एम०बी०बी०एस० बेटे डॉ० बालगोविंद विश्वास के करवाई थी।

रेणु के दूसरे भाई महेंद्रनाथ का जन्म भूलवती भारती के जन्म के दो वर्ष बाद हुआ। इनकी शादी भी नहीं हो पाई थी और मलेरिया से 1950 ई० में पिता की मृत्यु के ठीक पंद्रह दिनों के बाद हो गई।

महेंद्र के बाद उनकी दो छोटी बहनों का जन्म हुआ–महथी और मानो।

महथी का शुद्ध नाम महती है। इनकी शादी सत्यनारायण विश्वास से अररिया के रहटमिना बरकुरवा गाँव में हुई। इनके छह बच्चों के नाम इस प्रकार हैं–दिलीप विश्वास, कल्पना देवी, पुष्पा देवी, रचना, दूर्वा और बेला।

सबसे छोटी बहन मानो का शुद्ध नाम मनोरमा है। इनकी शादी महमदिया गाँव के लक्ष्मी नारायण विश्वास से हुई। इनकी चार संतानों के नाम इस प्रकार हैं–सुरेंद्र विश्वास, नीलम, अलका और पूनम।

रेणुजी ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'ठेस' में इसी मानो दीदी का जिक्र किया है।

रेणु के सभी भाई-बहनों में अभी मानो दीदी ही जीवित हैं। वे अपनी ससुराल से अधिक आजकल औराही–हिंगना में ही रहती हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु जब स्कूल में पढ़ते थे, तब उनकी पहली शादी रेखा देवी से हुई। वह महमदिया गाँव से चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित बलवा नामक गाँव की रहने वाली थी। उनसे एक बेटी का जन्म हुआ, जिसका रेणु जी के मित्रों ने कविता नाम रख दिया। उनको लकवा हो गया था, जिससे उनकी बाद में मृत्यु हो गई। 1950 ई० में महमदिया गाँव के खूबलाल मंडल की बाल विधवा बेटी पद्मजा से उनकी शादी शिलानाथ मंडल ने करवा दी। इन्हीं से रेणु के तीन बेटे और चार बेटियाँ हुईं। 1952 में रेणु की लतिका राय चौधरी से शादी हुई, जिनसे उनकी कोई संतान नहीं है।

फणीश्वरनाथ रेणु की संतानों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है–

बड़ी बेटी कविता राय की शादी महमदिया के पृथ्वीचंद मंडल से हुई। इनकी संताने हैं–शिप्रा, मनोज कुमार मंडल, विप्रा, मधु, बरखा और सुनील कुमार मंडल। कविता राय का पोता राहुल राज ने अपने उपनाम में रेणु जोड़कर लेखन-कार्य करना शुरू किया है। यह मुझसे भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ है और मुझको अपना साहित्यिक गुरु मानता है। मुझे लगता है रेणु के वंश में राहुल राज 'रेणु' ही है जो लेखन की परंपरा को आगे बढ़ाएगा।

पद्मजा को लोग पद्मा के नाम से जानते हैं। जब उनसे रेणु को प्रथम पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई तो नाम रखा पद्मपराग राय। पद्मजा से पद्मपराग राय हुए, लेकिन घर का पुकारू नाम वेणु और अपनी पत्नी को वे बेनुमाय कहकर बुलाते।

वेणु की पत्नी का नाम वीणा राय है। उनकी पाँच संतानें हैं–शबाना, इसका जन्म जब हुआ तब शबाना आजमी के नाम पर रेणु जी ने इसका नाम रखा। फिर वेणु की दूसरी

संतान का नाम उन्होंने नीलोत्पल रखा। यह 'मैला आँचल' में प्रशांत के बेटे को याद करता हुआ रखा गया। इसे नीलू के नाम से लोग जानते हैं। तीसरी संतान का नाम निशांतकर राय है। इसको घर के लोग फंटू कहते हैं। चौथी संतान जरीना राय है और पाँचवीं संतान अनंत कुमार राय है, जिसे घर के लोग मंटू कहते हैं।

शबाना राय की शादी दिनेश कुमार मंडल से हुई है उसके चार बच्चे हैं–पीयूष, उत्सव उर्फ गोलू, कृष उर्फ भोलू तथा पूर्वा कुमारी।

रेणु के पोते नीलोत्पल उर्फ नीलू की पत्नी का नाम प्रियंका है। उसके एक बेटा और एक बेटी है। बेटे का नाम अमन है और लोग प्यार से उसे बंटू कहते हैं। बेटी का नाम मीमांसा है और पुकारू नाम चिंकी है। बंटू के दो बेटे हैं–इमोन उर्फ नंदू तथा सिमोन उर्फ कल्लू।

जरीना के पति का नाम प्रेम कुमार मंडल है। उसके तीन बच्चे हैं–जारा प्रकाश, मोहनीश तथा युवराज। वेणु के छोटे बेटे अनंत की पत्नी का नाम अमृता है। इसका एक पुत्र है–अक्षित, लेकिन घर के लोग इसे अंगद कहते हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के दूसरे बेटे हैं अपराजित राय। लेकिन ये अप्पू के नाम से प्रसिद्ध हैं। अप्पू जी की पत्नी का नाम रीता राय है। इनकी तीन बेटियाँ हैं और एक बेटा। बेटे का नाम अनुराग है। लोग प्यार से उसे बंटू कहते हैं। बड़ी बेटी रजनीगंधा के पति हैं दीपक और इसकी बेटी का नाम प्रियांशी उर्फ दीया है तथा पुत्र के दो नाम हैं–दक्षित और दशरथ सिंह। अप्पू जी की दूसरी बेटी का नाम अभिलाषा है। इसे झरना नाम से पुकारते हैं। झरना के पति हैं–अंशु नारायण तथा एक पुत्र है–भूमि आनंद। चौथी संतान है–मोनालिषा उर्फ मोना।

फणीश्वरनाथ रेणु के तीसरे पुत्र हैं–दक्षिणेश्वर प्रसाद राय। इन्हें प्यार से लोग पप्पू कहते हैं। अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ाने के लिए आजकल कहानी–लेखन कर रहे हैं। इनकी पत्नी का नाम है स्मिता। इनकी दो संतानें हैं। बेटा अभिराज उर्फ संटू और बेटी दीक्षिता उर्फ दिशा।

रेणु जी की चार बेटियों के नाम इस प्रकार हैं–नवनीता, निवेदिता, अन्नपूर्णा और वहीदा।

नवनीता और निवेदिता की शादियाँ रेणुजी ने 1975 में की थीं। उनके देहावसान के बाद वेणु ने अपनी दोनों छोटी बहनों की शादी की।

नवनीता की शादी पटना के रजनीकांत सिन्हा के पुत्र अरुण कुमार से हुई है। अरुण कुमार अब दिवंगत हो गए हैं। नवनीता के दो पुत्र हैं–प्रशांत कुमार उर्फ मुन्नू तथा विक्रांत कुमार उर्फ विक्की। प्रशांत कुमार की पत्नी का नाम अमृता उर्फ मिन्नी है और उसका एक पुत्र है–अथर्व, जिसका पुकारू नाम आरव है।

निवेदिता की शादी औराही गाँव से सटे शंकरपुर के गणेश विश्वास से हुई है। उसके दो बेटे हैं–यशपाल और शिशुपाल तथा एक बेटी है–मीनाक्षी उर्फ मिन्नी।

अन्नपूर्णा की शादी फारबिसगंज के पास झिरवा गाँव में हुई है। उसके पति का नाम विश्वनाथ विश्वास है। उसकी बेटियाँ हैं–अर्चना, अर्पण, बिनाका, शिबाका, सुनयना। एक पुत्र है–अभिनव आनंद।

रेणु जी ने अपनी सबसे छोटी बेटी का नाम वहीदा रहमान के नाम पर रखा था और वे कहा करते थे कि इसकी शादी किसी मुसलमान से करूँगा। वेणु जी ने उसकी शादी कटिहार जिले के कबैया नामक गाँव में भागवत प्रसाद मंडल से की। उसका एक बेटा हैं–मयंक और एक बेटी है–चारुशिला।

तो यह है फणीश्वरनाथ रेणु की वंशावली। एक जीता–जागता संसार। सभी अच्छे मनुष्य हैं। रेणु की तरह किसी में जातिवादी चेतना नहीं है। रेणु की तरह ही उनके वंश के लोग जातिवादी चेतना से ऊपर उठकर मानवीय धरातल पर जीते हैं। कोई भी उनके घर जाए, उसे मान–सम्मान करते हैं। रेणु की संवेदनशीलता उनके वंश के लोगों में बरकरार है।

पहले औराही हिंगना में बहुत सारे देश–विदेश के शोधार्थी और लेखक आते थे, उन्हें गाँव पहुँचने में बहुत

परेशानी होती थी। उनके बाँस-फूस के मकान में रहने में भी मुश्किल थी। लेकिन इधर बिहार सरकार ने उनके गाँव की सड़क बना दी है। उनके गाँव में एक 'रेणु स्मृति भवन' का निर्माण कर दिया है, जिसमें सभा-समारोह करने की व्यवस्था है तथा अतिथियों के निवास के लिए कमरा बना है।

औराही-हिंगना अब रेणु गाँव के रूप में जाना जाता है और एक साहित्यिक तीर्थ हो गया है।

रेणु के परिवार ने उस फूस के मकान को सुरक्षित रखते हुए अपना पक्का मकान बनवा लिया है। रेणु का गाँव पूरी तरह बदल चुका है, लेकिन रेणु की बातें वहाँ के वातावरण में अनुगूँजित होती रहती हैं।

आज भी सौरा नदी का उद्‌गम स्थल वैसा ही है। औराही-हिंगना के पूरब में डेढ़ हजार एकड़ में फैले अहमदनगर चौर ही सौरा नदी का उद्‌गम स्थल है। सौरा नदी की सहायक धाराओं में एक धारा दुलारीदाय की है। गाँव के लोग उसे दुलारदेवी कहते हैं। रेणु ने सौरा नदी की तलहटी में सतह से दस फीट नीचे एक भवन सह मंदिर के अवशेष खोज निकाले थे। वहाँ से कई पुरातात्विक अवशेष भी मिले थे। इन्हीं अवशेषों में रेणु गाँव के समीप भोलापुर मठ में एक खंभा रखा हुआ है, जो काले और चमकदार पत्थर से निर्मित है। रेणु की खोज का यह गवाह है। इस सौरा नदी को विष्णुपुराण में सकृनदी के रूप में याद किया गया है। सौरा नदी के जल का स्वभाव धान की खेती के लिए उपयुक्त माना जाता है। औराही-हिंगना के जीवन में हरियाली भरने वाली यह नदी आज भी अपने ढंग से रेणु की एक अलग कथा कहते हुए बह रही है, बहती ही जा रही है।

औराही हिंगना के खेतों में हरियाली फैली रहती है। कई तरह की फसलों की खेती होती है। रेणु का पूरा परिवार जिसकी आबादी बहुत बड़ी हो गई है, आज भी कृषि पर ही निर्भर है। उनके घर के लोग अपनी पुश्तैनी परंपरा से प्यार करते हैं और किसी ने नौकरी करने की कोशिश नहीं की।

औराही हिंगना शुद्ध रूप में भारतीय गाँव है-लोक रंग और लोक-परंपरा से संपन्न। चारों तरफ पेड़-पौधे और तरह-तरह की चिड़ियाँ और पक्षियों का उन्मुक्त विचरण। राग और संगीतबद्ध ग्रामीण चेतना। यह संस्कृति मूलक गाँव है, जिसके कारण आधुनिकता के प्रवेश करने के बाद भी यह अपनी अस्मिता को बचाए हुए है।

कृषि संस्कृति में पला-बढ़ा गाँव आज भी जीवंत है। इसमें धूल, फूल, शूल, चंदन सब हैं। अपनी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ अंत: संघर्षरत भारत के एक भरे-पूरे गाँव की कहानी कहता।

रेणु के साहित्य की लोकप्रियता जैसे-जैसे वैश्विक स्तर पर बढ़ती चली गई है, इस गाँव को एक साहित्यिक तीर्थ के रूप में देखने देश-दुनिया के लोग आते रहते हैं। वे नहीं जानते कि रेणु की जाति क्या थी? वे रेणु को बस लोकबद्ध लेखक के रूप में जानते और मानते हैं।

लेखक की जाति क्या होती है? लेखक-समाज के लोग बस लेखक ही हैं। लेकिन उनके कुल-वंश को जानने के लिए मैंने विस्तार से बताया है। रेणु को ठीक तरह से जानने के लिए उनका साहित्य ही साक्ष्य है कि वे किस तरह के लेखक हैं।

रेणु ने अपने साहित्य में बहुत सारे रहस्य छोड़ दिए हैं। उनके सही अर्थ तक पहुँचने के लिए बहुत सारे संदर्भ भी हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए जूझने की आवश्यकता है।

रेणु की हर रचना में स्थूल विवरणों के बीच सूक्ष्म चेतना है, उसे पाना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए।

रेणु की जाति के बारे में जिज्ञासा है तो सब कुछ जानकर भी इसी स्थापना को स्वीकार करना है कि रेणु रचनाकार थे, शब्द-शिल्पी थे। और यही उनकी जाति थी।

❖

वरिष्ठ साहित्यकार।
यशवंतनगर, हजारीबाग-825301, मो० : 6207264847

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कला उद्धारक राजर्षि शाहू महाराज

— डॉ. वाढेकर रामेश्वर महादेव

करवीर रियासत में कलाकार को आश्रय मिलता था इस कारण बाहर से कलाकार आने लगे। नाटक-मंचन के लिए थिएटर कम पड़ रहे थे, इसलिए शिवाजी थिएटर, पॅलेस थिएटर का निर्माण किया। पैलेस थिएटर को स्वतंत्रता के बाद 'केशव राव भोसले' नाम दिया गया। क्योंकि केशव राव भोसले, नारायणराव राजहंस, शंकरराव सर नाईक आदि को प्रसिद्धि मिली थी। इनमें केशवराव भोसले सबसे ज्यादा प्रसिद्ध थे। 'शाकुंतल' नाटक में बालगंधर्व ने शकुंतला की भूमिका निभाई थी। इस नाटक का मंचन मिरज में हुआ। इस नाटक को देखने के लिए कई लोग आए थे, इनमें राजर्षि शाहू महाराज भी थे।

हिंदुस्तान में प्राचीन समय से कई कलाएँ प्रचलित थीं, जिनमें मल्लविद्या, संगीत, भजन, चित्रकला, नाट्यकला, सिनेमा, पोवाडा, जलसा, तमाशा, लावणी, गजल आदि प्रमुख हैं। उन कलाओं को आश्रय मिलता था। इसी कला का प्रभाव राजर्षि शाहू महाराज पर पड़ा। उन्होंने करवीर रियासत में कलाओं को राजाश्रय दिया। कलाकार को आर्थिक सहायता की। इसी वजह से कई कलाकार सामने आए। करवीर नगरी 'कलानगरी' हो गई। शाहू महाराज ने कलाकार को प्रोत्साहन दिया, इस कारण कला में प्रगति हुई और आज भी हो रही है। अनेक कलाकार वर्तमान में भारत का नाम पूरे विश्व में रोशन कर रहे हैं, इसका श्रेय राजर्षि शाहू महाराज के कार्य को जाता है।

संगीत :

शाहू पूर्वकाल में कीर्तन, तमाशा, लावणी, साकी आदि लोक संगीत अस्तित्व में था। आबा साहब घाटगे संगीत के भोक्ता थे। उन्हें लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत में रूचि थी। आबा साहब ने 1883 में 'कोल्हापुर गायन समाज' नामक संस्था की स्थापना की। वह तत्कालीन समय की हिंदुस्तान की संगीत क्षेत्र की प्रथम संस्था थी। इसी की प्रेरणा से करवीर में 1892 में 'देवल क्लब' की स्थापना हुई। इस संस्था को राजर्षि शाहू महाराज ने आर्थिक सहायता की। इस कारण संगीत के क्षेत्र में प्रगति हुई। राजर्षि शाहू महाराज ने अल्लादिया खाँ, हैदर खाँ, मंजी खाँ, भूर्जी खाँ, नसीरुद्दीन खाँ, भास्कर बुवा बखले, केसरबाई केरकर, मोगुबाई कुर्डीकर, जसदनावाला, जनीवाला, गोविंद बुआ, निवृत्ति बुआ, सरनाईक, रजब अल्ली खाँ, मुगेल खाँ, हैदर बख्श खाँ, अब्दुल करीम खाँ, अंजनी बाई मालपेकर, लक्ष्मी बाई जाधव आदि को आश्रय दिया। तत्कालीन समय में केसरबाई केरकर अखिल भारतीय ख्याति की गायिका हुई। इसी कार्य को देखकर रविंद्र नाथ टैगोर ने 'सुरश्री पुरस्कार' से सम्मानित किया। स्वतंत्रता के बाद उन्हें पद्मभूषण पुरस्कार से नवाजा गया। इन्हीं के साथ

लक्ष्मीबाई जाधव हिंदुस्तान में 'गान चंद्रिका' नाम से चर्चित हुई। बाद में वे बड़ोदा दरबार की गायिका बनी। इस तरह से करवीर रियासत संगीत क्षेत्र का विश्वविद्यालय बना। शाहू कालीन संगीत के संदर्भ में एस.ए. कुलकर्णी कहती है,—"आज देश में विविध संगीत घरानों के गायक-गायिका कीर्तिमान हुए हैं। करवीर नगरी में ही उनकी वंश-परंपरा संवर्धित हुई है और राजर्षि शाहू महाराज उसके मूल प्रणेता थे। आगे चलकर जब कोल्हापुर में महाराज की कृपा से समृद्ध देवल क्लब ख्यात हुआ, तब देश के प्रत्येक गायक-गायिका को लगता था कि देवल क्लब में अपना गायन हो। जो कलाकार देवल क्लब में अपनी गायन, वादन की कला प्रस्तुत कर सके वह देश के कीर्तितल्य में पहुँच गए।"[1] वर्तमान में कई व्यक्ति बहुत बढ़िया ढंग से गायन करते हैं लेकिन उन्हें आर्थिक परिस्थिति आगे नहीं बढ़ने देती। उन्हें सरकार से आर्थिक सहायता भी नहीं मिलती। यह वर्तमान वास्तविकता है। संगीत सीखने के लिए बहुत पैसा खर्च होता है। यह बोझ आम आदमी नहीं उठा पाता। इस कारण उन्हें खुद की रूचि ही बदलनी पड़ती है। कुछ व्यक्ति संघर्ष करके संगीत का ज्ञान हासिल करते हैं लेकिन उन्हें मंच नहीं मिलता। इस परिस्थिति में बदलाव लाना है तो शाहू विचार को समझना जरूरी है।

नाट्य कला:

शाहू पूर्व करवीर में छह सौ से अधिक कलाकार थे। इसी वजह से समाज में प्रबोधन होता था। आबा साहब के समय में इचलकरंजी कर नाटक मंडली, सांगलीकर नाटक मंडली, आलतेकर नाटक मंडली आदि थी। इन के माध्यम से नाटक का मंचन होता था। इनके प्रभाव से राजर्षि शाहू महाराज नाटक-कला के प्रति आकर्षित हुए। आने वाले समय में उन्होंने किर्लोस्कर नाटक मंडली, शाहू नगर वासी, स्वदेश हितचिंतक, महालक्ष्मी प्रसादिक कंपनी, शेषासनी स्त्री नाटक मंडली, ललित कला दर्शक, यशवंत संगीत नाटक मंडली, शिवराज नाटक मंडली, डोंगर संगीत नाटक मंडली आदि को साहयता की। इसी कारण नट, कलाकार अभिनेता निर्माण हुए। राजर्षि शाहू महाराज के राज आश्रय में संगीत सूर्य केशव राव भोसले, नारायणराव राजहंस उर्फ बाल गंधर्व, महाराष्ट्र कोयल शंकरराव सरनाईक, गणपत राव जोशी, दत्तोपंत हल्याळ कर, दत्तोपंत भोसले, विष्णुपंत औधंकर, भाऊ राव जाधव, भागवत दिनकर ढेरे, विष्णुपंत पागनीस आदि कलाकार निर्माण हुए। कला के माध्यम से नाम कमाया। उस समय गुणोत्कर्ष, सौभद्र, शाकुंतल, हॅम्लेट, ॲथेल्लो, तुकाराम, चंद्रहास, तरुणी शिक्षा, कुंज विहार, मृच्छकटिक, नलदमयंती, वीरतनय, प्रेमाभिलाषी, सौभाग्य लक्ष्मी, लयाचालय चलती दुनिया, नारायणराव पेशवा का बेटा, मानापमान, शिवसंभव विनोद, गुप्त मंजूष, शाप संभ्रम आदि नाटक का मंचन हुआ। इन नाटकों के माध्यम से सामाजिक समस्या पर प्रकाश डाला गया।

करवीर रियासत में कलाकार को आश्रय मिलता था इस कारण बाहर से कलाकार आने लगे। नाटक मंचन के लिए थिएटर कम पड़ रहे थे, इसलिए शिवाजी थिएटर, पैलेस थिएटर का निर्माण किया। पैलेस थिएटर को स्वतंत्रता के बाद 'केशव राव भोसले' नाम दिया गया। क्योंकि केशव राव भोसले, नारायणराव राजहंस, शंकरराव सर नाईक आदि को प्रसिद्धि मिली थी। इनमें केशवराव भोसले सबसे ज्यादा प्रसिद्ध थे। 'शाकुंतल' नाटक में बालगंधर्व ने शकुंतला की भूमिका निभाई थी। इस नाटक का मंचन मिरज में हुआ। इस नाटक को देखने के लिए कई लोग आए थे, इनमें राजर्षि शाहू महाराज भी थे। श्रोता वर्ग तो बहुत खुश हुआ। 'मृच्छकटिक' नाटक का मुफ्त प्रदर्शन हुआ। इस नाटक में केशव राव भोसले ने 'चारुदत्त' की, बाबूराव पेंटर ने 'वसंतसेना' की, दत्तोपंत भोसले ने 'शकारा' की भूमिका की। इसका प्रदर्शन बढ़िया हुआ। "नाटक में बढ़िया कार्य करने के कारण शाहू महाराज ने केशव राव को 1200 रुपये पेंढारकर को 500 रुपये और दत्तोपंत को 500 रुपये देकर उनका स्वागत किया।"[2] इसी से

राजर्षि शाहू महाराज का नाट्यकला के प्रति भाव समझ में आता है। वर्तमान में नाट्यकला की अवस्था विकट है। कभी-कभी तो कलाकार को एक समय की रोटी तक नहीं मिलती। यह वर्तमान वास्तविकता है, इसे नकारा नहीं जा सकता। कुछ कलाकार अच्छी तरह से भूमिका निभाते हैं, लेकिन उन्हें मंच नहीं मिलता, आर्थिक सहायता भी...! इस कारण उनका जीवन शाप बना है। वह जीकर भी मरे हुए हैं। वो सिर्फ कलाप्रेम के खातिर जिंदा हैं। इसमें बदलाव लाना है तो शाहू विचार को समझना जरूरी है। तभी उनकी जिंदगी अच्छी होगी। कला में भी प्रगति...।

सिनेमा :

भारत में सिनेमा का इतिहास प्राचीन है। मूक सिनेमा के रूप में दादा साहेब फाल्के की 'राजा हरिश्चंद्र' फिल्म 1913 में प्रसारित हुई। इसी कारण उन्हें 'भारतीय सिनेमा का जनक' कहा जाता है। उन्होंने भले ही नासिक से सिनेमा उभारी हो लेकिन सही रूप में इसके बीज करवीर में थे। करवीर में बाबूराव पेंटर और आनंद राव पेंटर ने 'महाराष्ट्र सिनेमा' नामक सिनेमा गृह की स्थापना की। उसकी बहुत बढ़िया ढंग से सजावट की। इस सिनेमा गृह का उद्घाटन शाहू महाराज के कर कमलों से हुआ। इन्हीं से प्रेरणा लेकर शांताराम दामले, एस. फत्तेलाल, केशवराय धायकर आदि ने 'प्रभात फिल्म कंपनी' की स्थापना की। इसी के साथ बाबूराव पेंटर ने 1917 में चलचित्र कैमरा निर्माण किया। वो हिंदुस्तान का पहला कैमरा था। इसी वजह से सिनेमा में कई बदलाव हुए। बाबूराव पेंटर ने वत्सला-हरण, दामाजी, सैरंधी आदि सिनेमा बनाए। उन्हें बहुत प्रसिद्धि भी मिली। इसी कारण लोकमान्य तिलक ने बाबूराव पेंटर को 'सिनेमा केसरी' उपाधि प्रदान की। राजर्षि शाहू महाराज के राज दरबार में बाबूराव पेंटर, आनंद राव पेंटर, तानीबाई कागलकर, व्ही. शांताराम, बाबूराव पेंढारकर, भालजी पेंढारकर, बालासाहेब यादव आदि थे। उन्होंने अभिनय और सिनेमा में बढ़िया ढंग से कार्य किया। आनंद राव पेंटर की मृत्यु के बाद सिनेमा निर्मिति बंद हो गई थी, लेकिन उसी समय भालजी पेंढारकर करवीर में आए और स्टूडियो खरीद लिया। कुछ दिनों बाद 'प्रभाकर पिक्चर्स' संस्था की स्थापना की। उन्होंने बहिर्जी नाईक, महारथी कर्ण, वाल्मीकि, नमक रोटी, छत्रपति शिवाजी, महाराणी येसुबाई सामान्य मनुष्य आदि सिनेमा बनाए। राजर्षि शाहू महाराज को सिनेमा के प्रति कितना लगाव था, यह इस प्रसंग से समझ में आता है,—"बाबूराव पेंटर ने कोल्हापुर में महाराष्ट्र फिल्म कंपनी की स्थापना की। आगे चलकर शाहू महाराज ने बाबूराव की कंपनी को मंगलवार कस्बे में विशेष जगह चंदे के रूप में दी। इस कंपनी ने वहाँ अपनी दुनिया बसाई।"[3] वर्तमान में कई कलाकार हैं लेकिन उन्हें मंच नहीं। कहीं सिनेमा बन रहे हैं लेकिन उनमें उद्देश्य नहीं, सामाजिकता नहीं। कोई व्यक्ति अच्छी कहानी लिखता है उसमें सामाजिकता भी है लेकिन पैसा नहीं...यह वर्तमान के सामान्य कलाकार का दर्द है। उन्हें आर्थिक सहायता की जरूरत है, तभी अच्छे कलाकार निर्माण होंगे, सिनेमा भी।

चित्रकला :

राजर्षि शाहू महाराज को चित्रकला के प्रति रुचि थी। इसी कारण उन्होंने चित्रकार को राज दरबार में आश्रय दिया। इस वजह से कई चित्रकार उभरकर सामने आए जिनमें कला महर्षि बाबूराव पेंटर, कला तपस्वी आबा लाल रहमान, दत्तोबा दळवी, बाबा गजबर, आनंद राव पेंटर, माधवराव बागल, शशि किशोर चव्हाण, जी. कांबले, रवींद्र मेस्री (बाबूराव पेंटर का बेटा), बाबूराव सडवेकर, पी. सरदार, जय सिंगराव दळवी (दत्तोबा दळवी का बेटा), श्याम कांत जाधव, गणपत माजगावकर, एम.आर. देशमुख, शिवाजी शर्मा, गणपतराव वडणगेकर, चंद्रकांत मांडरे, बाळ गजबर, माधवराव धुरंधर, माधवराव परांडेकर, विनायक मसोदी आदि है। करवीर दरबार ने अंग्रेज रेसिडेन्ट के समर्थन के आधार पर आबालाल रहमान को विशेष छात्रवृत्ति देकर मुंबई के 'जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट' जैसे

ख्यात संस्था में भेजा। उनकी कला को देखकर 'वायसराय मैडल' मिला। राजर्षि शाहू महाराज में चित्रकार के प्रति कितनी आस्था थी इस प्रसंग से समझ में आती है-"कला तपस्वी कलाकार की ख्याति सुनते ही युवा शाहू राजा ने उन्हें आमंत्रित किया और उनका गौरव किया। उन्हें 'दरबार चित्रकार' का पद देकर उनका राजाश्रय प्रारंभ किया। परंतु राज आश्रय मिलने पर भी आबा लाल की कलंदर वृत्ति में अंतर नहीं आया। महाराज भी इस कलाकार की महान योग्यता से परिचित थे। उन्होंने उन पर बंधन नहीं डाले तथा उनसे सम्मान से पेश आए।"[4] वर्तमान में कई बच्चे अच्छे चित्रकार हैं लेकिन गरीबी के कारण वो स्कूल में एडमिशन नहीं ले पाते। उनकी कला कालांतर से मृत होती जा रही है। कलाकार जीते-जी मर रहे हैं। इसे रोकना है तो शाहू विचार को आचरण में लाना पड़ेगा। तभी नए चित्रकार निर्माण होंगे, संस्कृति का जतन भी। कला का विकास भी।

पोवाडा और जलसा :

पोवाडा, जलसा, शाहिरी आदि की परंपरा प्राचीन है। छत्रपति शिवाजी महाराज के समय में इस कला को महत्व था। इन कलाओं को राज आश्रय भी था। इस कारण कई शाहीर उभर कर सामने आए जिसमें अज्ञानदास, तुलसीदास, यमाजी, अनंत फंदी, होनाजी बाळा, राम जोशी, सगन भाऊ परसराम, सावरकर गोविंद आदि थे। इन्हीं से प्रेरणा लेकर राजर्षि शाहू महाराज ने करवीर रियासत में पोवाड़ा और जलसा को महत्व दिया। विठ्ठल डोणे, ईश्वरा माली, लहरी हैदर, नरहर माली, जंगली मुजावर, बापजी जोशी, उतरेकर रामचंद्र, शंकर दलवी, विशारद पिराजीराव, सरनाईक शार्दुलभाऊ साहब पाटील, श्रीपतराव लोखंडे आदि शाहीर को आश्रय दिया। इसी के साथ जलसा के माध्यम से समाज में प्रगति की। रूढ़िवादी परंपरा पर प्रहार किया। जलसा प्रकार में भाऊराव पाटोळे, भीमराव महामनी, ओतुरकर, तातोबा यादव, वासेगावकर, गणपतराव मोरे आदि कलाकार निर्माण हुए, समाज प्रबोधन हुआ। अस्पृश्यता के प्रति शाहू महाराज के विचार शाहीर व्यक्त करते हैं-"उनके मत्थे अस्पृश्यता का कलंग थोपा गया था। भगवान के दशावतारों में भी वह कलंक पोंछ डालने की, मिटाने की ताकत नहीं थी। ग्यारहवें अवतार हैं शाहू छत्रपति।"[5] वर्तमान में पोवाडा और जलसा कला लुप्त हो रही है, इसके कारण अनेक हैं। इस कला को सरकार से आर्थिक सहायता मिलना बहुत जरूरी है, क्योंकि वे अज्ञानी लोगों में जागरूकता निर्माण करते हैं। इनमें बदलाव लाना है तो शाहू विचार की सख्त जरूरत हैं। निष्कर्ष रूप में इतना ही कहना चाहता हूँ कि सिर्फ कला को देखकर कुछ नहीं होगा, उसके जतन के लिए कार्य करने की जरूरत है। कलाकार कला के माध्यम से संस्कृति का जतन करते हैं इसे भी समझना होगा। जो कलाएँ परंपरा से चलती आ रही हैं उनसे सीख लेनी होगी। कला को महत्व देना होगा तब कला जीवित रहेगी। शाहू महाराज का सपना पूरा होगा। शोध आलेख का उद्देश्य भी।

संदर्भ सूची :

1. पद्मा पाटिल-(अनुवादक), जयसिंग राव पवार-(मूल लेखक)-राजर्षि शाहू छत्रपति एक समाज क्रान्तिकारी राजा, पृ. 229
2. रमेश जाधव-राजर्षि शाहू गौरव ग्रंथ, पृ. 969
3. पद्मा पाटिल-(अनुवादक), जयसिंग राव पवार-(मूल लेखक)-राजर्षि शाहू छत्रपति एक समाज क्रांतिकारी राजा, पृ. 337
4. पद्मा पाटिल-(अनुवादक), जयसिंग राव पवार-(मूल लेखक)-राजर्षि शाहू छत्रपति एक समाज क्रांतिकारी राजा, पृ. 239
5. शरद कणबरकर-(अनुवादक), रमेश जाधव (मूल लेखक)-लोकराजा शाहू छत्रपति, पृ. 282।

V

हिंदी विभाग, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, महाराष्ट्र, पिन-431004
मो. 9022561824 ई-मेल : rvadhekar@gmail.com

अन्वेषक महानायक राजा भोज और उनकी ज्ञान-साधना

— प्रो. शैलेंद्र कुमार शर्मा

आयुर्वेद, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र के तत्त्वों से संवलित इस ग्रंथ को जीवन विज्ञान का प्रादर्श कहा जा सकता है। भोज के इस ग्रंथ के माध्यम से संकेत मिलता है कि स्वस्थ और सुव्यवस्थित जीवनशैली के लिए प्रकृति और पदार्थों का सूक्ष्म निरीक्षण, शोधपरक जिज्ञासा और ज्ञात-अज्ञात तथ्यों की सम्यक् पड़ताल आवश्यक है। ग्रंथकार ने जीवन की प्रत्येक गतिविधि की सूक्ष्म मीमांसा की है और मानव मात्र को वैज्ञानिक दृष्टि से जीने की सलाह दी है। ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो ग्रंथकार भोज की आँखों से ओझल हो। क्या प्रातःकालीन चर्या, क्या वस्त्राभूषण, क्या भोजन और क्या ऋतु अनुसार करणीय कर्म सब कुछ इस ग्रंथ में विचारणीय बने हैं। हाल ही में इस ग्रंथ का डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित द्वारा अनूदित संस्करण प्रकाशित हुआ है।

भारत में ज्ञान-साधना की अटूट परंपरा रही है। सदियों से अनेक मनीषियों ने अन्वेषण के सिलसिले को बनाए रखा है। इस परंपरा में ऐसे अनेक शासक भी आए, जो विद्वानों को राज्याश्रय देने के साथ स्वयं भी सारस्वत साधना में लीन रहे। इस शृंखला के विलक्षण मनीषियों में सम्राट विक्रमादित्य, हर्ष, भोज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराजा भोज इतिहास प्रसिद्ध मुंजराज के भतीजे और सिंधुराज के पुत्र थे। वे मालवा के अनन्य विद्या रत्न थे। नवीं शताब्दी में परमारों ने मालवा पर अपना अधिकार कर लिया था। इस वंश में प्रसिद्ध राजा वाक्पति मुंज और भोजदेव हुए। राजा भोज सही अर्थों में भारतीय इतिहास के महानायक थे। भोजदेव बड़े विद्यानुरागी और अन्वेषक थे। विविध ज्ञान, विज्ञान, कला और साहित्य की व्यापक उन्नति उनके समय में हुई। मुंज स्वयं वीर और विद्वान थे। मुंज ने कई बार चालुक्य राजा तैलप को परास्त किया, किंतु एक बार वह स्वयं परास्त हो गया। तैलप ने अपनी राजधानी में ले जाकर मुंज को बंदीगृह में डाल दिया और उसे अपनी बहिन का शिक्षक बनाया, किंतु उसके भाग जाने का संदेह होने पर उसका सिर काट लिया। मुंज के समय में उज्जैन के साथ-साथ धार की प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी थी। प्राकृतिक सौंदर्य के कारण मुंज ने धार में महल और घाट बनवाए थे। मुंज के पश्चात उनके भतीजे भोजदेव ने विक्रमादित्य के समान ही कीर्ति अर्जित की, किंतु अपनी राजधानी सदैव के लिए धारा नगरी बना ली। भोजदेव के समय साहित्य की श्रीवृद्धि के साथ-साथ चालुक्यों से युद्ध भी होते रहे। गांगेय देव का युद्ध भी इसमें प्रसिद्ध है। भोज ने गांगेय को हराकर विजय के उपलक्ष्य में लोहे का एक कीर्ति-स्तंभ (लाट) खड़ा किया, जो अब भी धार में तीन टुकड़ों में विद्यमान है। अंत में कलचुरि वेदी और कर्नाटक नरेशों ने सम्मिलित रूप से भोजदेव पर आक्रमण किया, जिसमें भोज हारे और मारे गए।

लोक-मान्यता है कि राजा भोज विद्याप्रेमी सम्राट विक्रमादित्य के वंशज थे। उनका जन्म सम्राट विक्रमादित्य की नगरी उज्जैन में हुआ था। पंद्रह वर्ष की अल्प आयु में उनका राज्याभिषेक मालवा के राजसिंहासन पर किया गया था। राजा

भोज ने ग्यारहवीं शताब्दी में धारा नगरी (धार) को ही नहीं, अपितु समस्त मालवा और भारतवर्ष को अपने विलक्षण कार्यों से गौरवान्वित किया। महाप्रतापी राजा भोज के पराक्रम के कारण उनके शासनकाल में भारत पर साम्राज्य स्थापित करने का दुस्साहस कोई नहीं कर सका। संस्कृत वाङ्मय में उन्हें त्रिविध वीर चूड़ामणि की उपाधि से विभूषित किया गया है। वे एक साथ रणवीर, दानवीर और विद्यावीर थे। राजा भोज की प्रतिभा बहुआयामी थी। एक साथ वास्तुविद्, अभियंता, धर्मशास्त्री और पर्यावरण प्रेमी का एकीभूत रूप उनमें देखा जा सकता है। इसका प्रमाण है कि उन्होंने स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े सहस्रों देवालय और भवनों का निर्माण करवाया, सैकड़ों तालाब खुदवाए, अनेक नगर बसाए, कई दुर्ग और विद्यालय बनवाए। उन्होंने भोपाल से पच्चीस किलोमीटर दूर भोजपुर में विश्व के सबसे विशाल शिवलिंग का निर्माण कराया, जो आज भोजेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है, जिसकी ऊँचाई 22 फीट है। राजा भोज ने भारत को नई पहचान दिलवाई। उन्होंने कुशल शासक के रूप में देशवासियों को संगठित कर महान कार्य किया, उससे राजा भोज के ढाई सौ वर्षों के बाद भी आक्रमणकारियों से हिंदुस्तान की रक्षा होती रही।

राजा भोज भारतीय इतिहास के ऐसे विलक्षण शासक हुए, जो शौर्य एवं पराक्रम के साथ ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला तथा धर्म के ज्ञाता थे। राजा भोज ने माँ सरस्वती की आराधना, उनके साधकों की साधना, भारतीय जीवन-दर्शन एवं संस्कृत के प्रचार-प्रसार हेतु सन् 1034 के आसपास धार और उज्जैन में 'सरस्वती कण्ठाभरण' नामक विद्याप्रासाद बनवाए थे। उनकी शिलाओं पर विविध शास्त्र और काव्य उत्कीर्ण करवाए। यह आज भी धार में भोजशाला के नाम से प्रसिद्ध है। यह भोज की स्वयं की परिकल्पना एवं वास्तु से निर्मित है। उन्होंने भोजपाल (भोपाल) में भारत के सबसे बड़ा तालाब का निर्माण कराया, जो आज भोजताल के नाम से प्रसिद्ध है। भोज विद्या, वीरता और दान में अद्वितीय थे। उनके दरबार में सैकड़ों विद्वान रहते थे।

भोज की मृत्यु के उपरांत उनकी परंपरा को आगे बढ़ाने वाले जयसिंह और उदयादित्य जैसे शासक हुए, जिन्होंने अनेक मंदिर और तालाब बनवाए। उदयादित्य की वंश-परंपरा में लक्ष्मणदेव, नरवर्मदेव, यशोवर्मदेव ने शासन किया। अर्जुनदेव के समय सन 1235 ई. में दिल्ली के गुलामवंशीय सुल्तान अल्तमश ने मालवा पर आक्रमण किया और उज्जैन तथा धार के वैभव को विनष्ट कर दिया। सन 1291 से 1293 तक खिलजीवंश के प्रसिद्ध सुल्तान अलाउद्दीन ने दुबारा उज्जैन पर आक्रमण किया और उसे अपने राज्य में मिला लिया।

राजा भोज एक महान शासक के साथ अनुसंधानकर्ता भी थे। उन्होंने अपने जीवन का बहुलांश विद्या के प्रति समर्पण और निष्ठा के साथ बिताया था। यह अत्यंत विस्मित करने की बात है कि उन्होंने राज्य के संचालन और रक्षण के साथ विविध ज्ञानानुशासनों से जुड़े अनेक महनीय ग्रंथों की रचना की थी। राजा भोज (965 ई-1055 ई) द्वारा प्रणीत ग्रंथों की संख्या 184 से भी अधिक मानी जाती है। ये सभी ग्रंथ ज्ञान-विज्ञान और कलाओं से सम्बद्ध हैं। उनमें से प्रमुख हैं—सरस्वतीकंठाभरण, श्रृंगारमंजरी, चंपूरामायण, चारुचर्या, तत्वप्रकाश, व्यवहारसमुच्चय, युक्तिकल्पतरु, राजमार्तंड, श्रृंगारप्रकाश, वृहद्राजमार्तंड, विद्याविनोद, समराङ्गणसूत्रधार, आदित्यप्रतापसिद्धांत, आयुर्वेदसर्वस्व आदि। उनकी रचनाओं को विभिन्न विषयों के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है-संकलन : सुभाषितप्रबंध, शिल्प : समराङ्गणसूत्रधार, खगोल एवं ज्योतिष : आदित्यप्रतापसिद्धांत, राजमार्तंड, राजमृगाङ्क, विद्वज्जनवल्लभ (प्रश्नविज्ञान), धर्मशास्त्र, राजधर्म तथा राजनीति : भुजबुल (निबंध), भुपालपद्धति, भुपालसमुच्चय या कृत्यसमुच्चय, चाणक्यनीति या दंडनीति : व्यवहारसमुच्चय, युक्तिकल्पतरु, पुर्तमार्तंड, राजमार्तंड, व्याकरण : शब्दानुशासन, कोश : नाममालिका, चिकित्साविज्ञान : आयुर्वेदसर्वस्व, राजमार्तण्ड या योगसारसंग्रह, राजमृगारिका, शालिहोत्र, विश्रांत विद्याविनोद, संगीत : संगीतप्रकाश, प्राकृत काव्य : कुर्माष्टक, संस्कृत काव्य एवं गद्य : चंपूरामायण, महाकालीविजय, श्रृंगारमजंरी, विद्याविनोद, दर्शन : राजमार्तंड (योगसूत्र की टीका), राजमार्तंड (वेदान्त), सिद्धांतसंग्रह, सिद्धांतसारपद्धति, शिवतत्त्व या शिवतत्त्वप्रकाशिका आदि। इन ग्रंथों से उनकी विविधमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है। स्वयं भोज को उनके वैदुष्य

के कारण विद्वानों की परिषद् में अध्यक्षता के लिए बुलाया जाता था। विद्या-प्रसार के साथ नवोन्मेषी शोध के प्रति उनका समर्पण प्रेरणीय है।

राजा भोज भारत के विद्याव्यसनी शासक-आचार्यों में विलक्षण रत्न हैं। वे जितने बड़े रचनाकार और साहित्य मनीषी थे, उतने ही बड़े शास्त्रज्ञ और अनुसंधानकर्ता भी। भोज ने विपुल लेखन किया था। उनकी विशाल ग्रंथ राशि को देखकर कई बार विद्वान विस्मित हो शंका करते हैं कि कहीं उनके नाम से उपलब्ध ग्रंथ राज्याश्रय में रहने वाले विद्वानों द्वारा प्रणीत तो नहीं हैं। वस्तुत: भोज बहुविद्याविद् होने के साथ त्वरित ग्रंथ लेखन की अनुपम क्षमता रखते थे। उनके ग्रंथों के अन्त:साक्ष्य और अन्त:संबंधों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि वे एक ही व्यक्ति द्वारा रचित हैं।

भोजकृत 'चारुचर्या' अत्यंत लोकप्रिय और अनूठा ग्रंथ है। इस ग्रंथ की संरचना में एक श्रेष्ठ संकलनकर्ता और शोधकर्ता की दृष्टि दिखाई देती है। ग्रंथ के केंद्र में आदर्श जीवनचर्या है, जिसे साकार करते हुए भोज ने कई शास्त्रों का मंथन किया था।

सुनीतिशास्त्र सद्वैद्य धर्म शास्त्रानुसारत:।
विरच्यते चारुचर्या भोजभूपेन धीमता।।

आयुर्वेद, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र के तत्त्वों से संवलित इस ग्रंथ को जीवन विज्ञान का प्रादर्श कहा जा सकता है। भोज के इस ग्रंथ के माध्यम से संकेत मिलता है कि स्वस्थ और सुव्यवस्थित जीवनशैली के लिए प्रकृति और पदार्थों का सूक्ष्म निरीक्षण, शोधपरक जिज्ञासा और ज्ञात-अज्ञात तथ्यों की सम्यक् पड़ताल आवश्यक है। ग्रंथकार ने जीवन की प्रत्येक गतिविधि की सूक्ष्म मीमांसा की है और मानव मात्र को वैज्ञानिक दृष्टि से जीने की सलाह दी है। ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो ग्रंथकार भोज की आँखों से ओझल हो। क्या प्रात:कालीन चर्या, क्या वस्त्राभूषण, क्या भोजन और क्या ऋतु अनुसार करणीय कर्म सब कुछ इस ग्रंथ में विचारणीय बने हैं। हाल ही में इस ग्रंथ का डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित द्वारा अनूदित संस्करण प्रकाशित हुआ है।

'चारुचर्या' ग्रंथ विविध ऋतुओं में जल की उपलब्धता, उसे ग्रहण करने की पद्धति पर विशद प्रकाश डालता है। जल की परिशुद्धता के कारकों के रूप में सूर्य-चंद्र की किरणों, वायु से नैसर्गिक शोधन और स्वयं मनुष्य द्वारा उसे छानने के महत्त्व को यहाँ रेखांकित किया गया है। विविध रोगों के नाश के लिए वनस्पतियों के जल के पान का विधान भी इस ग्रंथ में किया गया है। विविध मतों के आलोक में गर्म पानी की महत्ता का प्रतिपादन यह ग्रंथ करता है। देश की विभिन्न नदियों, यथा गंगा, यमुना, नर्मदा, तुंगभद्रा, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा, सरस्वती आदि के जल के वैशिष्ट्य को इस ग्रंथ में वर्णित किया गया है। यहाँ तक की विविध रोगों को नष्ट करने की उनकी क्षमता को भी यहाँ दर्शाया गया है। पानी के रंग, स्वाद, उसे संचित करने के साधनों तथा उनके गुण-दोषों की पर्याप्त चर्चा भी की गई है।

दूध के अगणित गुणों का निरूपण 'चारुचर्या' में हुआ है। इसे भोज ने रसायन की महिमा दी है। गाय, भैंस आदि पशुओं तथा वनस्पतियों के दूध के गुणों की चर्चा भी भोज ने की है। विभिन्न पशुओं के दूध से निर्मित दही, मट्ठे, मक्खन, घी आदि तथा वनस्पतियों के सेवन, लेपन तथा मिश्रण से बने रसायनों के गुण-दोषों का विस्तृत निरूपण इस ग्रंथ में हुआ है। पुष्प प्रकरण में महज शृंगार और अर्चना के निमित्त ही फूलों की महिमा नहीं मानी गई है, वरन् उनके रोगनाशक गुणों की विवेचना भी की गई है।

आहार विषयक पर्याप्त जानकारियाँ और तथ्य इस ग्रंथ में जुटाए गए हैं। इनमें भोजन का काल, स्थान, आसन, धातु से निर्मित पात्र और पत्ते, पदार्थ-सेवन-क्रम, विविध व्यंजन आदि से लेकर भोजन के बाद की क्रिया सबका सविस्तार निरूपण इस ग्रंथ में हुआ है।

वस्त्र अधिकार प्रकरण में भोज वस्त्र को आभूषणों का भी आभूषण निरूपित करते हैं, जो शुचि और सौंदर्य की वृद्धि करता है—वस्त्रं भूषणभूषणं शुचिकरं सौंदर्यसंवर्धनं। इस प्रकरण में उन्होंने विविध प्रकार के वस्त्रों के ऋतु अनुसार स्वभाव और रोगनाशक गुणों का वर्णन किया है। वर्जनीय वस्त्रों के अंतर्गत गहरे लाल, मलिन, जीर्ण, कटे-फटे, आग से जले, पराए वस्त्र का निषेध किया है। इसी प्रकार स्वर्ण, मोती, मूँगा, मरकत, पुखराज, हीरा, नीलम आदि के गुणों और प्रभावों की चर्चा भोज ने की है। विभिन्न प्रकार के यान, घर, बिछौना, निद्रा आदि के विधि-निषेध भी इस ग्रंथ में समाहित हैं। इस ग्रंथ से स्पष्ट

संकेत मिलता है कि भोज को विविध प्रकार के प्राकृतिक उपादानों, क्षेत्रीय वैशिष्ट्य और ऋतुओं का गहन अध्ययन है। उनका यह ग्रंथ उस युग का साक्षी है, जब मनुष्य की आदर्श जीवनचर्या और स्वास्थ्य में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण योग था। जैसे-जैसे मनुष्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है, समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं।

अपनी गहरी निरीक्षण दृष्टि, तथ्यों की प्रामाणिकता और सहज ग्राह्यता के कारण सदियों से चारुचर्या लोकप्रिय बना हुआ है। भारतीय वाङ्मय की परंपरा में यह ग्रंथ अपने ढंग का अकेला प्रयास है, जिसमें भोजराज जैसे आदर्श संकलन और सर्वेक्षणकर्ता के साथ एक गंभीर अन्वेषक और प्रयोगकर्ता की प्रतिभा का प्रतिबिंबन हुआ है।

भारत के बहुविद्याविद् और ज्ञानाराधक शासकों की परंपरा में अनन्य राजा भोज ने स्वयं वास्तु, आयुर्वेद, साहित्य, जीवनविज्ञान सहित अनेक विद्याओं को समृद्ध किया, साथ ही ज्ञान की विविध शाखाओं से जुड़े मनीषियों को अपने आश्रय में स्थान देते हुए नवोन्मेष और नवाचार का वातावरण भी बनाया। भोज के सामने समस्त शास्त्र हस्तामलकवत् थे। अतः किसी भी विषय पर ग्रंथ-रचना में उन्हें देर नहीं लगती थी। प्रबंधचिंतामणि में कहा गया है, सहसाब्धनानाप्रबंधः अर्थात् वे सहसा विविध प्रकार के प्रबंध लिख लिया करते थे। भोज ने प्रायः ज्ञान के सभी क्षेत्रों में रचनाएँ की हैं। एक मान्यता के अनुसार उन्होंने लगभग 184 ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रंथों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वे अपने-अपने अध्ययन क्षेत्र में विश्वकोशीय भूमिका लिए हुए हैं। उदाहरणार्थ एक युक्तिकल्पतरु ग्रंथ को ही लें, जो उनके समस्त ग्रंथों में अद्वितीय है। दो हजार श्लोकों के इस ग्रंथ में अनेक विषयों का समाहार है। राजनीति, वास्तु, रत्नपरीक्षा, विभिन्न आयुध, अश्व, गज, वृषभ, महिष, मृग, अज, श्वान आदि पशुओं की परीक्षा, द्विपदयान, चतुष्पदयान, अष्टदोला, नौका-जहाज आदि के सारभूत तत्त्वों का इस ग्रंथ में संक्षेप में सन्निवेश है। विभिन्न पालकियों और जहाजों का वर्णन इस ग्रंथ की अपनी विशेषता है। विभिन्न प्रकार के खड्गों का सर्वाधिक विवरण इस पुस्तक में ही प्राप्त होता है। यह तद्युगीन राजवर्ग के लिए एक अत्यंत उपयोगी आधार ग्रंथ है।

'प्रभावक चरित' के अनुसार, उज्जैन के सरस्वतीकंठाभरण प्रासाद में स्वयं भोज के अनेकानेक विषयों के ग्रंथ पढ़े-पढ़ाए जाते थे, इनमें अलंकार, वास्तु, चिकित्सा विज्ञान, अंक, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, शब्द, राजसिद्धांत, अध्यात्म आदि उल्लेख्य हैं। भोज की गुणग्राहकता की प्रसिद्धि इतनी अधिक थी कि ज्ञान की विविध शाखाओं से जुड़े लोग उनके साथ रहते हुए अत्यंत गौरव का अनुभव करते थे। भोज के इस योगदान पर मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' में ठीक ही लिखा है :

यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत् त्याग लीलायितं।

अर्थात् भोजदेव के आश्रित विद्वानों का जो ऐश्वर्य दिखाई देता है, वह सब भोज की दान-लीला का प्रभाव है। भोजचरित् में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि जब बात राजा भोज के गुणों के वर्णन की हो तो स्वयं देवगुरु बृहस्पति भी स्वयं को अक्षम पाते हैं,

वर्णने भोजभूपस्य देवाचार्यो न क्षमः।

भोज श्रेष्ठ विद्वान, परम सामर्थ्यवान, सुयोग्य तथा लोकोपकारी राजा के रूप में अपने समय ही विख्यात हो गए थे। उनके ताम्रपत्र, शिलालेख तथा प्रतिमालेख बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं। अपनी विलक्षण प्रतिभा और सद्कर्मों के कारण राजा भोज अपने युग में ही कथा-कहानियों के चरित् नायक के रूप में प्रसिद्ध होने लगे थे। बाद में सम्राट विक्रमादित्य के समान महाराज भोज भी भारत के ऐसे लोकनायक के रूप में मान्य हो गए कि उनकी कथा-गाथाएँ न केवल भारतीय जनता में, लोक में प्रसिद्ध हो गयी थीं, अपितु लंका, नेपाल, तिब्बत, मंगोलिया सहित कई देशो में भी फैल गई थीं। मंगोली भाषा में 'अराजि बुजि' पुस्तक राजा भोज से संबंधित है। इसी प्रकार राजा भोज की 'चाणक्यमाणिक्य' पुस्तक का एक तिब्बती रूप भी प्राप्त होता है।

भोज के दौर में महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण हो रहे थे। उसके साथ अरबी विद्वान अलबरूनी आया था, जो मध्य एशिया के ख्वारिज्म (खिवा) का निवासी था। वह स्वयं विज्ञान और साहित्य का अच्छा अध्येता था। भारतीय दर्शन, गणित, तर्कशास्त्र, राजनीति और विज्ञान में उसकी गहरी अभिरुचि थी। उसने भारतीय विद्याओं का ज्ञान अरबी में अनूदित ग्रंथों से हासिल किया था। महमूद

गजनवी जैसे असहिष्णु शासक के साथ रहने के बावजूद उसने 'किताबुल हिंद' या 'तहकीके हिंद' की रचना की थी, जिसमें भारत के ज्ञान-विज्ञान, समाज जीवन और दर्शन का लेखा जोखा है। 1030 ई. में भोज के राज्यकाल में अलबरूनी धार आया था। उसने भोजराज की अत्यधिक प्रशंसा की है। साथ ही उसने कीमियागिरी से जुड़ी पूर्व काल के राजा विक्रमादित्य और व्याडि की एक रोचक कथा का भी वर्णन किया है। इस विद्या को वह भारतीयों का विज्ञान कहता है। उसने धार से जुड़ी एक और कथा का जिक्र भी किया है, जो उस वक्त के रसायन शास्त्र से संबंधित है।

राजा भोज इतिहास पुरुष होते हुए भी मिथक पुरुष हो गए। उन्होंने वैश्विक ख्याति प्राप्त की। विविधवर्णी उदात्त गुणों के कारण वे अपने युग के मित्र राजाओं के समान शत्रु राजाओं के भी आदर्श बन गए थे। यही नहीं सदियों तक परवर्ती अनेक राजा भी स्वयं को लघु भोजराज, अपर भोजराज, नव भोजराज आदि कहने में गौरव का अनुभव करते रहे हैं। इसके पीछे उनका एक गहन अध्येता और लोकोपकारी निर्माणकर्ता रूप तो कारण है ही, विविध विषयों से जुड़े विद्वानों और रचनात्मक प्रतिभाओं को व्यापक प्रोत्साहन देना भी रहा है।

भोज ने विद्वानों को आश्रय देने के साथ स्वयं विविधविध विषय क्षेत्रों में वैदुष्य और दक्षता के साथ अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया था। वे अत्यंत प्रवीण शास्त्रकार, कवि और दार्शनिक होने के साथ ज्योतिर्विद् भी थे। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छंद और निरुक्त-जैसे वेदांग के छह अंगों में ज्योतिष को भी स्थान मिला है। ज्योतिर्विज्ञान की यात्रा में पुरातन काल के अनेक ऋषियों, जैसे वशिष्ठ, जैमिनी, व्यास, अत्रि, नारद, गर्ग, पराशर, कश्यप, शौनक, मनु, अंगीरा, लोमश, च्यवन, भृगु, लाट, विजयानंदि, श्रीषेण, विष्णुचंद्र आदि के साथ महान खगोलविद् आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त आदि का विशिष्ट स्थान रहा है। वराहमिहिर ने बृहज्जातक, बृहत्संहिता और पंचसिद्धांतिका जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के माध्यम से ज्योतिर्विज्ञान को अत्यंत सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप देने में अनुपम योगदान दिया। उनके बाद इसकी कई दिशाएँ खुलीं। वराहमिहिर के परवर्ती दौर के ज्योतिर्विज्ञान विषयक ग्रंथों में भोजराज के ग्रंथों का भी विशेष महत्व है। खगोल एवं ज्योतिष से जुड़े भोजराज के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं-आदित्यप्रतापसिद्धांत, राजमार्तंड, राजमृगाङ्क और विद्वज्जनवल्लभ। इन ग्रंथों में प्रश्न विज्ञान को लेकर लिखा गया ग्रंथ 'विद्वज्जनवल्लभ' अनेक दृष्टियों से अध्ययन और अनुसंधान की नई दिशाएँ खोलता है।

ग्रहों के आधार पर शुभ-अशुभ फल का निर्धारण सदियों से लोक विश्वास का अंग रहा है। इसी लोक विश्वास को शास्त्रीय आधार देता आया है-ज्योतिर्विज्ञान। यह व्यापक ब्रह्मांड के साथ मानव जीवन के संबंधों का निरीक्षण-परीक्षण करने की विद्या है। इस शास्त्र में पिंड और ब्रह्मांड, व्यष्टि और समष्टि के संबंधों का अध्ययन किया जाता है। ज्योतिर्विद मानते हैं कि एक ओर विभिन्न ग्रह, नक्षत्र, राशियाँ, मंदाकिनियाँ, दूसरी ओर मनुष्य, प्राणी, वनस्पतियाँ, खनिज, चट्टानें आदि ब्रह्मांडीय घटक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक-दूसरे को प्रभावित-आकर्षित करते हैं। विविध ग्रह-नक्षत्रों का मानव-जीवन पर किस तरह समवेत प्रभाव पड़ता है या वे किस तरह कष्ट दूर करते हैं या कष्ट देते हैं? ऐसे तमाम प्रश्नों का समाधान पाने की पारंपरिक विद्या ज्योतिर्विज्ञान है। ज्योतिष में गणित, संहिता तथा होरा तीन स्कंध हैं। गणित में खगोल विज्ञान और ज्योतिष गणित का समावेश है। संहिता में प्राकृतिक प्रकोप, भूकंप, मौसम, अकाल, महामारी आदि समाहित हैं। होरा के अंतर्गत जातक के जन्मकालीन फलित ज्योतिष का वर्णन होता है। परवर्ती काल में ज्योतिष को छह स्कंधों में बाँटा गया-गणित, संहिता, होरा, शकुन, मुहूर्त और प्रश्न। चतुर्थ स्कंध शकुन में पूर्वाभास, भविष्य में घटने वाली घटनाओं और तथ्यों के प्रभाव का समावेश है। पंचम स्कंध मुहूर्त (नक्षत्र, तिथि, वार, योग, करण) अनुकूल समय ज्ञान करने के लिए अस्तित्व में आया। षष्ठ स्कंध प्रश्न में, घटना या विचार के समय कुंडली से जानकारी लेना शामिल है। प्रश्न शास्त्र से घटना की भविष्यवाणी की जा सकती है। जाहिर है कि प्रश्नशास्त्र ज्योतिर्विज्ञान का विशिष्ट अंग है। यह तत्काल फल बताने वाले शास्त्र के रूप में मान्य है। इसमें तत्काल

लग्न और ग्रह स्थिति के आधार पर व्यक्ति के मस्तिष्क में पैदा होने वाले प्रश्न और उनके शुभाशुभ फल का विचार किया जाता है। इसके आधार पर कई तरह के ग्रंथ मिलते हैं। पाँचवीं-छठी शती में केवल प्रश्नकर्ता द्वारा उच्चरित अक्षरों के आधार पर फल बतलाना प्रश्नशास्त्र के अंतर्गत आता था। कालांतर में इस शास्त्र में कई सिद्धांतों का प्रवेश हुआ, जैसे प्रश्नाक्षर-सिद्धांत, प्रश्नलग्न-सिद्धांत और स्वरविज्ञान-सिद्धांत। अधिकतर दिगंबर जैन ग्रंथों का प्रणयन दक्षिण भारत में होने के कारण प्रायः प्रश्नग्रंथ प्रश्नाक्षर-सिद्धांत के आधार पर निर्मित हुए। एक अनुसंधान के अनुसार ज्ञान प्रश्नचूड़ामणि जैसे ग्रंथों के आधार पर आधुनिक काल में केरल प्रश्न शास्त्र की निर्मिति हुई। महान खगोलशास्त्री वराहमिहिर के पुत्र पृथुयश ने 'षटपंचाशिका' नामक प्रश्न ज्योतिष ग्रंथ की रचना की थी। एक मान्यता के अनुसार उसी के बाद प्रश्नलग्न वाले सिद्धांत का भारत में तेजी से प्रचार हुआ। 9वीं से 11वीं शती में इस सिद्धांत को विकसित होने के लिए पूर्ण अवसर मिला, जिससे अनेक स्वतंत्र रचनाएँ भी इस विषय पर लिखी गईं। इस शास्त्र के स्वरूप में उत्तर मध्य काल तक अनेक संशोधन और परिवर्तन होते रहे है। प्रश्नकर्ता की चर्या, चेष्टा, हाव-भाव आदि द्वारा मनोगत भावों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना भी इस शास्त्र के अंतर्गत आ गया। भोज कृत 'विद्वज्जनवल्लभ' इसी परंपरा का लघुकाय ग्रंथ है। भोज ने प्रश्न लग्न के आधार पर मनुष्यों के शुभ-अशुभ कथन की पद्धति अपनाई है। वे जन्मकाल के सदृश प्रश्नकाल को भी फलादेश से युक्त मानते हैं। ग्रंथारंभ में भोज ने गणेश और शिव की स्तुति की है। अंत में भोज के विद्वज्जनों के प्रिय होने का संकेत मिलता है—

श्रीविद्वज्जनवल्लभाख्यमकरो च्छ्रीभोजदेवो नृपः।

भोज के विद्वज्जनवल्लभ में डेढ़ दर्जन अध्याय हैं। इनके अंतर्गत शुभ-अशुभ, आवागमन, जय-पराजय, संधि-विग्रह, रोग, वर्षा, बंधमोक्ष, प्रवासी, कन्यावरण, गर्भवास, धन आदि विषयों के प्रश्नफल दिए गए हैं। इस ग्रंथ में प्रश्नकर्ता की मनःस्थिति, दृष्टि, वचन, शारीरिक क्रियाकलाप और आसपास के परिवेश के आधार पर भी फलादेश का निरूपण किया गया है। ग्रंथकार के सामने पूर्व के अनेक विद्वानों और प्रश्नशास्त्रियों के ग्रंथ रहे हैं। वह अपने मत की पुष्टि के प्रमाण रूप में कश्यप, पराशर आदि का उल्लेख भी करता है, काश्यपाद्या मुनींद्राः, पराशराद्याः प्रथमे महर्षयः या फिर प्रश्नशास्त्रार्थविद्भिः।

भारत के गौरवशाली राजा भोज तथा अन्य परमार नरेशों का विद्याप्रेम सुस्थापित तथ्य है। उनकी विद्वत् सभा में उव्वट, धनपाल, हलायुध, पद्मगुप्त, चित्तप, अमितगति, धनंजय, केशव, निचुल, शुभचंद्र, नेमिचंद्र, प्रभाचंद्र जैसे मनीषी थे। ये सभी अलग-अलग ज्ञानानुशासनों से जुड़े मनीषी थे, जिन्होंने भारतीय विद्याओं के विकास में अविस्मरणीय योगदान दिया है।

परमार वंश की विद्वत्सभा में धनपाल की प्रसिद्धि प्राकृत कोशकार के रूप में थी। उनके द्वारा रचित पाइय-लच्छी नाममाला सर्वप्राचीन कोश है। इस ग्रंथ की प्रशस्ति में ही ग्रंथकार ने सूचित किया है कि उन्होंने यह रचना अपनी कनिष्ठ भगिनी सुंदरी के लिए धारानगरी में वि. सं. 1029 में की, जबकि मालव नरेंद्र द्वारा राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट को लूटा गया था। यह घटना अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से भी सिद्ध होती है। धनपाल की यह नाममाला अमरकोश की रीति से 250 प्राकृत गाथाओं में रचित है। इसमें लगभग एक हजार प्राकृत शब्दों का उनके पर्यायवाची शब्दों सहित संकलन किया गया है। अधिकांश नाम और उनके पर्यायवाची तद्भव हैं। वास्तविक रूप में देशी शब्द अधिक-से-अधिक पंचमांश ही होंगे, लेकिन भारतीय शब्दकोश परंपरा में इसका विशेष महत्व है।

हलायुध या भट्ट हलायुध (लगभग 10वीं शताब्दी ई.) भारत के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्, गणितज्ञ और वैज्ञानिक थे। उन्होंने 'मृतसंजीवनी' नामक ग्रंथ की रचना की, जो पिंगल के छंदशास्त्र का भाष्य है। यह पहले राष्ट्रकूट की राजधानी मान्यखेट में कृष्णा तृतीय के आश्रय में रहते थे। बाद में परमार वंश के आश्रय में उज्जैन में रहने लगे। यहीं उन्होंने मृतसंजीवनी की रचना की, जिसमें पास्कल त्रिभुज (मेरु प्रस्तार) का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

हलायुध द्वारा एक कोश की भी रचना की गई थी, जिसका नाम अभिधानरत्नमाला है, लेकिन यह हलायुधकोश नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसके पाँच कांड

(स्वर, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ) हैं। प्रथम चार पर्यायवाची कांड हैं। पंचम में अनेकार्थक तथा अव्यय शब्द संकलित हैं। इसमें पूर्वकोशकारों के रूप में अमरदत्त, वरुरुचि, भागुरि और वोपालित के नाम उद्धृत हैं। इस कोश में रूपभेद से लिंग-बोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है। 900 श्लोकों के इस ग्रंथ पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव जान पड़ता है। कविरहस्य भी इनके द्वारा रचित है, जिसमें 'हलायुध' ने धातुओं के लट्लकार के भिन्न-भिन्न रूपों का विशदीकरण भी किया है।

आचार्य अमितगति (ई. सन् 983-1023) जैन धर्म के महान विद्वान थे। उनके द्वारा संस्कृत छंदों में अमितगति श्रावकाचार ग्रंथ की रचना की गई थी, जिसमें 15 परिच्छेद और 1352 पद्य हैं। यह ग्रंथ धर्म विषयक है, जिसमें जैन श्रावकों के पालन के लिए विविध आचारों को वर्णित किया गया है। इस ग्रंथ में उपदेशों के पहले पूर्ववर्ती आचार्य समंतभद्र, वसुनंदी, चामुंडराय आदि की पद्धतियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ की विषयवस्तु के अंतर्गत नरजन्म, धर्म का माहात्म्य, एकांतमतवाद का खंडन, पंच अणुव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, परस्त्रीत्याग एवं परिग्रहप्रमाणय तीन गुणव्रत-दिगव्रत, अनर्थदंड एवं भोगोपभोग परिणामय चार शिक्षाव्रत-देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य, व्रत माहात्म्य, दान, पूजा, शील, उपवास का स्वरूप, जिनेश्वर और सिद्धों की महिमा, बारह अनुप्रेक्षा, समाधि, मरण इत्यादि का विशद वर्णन किया गया है। उन्होंने धर्मपरीक्षा और सुभाषितरत्नंसंदोह ग्रंथों की भी रचना की थी।

अमितगति द्वारा रचित 'सुभाषितरत्नोसंदोह' ग्रंथ अपने नामानुरूप सुभाषित श्लोक रूपी रत्नों से संपन्न रत्नाकर है। इसमें दृष्टांत और रूपकों के माध्यम से काव्यात्मक शैली में आत्मा या जीव को ग्रसित करने वाले विविध मनोविकारों-क्रोध, माया, अहंकार, लोभ, शोक और पंचेंद्रिय, जीव की अवनति करने वाले मद्य, मांस, मधु, काम, द्यूत आदि से मुक्ति की राह दिखाई गई है। सांसारिक विषय कितने क्षुद्र हैं, जीव के हितकारी मित्र सज्जन, दान, देव, गुरु, धर्म, चारित्र्य क्या हैं, इनकी विस्तृत विवेचना करते हुए श्रावक धर्म का निरूपण किया गया है।

पद्मगुप्त धारा नगरी के सिंधुराज के ज्येष्ठ भ्राता और राजा मुंज (974-998) के आश्रित कवि थे। इनका समय 11वीं शती ई. के लगभग माना जाता है। पद्मगुप्त के पिता का नाम मृगांकगुप्त था। पद्मगुप्त ने संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की थी। इस महाकाव्य का नाम 'नवसाहसाङ्कचरित' है। अलंकृत शैली की यह रचना इतिहास एवं काव्य दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसमें काल्पनिक राजकुमारी शशिप्रभा के प्रणय की कथा स्पष्ट रूप से वर्णित है, परंतु यह काव्य मालवा के राजा सिंधुराज नवसाहसांक के चरित का भी वर्णन श्लेष के द्वारा उपस्थित करता है। इसमें सिंधुराज के पूर्वजों अर्थात् परमार वंश के यशस्वी राजाओं का वर्णन भी प्राप्त होता है। पद्मगुप्त की इस कृति पर महाकवि कालिदास के काव्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कालिदास के अनुकरण पर इस ग्रंथ की रचना भी वैदर्भी शैली में हुई है। इसीलिए पद्मगुप्त को 'परिमल कालिदास' भी कहा गया है। धनिक और मम्मट ने अपने ग्रंथों में इन्हें उद्धृत किया है।

ज्ञान की ऐसी कोई शाखा नहीं, जिससे धार के परमार वंश की विद्वत्सभा का संबंध न रहा हो। नाट्यचिंतन की भारतीय परंपरा के विलक्षण ग्रंथ 'दशरूपक' के लेखक विष्णुपुत्र धनंजय परमार शासक मुंजराज (974-994 ई.) के सभासद थे। 'दशरूपकम्' नाट्य के दशरूपों के लक्षण और उनकी विशेषताओं को प्रस्तुत करने वाला विशिष्ट ग्रंथ है। अनुष्टुप छंद में रचित दसवीं शती के इस ग्रंथ में रचनाकार धनंजय ने भरत मुनि के नाट्यशास्त्र से बहुत से विचार लिए हैं। दशरूपक में कुल चार अध्याय हैं, जिन्हें 'आलोक' कहा गया है। धनंजय कृत दशरूपक और उस पर धनिक कृत अवलोक टीका नाट्यालोचन पर सर्वमान्य ग्रंथ है। धनिक दशरूपक के रचयिता धनंजय के भाई थे। दोनों भाई मुंजराज की सभा के विदग्ध पंडित थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजा मुंज ने उन्हें एक ग्राम दान में दिया था। दशरूपक के प्रथम प्रकाश के अंत में 'इति विष्णुसूनोर्धनिकस्य तौ दशरूपावलोके' इस निर्देश से स्पष्ट संकेत मिलता है कि धनिक दशरूपक के रचयिता विष्णुसुत धनंजय के ही भाई थे। मुंज (वाक्पतिराज द्वितीय) और

उसके उत्तराधिकारी सिंधुराज (994-1018) के शासनकाल के अनुसार इनका समय ईसा की दसवीं शताब्दी का अंत और ग्यारहवीं का प्रारंभ माना जाता है। दशरूपक को 'मुंजमहीशगोष्ठी' के विद्वानों के मन को प्रसन्नता और प्रेम से निबद्ध करने वाला कहा गया है। धनिक द्वारा इसकी 'अवलोक' नाम की टीका मुंज के उत्तराधिकारी सिंधुराज के शासनकाल में लिखी गई। अवलोक के अतिरिक्त दशरूपक पर एक और प्राचीन टीका बाहुरूप मिश्र द्वारा प्रणीत उपलब्ध है, जो अब तक अमुद्रित ही है।

धनंजय कृत 'दशरूपक' में दिए हुए लक्षणों के उद्धरण प्राय: सभी प्राचीन व्याख्याकारों ने दिए हैं। दशरूपक मुख्यत: भरत के नाट्यशास्त्र का अनुगामी है और उसका एक प्रकार से संक्षिप्त रूप है। दशरूपक की प्रतिपादन शैली अत्यंत सुगम एवं सुस्पष्ट है। यह ग्रंथ संक्षिप्त होते हुए भी विषय का सम्यक् विवेचन करता है। इसके चार आलोक और लगभग 300 कारिकाएँ हैं। चार प्रकाशों में से प्रथम तीन में क्रमश: वस्तु, नेता (नायक, नायिका आदि) एवं रसों का सविस्तार विवरण है। अंतिम आलोक में रसास्वादन की प्रक्रिया को प्रस्तुत करते हुए धनंजय ने रसप्रतीति को व्यंजना से गम्य नहीं माना है, वरन् उसे वाच्यवृत्ति का ही विषय माना है (दशरूपकम् खंड 4-27)। व्यंजनावाद के खंडन के कारण ये भी ध्वनि विरोधियों में प्रमुख स्थान रखते हैं। काव्य नाट्य के साथ रसादि का संबंध भावक-भाव्य का है। इस दृष्टि से वे भावकत्ववादी हैं। दशरूपककार ने अभिनेता में भी काव्यार्थ भावना से जनित रसास्वाद की संभाव्यता स्वीकृत की है। मौलिक रूप से दशरूपक की यह सैद्धांतिक विशेषता है। नाट्य तत्वों की परिभाषा में भी दशरूपक के लक्ष्यलक्षण भरत के अभिप्राय से अनेकत्र भिन्न है, जिससे प्रतीत होता है कि धनंजय की उपजीव्य सामग्री भरत से इतर कहीं और होगी। आज 'दशरूपक' नामक ग्रंथ अनेक संस्करणों में उपलब्ध है।

'दशरूपक' में रंगमंच पर विवेचन नहीं किया गया है और न धनिक ने ही इस पर विचार किया है। धनिक की टीका गद्य में है और मूल ग्रंथ के अनुसार ही है। अनेक काव्यों और नाटकों से संकलित उदाहरण आदि द्वारा यह मूल ग्रंथ को पूर्ण, बोधगम्य और सरल करती है। कुछ परवर्ती विद्वानों ने धनिक को ही 'दशरूपक' का रचयिता माना है और उन्हीं के नाम से 'दशरूपक' की कारिकाएँ उद्धृत की हैं, किंतु यह भ्रमात्मक है।

धनिक अभिधावादी और ध्वनिविरोधी हैं। रसनिष्पत्ति के संबंध में वे भट्टनायक के मत को मानते हैं, पर उसमें भट्ट लोल्लट और शंकुक के मतों का मिश्रण कर देते हैं। इस प्रकार इनका एक स्वतंत्र मत हो जाता है। दशरूपक के चतुर्थ प्रकाश में धनिक ने इस पर विस्तृत रूप से विचार किया है। नाटक में शांत रस को धनिक ने स्वीकार नहीं किया है और आठ रस ही माने हैं। शांत को ये अभिनय में सर्वथा निषिद्ध करते हैं, अत: शम को स्थायी भी नहीं मानते।

धनिक कवि थे और इन्होंने संस्कृत-प्राकृत काव्य की रचना भी की है। 'अवलोक' में इनके अनेक ललित पद्य इधर-उधर उदाहरणों के रूप में बिखरे पड़े हैं। 'अवलोक' से ही यह भी ज्ञात होता है कि धनिक ने साहित्यशास्त्र का एक ग्रंथ और लिखा जिसका नाम 'काव्यनिर्णय' है। दशरूपक के चतुर्थ प्रकाश की 37वीं कारिका की व्याख्या में धनिक ने 'यथावोचाम काव्यनिर्णये' कहा है और उसकी सात कारिकाएँ उद्धृत की हैं। इनमें व्यंजनावादियों के पूर्वपक्ष को उद्धृत कर उनका खंडन किया गया है। भोज आदि परमार शासकों ने जहाँ अपने आश्रय में कवियों को प्रोत्साहित किया, वहीं काव्यशास्त्र को विकसित करने में भी अद्वितीय योगदान दिया। धनजंय और धनिक का महत्त्वपूर्ण कार्य इस बात का साक्ष्य देता है।

भोज सहित परमार वंश के विभिन्न शासकों ने प्राय: सभी धर्म और पंथों से जुड़े मनीषियों को राज्याश्रय दिया था। उनके यहाँ जहाँ वैदिक और आगमिक परंपरा के विद्वान प्रश्रय पाते थे, वहीं श्रमण परंपरा से जुड़े मनीषियों और साधकों ने भी अपना श्रेष्ठतम दिया। दिगंबर जैन भट्टारकों का प्रमुख केंद्र और पट्ट स्थान होने के कारण उज्जैन नगर जैन मुनि और आचार्यों का निवास स्थान रहा है। परमार शासकों की सभा में जैन विद्वानों को भी सम्मान प्राप्त था।

भोजयुगीन धर्म मीमांसा से जुड़े लोगों में उव्वट विख्यात वेद-भाष्यकार थे। यजुर्वेद-मंत्र-भाष्य द्वारा विदित होता है कि इनके पिता का नाम वज्रट था। साथ ही

वहीं इनका जन्मस्थान आनंदपुर कहा गया है। उव्वट ने भोज के शासनकाल में उज्जयिनी में रहकर शुक्ल यजुर्वेद की 'माध्यन्दिन वाजसनेयी संहिता' का संपूर्ण चालीस अध्यायों वाला भाष्य किया था, जो उव्वट भाष्य के नाम से सुविख्यात है। उन्होंने ऋग्वेदीय शौनक प्रातिशाख्य नामक ग्रंथ की रचना की। कुछ लोगों का कहना है कि ऋग्वेदीय शौनक प्रातिशाख्य भाष्य करने के बाद इन्होंने ऋग्वेद का भाष्य भी रचा था। 'भविष्य-भक्ति-माहात्म्य' नामक संस्कृत ग्रंथ इन्हें मूलत: कश्मीर देश का निवासी और मम्मट तथा कैयट का समसामयिक बताता है। उव्वट की उज्जैन में स्थिति बताती है कि भोज ने अपनी गुणग्राहकता और आश्रयदाता वृत्ति से मालवा क्षेत्र को ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं के साथ अध्यात्म विद्या का भी प्रमुख केंद्र बना दिया था।

परमार राजाओं की सभा में अनेक जैन मनीषियों को सम्मानित किया गया था। जैनाचार्य महासेन, अमितगति और शोभन मुनि मुंज की सभा के प्रख्यात जैन विद्वान थे। भोज ने भी इस परंपरा का निर्वाह किया। भोज ने अनेक जैन आचार्यों को विशेष मान दिया, उनमें शुभचंद्रा, प्रभाचंद्र, धनपाल आदि का नाम उल्लेखनीय है। दिगंबर आचार्य श्री शांतिसेन ने भोज की सभा के विद्वानों को वाद-विवाद में परास्त किया था। आचार्य विशाल कीर्ति के शिष्य मदनकीर्ति ने अन्य मत के लोगों पर विजय प्राप्त कर महाप्रामाणिक की उपाधि प्राप्त की थी।

जैनाचार्य श्री शुभचंद्र (ई.1003-1168) द्वारा संस्कृत श्लोकों में रचित ज्ञानार्णव एक आध्यात्मिक और ध्यान विषयक ग्रंथ है। इस तत्त्वविवेचनात्मक ग्रंथ में 42 प्रकरण और कुल 2500 श्लोक हैं। इस ग्रंथ पर कई टीकाएँ लिखी गईं। आचार्य श्रुतसागर (ई. 1481-1499) ने इसके गद्यभाग पर 'तत्त्वत्रय प्रकाशिका' टीका लिखी, जिसमें शिवतत्त्व, गरुडतत्त्व और कामतत्त्व इन तीनों तत्त्वों का वर्णन है। दूसरी टीका पंडित जयचंदी छाबड़ा (ई.1812) कृत 'भाषा वचनिका' है। शुभचंद्राचार्य ने अपने ज्ञानार्णव में ध्यान के पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत भेदों का वर्णन विस्तार के साथ करते हुए मन के विक्षिप्त, यातायात, श्लिष्ट और सुलीन इन चारों भेदों का वर्णन बड़ी रोचकता और नवीन शैली में किया है।

प्रभाचंद्र जैन साहित्य में तर्क ग्रंथकार के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इनके निश्चित समय काल के बारे में कुछ विद्वानों में मतभेद हैं। फिर भी यह प्रसिद्धि है कि प्रभाचंद्राचार्य का सत्कार भोज की सभा में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—प्रमेयकमलमार्तंड (परीक्षामुख व्याख्या), न्यायकुमुदचंद्र (लघीयस्त्रय व्याख्या), तत्त्वार्थवृत्ति पद विवरण (सर्वार्थसिद्धि व्याख्या), शाकटायनन्यास (शाकटायन व्याकरण व्याख्या), शब्दाम्भोजभास्कर (जैनेंद्र व्याकरण व्याख्या), प्रवचनसार, सरोज भास्कर (प्रवचनसार व्याख्या), गद्यकथाकोष (स्वतंत्र रचना), रत्नकरण्डश्रावकाचार टीका, समाधितंत्र टीका, क्रियाकलाप टीका, आत्मानुशासन टीका और महापुराण टिप्पण।

आचार्य माणिक्यनन्दि के शिष्य और उन्हीं के परीक्षामुख पर विशालकाय एवं विस्तृत व्याख्या 'प्रमेयकमलमार्त्तंड' लिखने वाले अद्वितीय मनीषी के रूप में वे समादृत हैं। उन्होंने अकलंकदेव के दुरूह 'लघीयस्त्रय' नाम के न्याय ग्रंथ पर बहुत ही विशद और विस्तृत टीका लिखी है, जिसका नाम 'न्यायकुमुदचंद्र' है। न्यायकुमुदचंद्र अपने नामानुरूप न्याय रूपी कुमुदों को विकसित करने वाला चंद्र है। इसमें प्रभाचंद्र ने लघीयस्त्रय की कारिकाओं, उनकी स्वोपज्ञ वृत्ति और उसके दुरूह पद-वाक्यादि की विशद व्याख्या तो की ही है, किंतु प्रसंगानुसार विविध तार्किक चर्चाओं द्वारा अनेक अनुद्घाटित तथ्यों एवं विषयों पर भी नया प्रकाश डाला है। इसी प्रकार उन्होंने 'प्रमेयकमलमार्तंड' में भी अपनी तर्कपूर्ण प्रतिभा का पूरा उपयोग किया है और परीक्षामुख के प्रत्येक सूत्र एवं उसके पदों का विस्तृत एवं विशद व्याख्यान किया है। प्रभाचंद्र के ये दोनों व्याख्यान ग्रंथ मूल जैसे ही हैं। इनके बाद इन जैसा कोई मौलिक या व्याख्या ग्रंथ नहीं लिखा गया। समंतभद्र, अकलंक और विद्यानंद के बाद प्रभाचंद्र जैसा कोई जैन तार्किक हुआ दिखाई नहीं देता।

प्रभाचंद्र का उल्लेख दक्षिण भारत के श्रवण बेलगोला शिलालेखों में हुआ है। इनका कार्यक्षेत्र मध्य भारत में धारा नगरी थी। चतुर्भुज का नाम भी इनके गुरु के रूप में आता है। इनके समय काल के बारे में तीन मान्यताएँ हैं-ई.

आठवीं शताब्दी, ई. ग्यारहवीं शताब्दी और ई. 1065, जिनमें से ग्यारहवीं शती बहुमान्य है।

धनपाल और शोभन संकाश्य गोत्रीय सर्वदेव नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। उन्होंने जैन धर्म का अंगीकार कर लिया था। धनपाल आरंभ में जैन मत के विरोधी थे। कालांतर में वे भाई शोभन से प्रभावित हुए और जैन वाङ्मय के प्रमुख मनीषी के रूप में स्थापित हुए। जाहिर है कि भोज प्रभृति परमार शासकों ने सभी मत-पंथों के विद्वानों को अपनी सभा में स्थान देकर समंवय का परिचय दिया, जहाँ सभी संप्रदाय एक-दूसरे को प्रेरित-प्रभावित करते हुए दार्शनिक परंपराओं को गतिशील बनाए हुए थे।

लोक में भोज की प्रतिष्ठा सुविदित तथ्य है। उनकी तुलना पहले के समय के तीन प्रतिमानी व्यक्तित्वों से की जाती है-कर्ण, जो दानवीरता का श्रेष्ठतम प्रतिमान है। उदयन, जो चर्चित चरित नायक है और विक्रमादित्य, जो न्यायप्रियता, विद्वता और विद्याप्रेम के प्रतिमान हैं। भोज अपने विविधमुखी चरित्र और अवदान से एक तरह से इन तीनों को पीछे छोड़ते हैं। उनके संबंध में ठीक ही कहा गया है, कवियों में, शास्त्रार्थ करने वालों में, योगियों में, देहधारियों में, दानियों में, सज्जनों का उपकार करने वालों में, धनियों में और धनुर्धरों में-इस पृथ्वी पर भोज जैसा कोई अन्य राजा नहीं हुआ है।

कविषु वादिषु योगीषु
देहिषु द्रविणदेषु सत्यमुपकारिषु।
धनिषु धन्विषु धर्म धनेष्वपि क्षितितले
न हि भोजसमो नृपः।।

उन्होंने समरांगण सूत्रधार जैसे विशालकाय ग्रंथ के जरिए शिल्प कला का विश्वकोशीय ग्रंथ तो लिखा ही, उसके प्रतिमानों को साकार रूप देते हुए उज्जैन, धार और विदिशा (भाइल्लस्वामीपुर-परवर्ती भेलसा) जैसे पुरातन नगरों का नवीन नियोजन किया, वहीं भोजपुर (रायसेन), भोपाल (भोजपाल) जैसे उन्नत नगर भी बसाए। राजा भोज ने ही भोपाल में सुविशाल प्राकृतिक झील को बाँधकर तालाब का रूप दिया, जो आज भी अस्तित्व में है। राजा भोज द्वारा भोपाल के निकट भोजपुर में निर्मित भोजेश्वर शिव मंदिर आज भी अतीत के वैभव की याद दिलाता है, जहाँ 18 फीट ऊँचा शिवलिंग प्रतिष्ठित है। मध्य प्रदेश के सांस्कृतिक गौरव के प्रतीक अनेक स्मारकों में से अधिकांश राजा भोज की ही देन हैं। चाहे विश्व प्रसिद्ध भोजपुर का भोजेश्वर मंदिर हो या विश्व भर के शैव मतावलंबी लोगों की आस्था का केंद्र उज्जैन स्थित ज्योतिर्लिंग महाकालेश्वर मंदिर हो या ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर, धार की भोजशाला हो या भोपाल के विशाल तालाब, ये सभी या तो राजा भोज द्वारा निर्मित किए गए हैं या उनका पुनर्निर्माण भोज ने करवाया है। उन्होंने देश के कई स्थानों, जैसे केदारनाथ, रामेश्वरम्, सोमनाथ, मुण्डीर आदि में मंदिर भी बनवाए, जो हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के अंग हैं। चित्तौड़ का समाधीश्वर मंदिर भी राजा भोज ने ही बनवाया था। इन सभी देवालयों और अन्य निर्माणों की स्थापत्य कला अद्वितीय है।

अकबर के समकालीन मुहम्मद कासिम, जिसका उपनाम फरिश्ता था, ने अपने इतिहास ग्रंथ तारीख फरिश्ता में उल्लेख किया है कि खरकौन (खरगोन), बीजागढ़ और हिंदिया (हंडिया-हरदा) की बसाहट भोज के समय में ही की गई थी। इंसाफ और सखावत में राजा भोज विक्रमादित्य के तरीके पर चलता था, इस बात का जिक्र भी फरिश्ता ने किया है।

राजा भोज की कीर्ति कौमुदी यदि दिग्दिगंत व्यापी हुई तो उसके पीछे उनके सारस्वत अवदान के साथ लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए तत्परता की भी अविस्मरणीय भूमिका रही है। भोजदेव सही मायने में एक ऐसे विद्यानुरागी थे, जिन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा का आलोड़न करते हुए अपनी ओर से उसे समृद्ध किया है, वहीं विविध ज्ञान शाखाओं में निपुणता लिए उनकी विद्वत्सभा ने भी इसे आगे बढ़ाया।

V

आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन, मध्यप्रदेश-456 010, मोबाइल 98260 47765
ई-मेल : shailendrasharma1966@gmail.com

अद्वितीय श्रीनगर और वहाँ का ट्यूलिप गार्डन

— सीताराम गुप्ता

ट्यूलिप गार्डन के अंदर दूर-दूर तक जिधर नज़र पहुँच रही थी रंगों की इंद्रधनुषी छटा बिखरी नज़र आती थी। जिधर देखो फूल-ही-फूल। क्यारियों में ही नहीं पेड़-पौधों पर भी फूल-ही-फूल नज़र आ रहे थे। प्रफुल्लचित्त दर्शकों को देखकर भी कम ख़ुशी नहीं हो रही थी। अकेले दर्शक कम थे। अधिकांश परिवार के साथ आए थे। देखने को बहुत कुछ था लेकिन समय कम था क्योंकि साँझ घिर आई थी। जितना हो सका देखा और निर्णय लिया कि इसे देखने के लिए एक बार फिर आएँगे और पर्याप्त समय निकालकर आएँगे और आराम से देखेंगे। दस अप्रैल को शाम छह बजे वापसी थी।

कश्मीर के नैसर्गिक सौंदर्य को देख कर फ़ारसी के एक शायर ने कहा था :

अगर फ़िर्दौस बरूएज़मीन अस्त,
हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।

अर्थात् अगर धरती पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं पर है, यहीं पर है और यहीं पर है। वास्तव में कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहा जा सकता है और इस स्वर्ग के प्राकृतिक सौंदर्य को और अधिक उभारने में मनुष्य ने भी कोई कसर नहीं रख छोड़ी, विशेषकर मुग़ल बादशाहों ने जिन्होंने श्रीनगर के पास डल झील के किनारे पहाड़ी ढलानों पर शालीमार और निशात जैसे ख़ूबसूरत सीढ़ीनुमा बाग़ लगवाए। ऐसे सुंदर हैं ये बाग़ कि स्वर्ग भी इनसे ईर्ष्या करने लगे। तभी तो 'इक़बाल' साहब ने ऐसे सुंदर बाग़ों से युक्त स्वर्गतुल्य भारतभूमि के विषय में कहा है :

गोदी में खेलती हैं इसके हज़ारों नदियाँ,
गुलशन है जिनके दम से रश्के-जिनाँ हमारा।

कश्मीर में नदियों और झीलों की भी कमी नहीं है। श्रीनगर में ही प्रसिद्ध डल तथा नगीन झीलें हैं तथा झेलम नदी बहती है जो कश्मीर को स्वर्ग के समान बनाने में सक्षम हैं। अब कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो इस स्वर्ग को नहीं देखना चाहेगा? कश्मीर का सौंदर्य ही ऐसा है कि पर्यटक बार-बार यहाँ आना चाहेगा। हम स्वयं भी इसका अपवाद नहीं हैं। मुझे सबसे पहले अक्तूबर 1975 में कश्मीर जाने का अवसर मिला। ये कॉलेज का ज़माना था। हम कई मित्र एक साथ वहाँ पहुँचे और कई दिनों तक कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य का जी भरकर आनंद उठाया। शालीमार और निशात बाग तथा चश्मे-शाही गए। शालीमार और निशात में उस समय सेब के बहुत सारे पेड़ थे जो फलों से लदे हुए थे। अब यहाँ दूसरे पेड़-पौधे और फूल तो बहुत हैं लेकिन सेब के पेड़ लगभग नदारद हैं। डल झील में शिकारों की सैर का आनंद लिया। चार चिनार भी गए।

उस समय चार चिनार पर बहुत चहल-पहल होती थी। चार चिनार डल के बीचोंबीच एक छोटा-सा वर्गाकार द्वीप है जिसके चारों कोनों पर चार भव्य चिनार के पेड़ लगे हुए थे। पिछले दिनों सन् 2013 ई. में कश्मीर में आई भयंकर बाढ़ में एक चिनार सूखकर गिर गया। आज एक चिनार के सूखकर गिर जाने और शेष बचे हुए तीन में से दो के आंशिक रूप से

खराब हो जाने के कारण वहाँ की रौनक लगभग समाप्त हो चुकी है। यद्यपि सूख गए चिनार की जगह चिनार का नया पेड़ लगा दिया गया है लेकिन फिर भी वो बात कहाँ? चिनार बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है। कब यह बड़ा होगा और कब चार चिनार की पुरानी रौनक लौटेगी? और जब तक ये नया चिनार बड़ा होगा, तब तक पुराने चिनारों की क्या स्थिति होगी कहा नहीं जा सकता। उस समय गुलमर्ग भी गए थे। गुलमर्ग की हरियाली देखकर तो मन बल्लियों उछलने लगा था। उसके बाद धीरे-धीरे कश्मीर के हालात बदतर होते चले गए और वहाँ जाना नामुमकिन नहीं तो खतरनाक जरूर हो गया। कारण चाहे जो भी हों जिस जगह के हालात सामान्य न हों वहाँ पर्यटक क्यों जाना चाहेगा? असामान्य हालात में यदि जाएगा भी तो क्या उसे अपेक्षित प्रसन्नता और सुकून मिल पाएगा? शायद नहीं। लेकिन लोग इतनी जल्दी कहाँ हार मानते हैं? वे कब निराश होते हैं?

कश्मीर की पहली यात्रा के पूरे चालीस साल बाद अक्तूबर 2015 में एक बार फिर से कश्मीर जाने का कार्यक्रम बन गया। कश्मीर की पहली यात्रा मित्रों के साथ की थी, लेकिन ये यात्रा परिवार के साथ की गई। पहली यात्रा रेल तथा बस द्वारा की गई थी और दिल्ली से श्रीनगर पहुँचने में ही पूरे ढाई दिन लग गए थे। इस बार वायुयान से जाना हुआ और झट से श्रीनगर जा पहुँचे। थकान का नामो-निशान नहीं। शाम को ख़ूब पैदल घूमे और डल में शिकारे से सैर की। अगले दिन सोनमर्ग जा पहुँचे। सोनमर्ग से वापसी में शालीमार और निशात जा पहुँचे। कितना कुछ बदल गया था चालीस सालों में। इस परिवर्तन को और अन्य बहुत कुछ देखने की इच्छा थी, लेकिन पता चला कि उधमपुर की तरफ गड़बड़ होने से कश्मीर में कई स्थानों पर उपद्रव शुरू हो गए हैं। पर्यटकों के ही नहीं, वहाँ के स्थानीय लोगों के चेहरों पर भी मायूसी के मेघ मँडराने लगे। कई दिन रुकने का कार्यक्रम बनाकर गए थे लेकिन अगले ही दिन लौटना पड़ा। वापसी की टिकटें रद्द करवाने और नई टिकटें बनवाने में भी काफी चूना लग गया। बिना घूमे-फिरे ही इतना ख़र्चा हो गया, जितना पूरे घूमने-फिरने के दौरान होना था। काफी मायूसी हुई लेकिन क्या किया जा सकता था? लौट के बुद्धू घर को आए वाली स्थिति हो गई थी।

घाटी की अर्थव्यवस्था काफी हद तक पर्यटन पर आश्रित है। पर्यटक नहीं होंगे या कहीं आ-जा नहीं सकेंगे तो लोगों को काम नहीं मिलेगा। ख़ास तौर पर टैक्सी और शिकारे वाले बेरोज़गार हो जाएँगे। कितने मुश्किल होते हैं रोज़ कुआँ खोदकर प्यास बुझाने वालों के लिए इस प्रकार के हालात अंदाज़ा लगाना मुश्किल नहीं। यहाँ कोई नहीं चाहता कि दंगे हों और घाटी बंद हो जाए। सभी उपद्रवियों को बुरा-भला कह रहे थे। घाटी शांत थी लेकिन घाटी से बाहर जाने वाले रास्ते बंद हो गए थे और पर्यटक श्रीनगर में क़ैद होकर रह गए थे। पर्यटकों के लिए भी कम निराशाजनक नहीं होतीं ऐसी स्थितियाँ। लगता था जीवन में अब फिर कभी कश्मीर जाना संभव नहीं हो सकेगा लेकिन कश्मीर का आकर्षण ही ऐसा है कि दुश्वारियों और ख़तरों के बावजूद पर्यटक पुनः-पुनः कश्मीर जा पहुँचते हैं। पिछली यात्रा के पूरे साढ़े तीन साल के बाद अप्रैल 2019 में हम भी एक बार फिर से धरती के इस स्वर्ग में जा पहुँचे। पिछली दोनों यात्राएँ अक्तूबर के महीनों में की गई थीं, लेकिन 2019 में ये यात्रा अप्रैल मास के प्रथम सप्ताह में की, जिसका एक विशेष प्रयोजन भी था।

जम्मू और कश्मीर राज्य की राजधानी श्रीनगर एक प्रसिद्ध पर्यटक-स्थल है इसमें संदेह नहीं। एक प्रश्न उठता है कि हम बार-बार कश्मीर या श्रीनगर क्यों जाना चाहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीनगर तथा आसपास के कई रमणीक दर्शनीय-स्थलों के नाम गिनवाए जा सकते हैं, जैसे डल और नगीन झीलें, शालीमार और निशात बाग, चश्मे-शाही तथा परी महल इत्यादि। श्रीनगर से बाहर गुलमर्ग, सोनमर्ग, पहलगाम और दूधपथरी जैसी सुरम्य घाटियाँ हैं। इसमें दो राय नहीं कि कश्मीर घाटी के प्राकृतिक सौंदर्य को कई गुना बढ़ाने में इन दर्शनीय-स्थलों और वादियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है लेकिन वर्तमान शताब्दी में इस सूची में कई और नाम भी जुड़ गए हैं, जिनमें एक नाम है इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन या कंद पुष्प उद्यान का। कई बार कई जगह इस ट्यूलिप गार्डन के बारे में पढ़ने के बाद इसे

देखने की इच्छा अत्यंत तीव्र हो गई थी। इस बार अप्रैल में यहाँ आने का प्रमुख उद्देश्य अप्रैल में खुलने वाले इस ट्यूलिप गार्डन के सौंदर्य से परिचित होना भी था।

छह अप्रैल को श्रीनगर पहुँचते ही सबसे पहले होटल पहुँचे और वहाँ से सीधे ट्यूलिप गार्डन देखने जा पहुँचे। हमारा होटल बुलवर्ड रोड पर नेहरू पार्क के पास ही डल के साथ वाली सड़क के एकदम किनारे पर था। पिछली बार अक्तूबर 2015 में भी हम इसी होटल में रुके थे। यद्यपि हम इस होटल का नाम भूल गए थे, लेकिन ये याद था कि यह डल के घाट संख्या तेरह और चौदह के बीच है। पिछली बार यह होटल हमें बहुत पसंद आया था। घाट संख्या तेरह के बाद गाड़ी धीमी करवा दी और पुराने होटल को पहचान कर पुनः उसमें जा पहुँचे। ये जानकर कि हम पहले भी उनके होटल में रुक चुके हैं, होटल के स्टाफ ने बेहद गर्मजोशी से हमारा स्वागत किया। कमरे में सामान रखवाकर थोड़ा फ्रैश हुए और फौरन बाहर आ गए। वहाँ से ट्यूलिप गार्डन अधिक दूर नहीं था, लेकिन शनिवार को वीकएण्ड के कारण स्थानीय दर्शकों की काफी भीड़ थी, जिसके कारण जाम लग गया था। काफी दूर से पैदल चलकर वहाँ तक पहुँचना पड़ा।

वहाँ पहुँचकर टिकट लिए और अंदर जा पहुँचे। यहाँ प्रायः सभी स्थानों पर बीस रुपए का टिकट लगता है, जिस पर अठारह प्रतिशत जीएसटी लगाकर कुल चौबीस रुपए देने पड़ते हैं, लेकिन ट्यूलिप गार्डन में एक टिकट पचास रुपए का है, जो अठारह प्रतिशत जीएसटी लगाने के बाद उनसठ रुपए का पड़ता है। इस विषमता का कारण है ट्यूलिप गार्डन का सिर्फ़ एक महीने के लिए खुलना। ये सिर्फ़ जानकारी के लिए बता रहा हूँ। ट्यूलिप गार्डन की भव्यता एवं रख-रखाव तथा इसके खुलने की अल्प अवधि को देखते हुए उनसठ रुपए का टिकट किसी भी तरह से मँहगा नहीं कहा जा सकता। ट्यूलिप गार्डन के अंदर पहुँचने पर बाकी सब कुछ भूल गए और उद्यान के सौंदर्य में खो गए। एक स्वप्न-लोक की तरह प्रतीत हो रहा था ट्यूलिप गार्डन एवं आसपास का परिवेश। तीन तरफ ऊँची-ऊँची पर्वत-शृंखलाएँ और सामने दूर तक फैली डल झील।

ट्यूलिप गार्डन के अंदर दूर-दूर तक जिधर नज़र पहुँच रही थी—रंगों की इंद्रधनुषी छटा बिखरी नज़र आती थी। जिधर देखो फूल-ही-फूल। क्यारियों में ही नहीं पेड़-पौधों पर भी फूल-ही-फूल नज़र आ रहे थे। प्रफुल्लचित्त दर्शकों को देखकर भी कम ख़ुशी नहीं हो रही थी। अकेले दर्शक कम थे। अधिकांश परिवार के साथ आए थे। देखने को बहुत कुछ था लेकिन समय कम था, क्योंकि साँझ घिर आई थी। जितना हो सका, देखा और निर्णय लिया कि इसे देखने के लिए एक बार फिर आएँगे और पर्याप्त समय निकालकर आएँगे तथा आराम से देखेंगे। दस अप्रैल को शाम छह बजे वापिसी थी। कार्यक्रम बनाया कि दस अप्रैल को सबसे पहले ट्यूलिप गार्डन जाएँगे और समय बचा तो साथ वाले बॉटेनिकल गार्डन भी। ऐसा ही किया। दस अप्रैल को सुबह-सुबह पुनः ट्यूलिप गार्डन जा पहुँचे और कई घंटे वहाँ व्यतीत किए। टिकट काउंटर पर गाइड के बारे में पता किया, लेकिन उस समय वहाँ कोई गाइड उपलब्ध नहीं था। अंदर जाने पर संयोग से एक ऐसे शख़्स से मुलाक़ात हो गई, जिसने हमारे ट्यूलिप गार्डन आने के मक़सद को सार्थक बना दिया।

क्योंकि मैं फूलों और पेड़-पौधों के किसी जानकार अथवा गाइड की तलाश में था, अतः कई लोगों से इस बारे में पूछा। जब वहाँ एक कुर्सी पर बैठे एक शख़्स से मैंने पूछा कि यहाँ गार्डन के बारे में जानकारी देने के लिए कोई आदमी मिलेगा क्या तो उन्होंने कहा,—''बोलो क्या जानना चाहते हो? मैं बतला देता हूँ।'' मैंने कहा कि आप हमारे साथ चलिए और यहाँ के सारे फूलों और पेड़-पौधों के बारे में बतलाइए। इन शख़्स का नाम है निसार अहमद। जम्मू और कश्मीर सरकार के फ़्लोरीकल्चर विभाग में कई सालों से स्थायी रूप से माली के रूप में कार्यरत हैं और आजकल ट्यूलिप गार्डन में कार्यरत हैं। निसार अहमद हमारे साथ हो लिए और एक घंटे से भी ज़्यादा समय तक हमारे साथ रहे। उन्होंने न केवल ट्यूलिप के फूलों के बारे में बताया अपितु दूसरे सभी फूलों, वनस्पतियों और पेड़-पौधों के बारे में भी विस्तार से बतलाया। उन्होंने हर फूल तथा हर पेड़ के बारे में इस तरह से बतलाया, जैसे अपने परिवार के सदस्यों से परिचय करवा रहे हों। वास्तव में ये

सभी फूल, पेड़-पौधे और वनस्पतियाँ उनके परिवार के सदस्य ही हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल अपने हाथों से इन्हें रोपा है अपितु सालों से इन्हें सजाने-सँवारने का काम भी कर रहे हैं।

वर्ष 2008 में दर्शकों के लिए पहली बार खुला इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन या कंद पुष्प उद्यान कई अर्थों में पुराने दर्शनीय-स्थलों से आगे निकल जाता है क्योंकि यहाँ इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन में ट्यूलिप अथवा कंद पुष्प की जितनी प्रजातियाँ और फूलों की संख्या एक साथ देखने को मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है। कश्मीर में ही नहीं पूरे भारत में कहीं भी ट्यूलिप की इतनी अधिक प्रजातियाँ नहीं देखी जा सकती हैं। यद्यपि राष्ट्रपति भवन स्थित मुग़ल उद्यान में ट्यूलिप सहित अनेकानेक फूल-पौधों की दुर्लभ क़िस्में लगाई जाती हैं लेकिन ट्यूलिप की इतनी अधिक प्रजातियाँ और संख्या राष्ट्रपति भवन स्थित मुग़ल उद्यान में भी नहीं लगाई जाती, क्योंकि दिल्ली की जलवायु और भौगोलिक स्थिति इनके अनुकूल नहीं है। अत: इनके लगाने और रखरखाव में बहुत परिश्रम करना पड़ता है और थोड़ी सी असावधानी अथवा मौसम की प्रतिकूलता के कारण पौधे और फूल नष्ट हो जाते हैं।

श्रीनगर की भौगोलिक स्थिति तथा मौसम ट्यूलिप के पौधों के प्रतिकूल बिल्कुल नहीं है, जिससे इन्हें यहाँ उगाना सरल नहीं तो असंभव भी नहीं है। हाँ, यदि समय से पहले गर्मी बढ़ जाती है तो फूल भी जल्दी खिलने शुरू हो जाते हैं, जिससे गार्डन को समय से पहले ही दर्शकों के लिए खोलने का निर्णय लेना पड़ता है। बाहर से आने वाले दर्शकों अथवा पर्यटकों को भी इससे असुविधा हो जाती है। यह ट्यूलिप उद्यान श्रीनगर स्थित ज़बरवान पर्वत शृंखला की निचली ढलानों पर स्थित है। पहाड़ी ढलान पर होने के कारण श्रीनगर के अन्य उद्यानों की तरह ही ये भी एक सीढ़ीनुमा उद्यान ही है। इसकी ऊँचाई लगभग उतनी ही है जितनी यहाँ स्थित निशात और शालीमार उद्यानों की है। चश्मे-शाही इसके पास ही है, लेकिन इससे मामूली-सी ज़्यादा ऊँचाई पर स्थित है। परीमहल इनसे दो किलोमीटर आगे और अपेक्षाकृत कुछ अधिक ऊँचाई पर है। श्रीनगर स्थित इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन में वैसे तो अनेक अन्य प्रकार के फूल और पेड़-पौधे भी हैं, लेकिन यह विशेष रूप से ट्यूलिप के फूलों को ही समर्पित है, जिसमें ट्यूलिप की अत्यंत आकर्षक तथा रंग-बिरंगी क़िस्में देखने को मिलती हैं।

नवंबर के महीने में पतझड़ और उसके बाद हिमपात के दौरान घाटी के अधिकांश वृक्ष व वनस्पतियाँ प्राय: नग्न हो जाती हैं। जैसे-जैसे पहाड़ों की ढलानों पर बर्फ पिघलने लगती है, वे हरीभरी वनस्पतियों और सुंदर-सुंदर फूलों से भर जाती हैं। पेड़ों में भी नई ऊर्जा का संचार होने लगता है। तीन-चार महीनों की ख़ामोशी के बाद सभी वृक्षों तथा वनस्पतियों में नई-नई कोमल पत्तियाँ निकलने लगती हैं। कई पेड़ों में पत्तियों से पहले कलियाँ विकसित होने लगती हैं और कलियाँ विकसित होकर फूल खिलने लगते हैं। इन्हीं दिनों वसंत ऋतु अर्थात् मार्च-अप्रैल के महीनों में ट्यूलिप के फूलों के खिलने का मौसम प्रारंभ होता है, अत: इसी दौरान श्रीनगर स्थित ट्यूलिप गार्डन भी दर्शकों का स्वागत करने के लिए तत्पर हो उठता है। अप्रैल के प्रारंभ में यह तैयार हो जाता है और दर्शकों के लिए खोल दिया जाता है। ट्यूलिप उद्यानोत्सव के दौरान पुष्प तथा प्रकृति-प्रेमी दर्शकों का ताँता लग जाता है। देश-विदेश के पर्यटक इसके आकर्षण में खिंचे कश्मीर की इस घाटी में चले आते हैं। सप्ताहांत में स्थानीय दर्शकों के कारण तो डल के किनारों पर जाम की स्थिति बनी रहती है।

यद्यपि बनावट की दृष्टि से ट्यूलिप की सभी क़िस्में एक जैसी ही होती हैं, लेकिन आकार की दृष्टि से इनमें विभिन्नता मिलती है। ट्यूलिप की कुछ क़िस्में आकार में छोटी होती हैं तो कुछ बड़ी। यदि रंगों की बात करें तो काले रंग को छोड़कर प्रकृति में उपलब्ध अन्य सभी रंगों के ट्यूलिप यहाँ मिल जाएँगे। यहाँ सफेद, नीले, पीले, नारंगी, किरमिज़ी, लाल, गुलाबी, बैंगनी, बनफ़शई, कत्थई, फ़्यूशिया पिंक अथवा रानी रंग, चॉकलेटी रंग आदि सभी रंगों के ट्यूलिप खिलते हैं। इन रंगों में भी पर्याप्त विविधता मिलती है। कुछ ट्यूलिप एकदम सफेद हैं तो कुछ हल्के क्रीम कलर के। कुछ गहरे लाल हैं तो कुछ हल्के या मिश्रित रंग के लाल। कुछ गहरे बैंगनी हैं तो कुछ हल्के बैंगनी अथवा बनफ़शई रंग के।

इसी तरह से गुलाबी रंग के ट्यूलिप भी कई शेड्स में दर्शकों को आकर्षित करने में सक्षम हैं। कई रंगों के ट्यूलिप के फूलों पर दूसरे रंग की चित्तियाँ भी देखी जा सकती हैं। कई ट्यूलिप के फूल चमकीले गहरे रंगों में हैं तो कुछ सामान्य रंगों के हैं। इसी आधार पर इनके गोल्डन, स्ट्रांग गोल्डन, गोल्डन परेड, हनीमून, लारगो आदि नाम भी दिए गए हैं। यही नहीं एक बार खिलने के बाद कई प्रकार के ट्यूलिप के फूलों के रंग परिवर्तित भी होते रहते हैं। यहाँ कुछ ऐसे रंगों के ट्यूलिप भी हैं, जिनका सही-सही नाम बतलाना संभव नहीं।

गुलाब इत्यादि फूलों की तरह ही ट्यूलिप की भी असंख्य किस्में होती हैं, जो इस उद्यान में भी देखी जा सकती हैं जिनमें स्टैंडर्ड, डबल ब्लूम, पैरेट, फ्रिंज, सिंगल लेट, रेम्ब्राँ, ट्रायम्फ, फॉस्टेरियाना, लिली फ्लावरिंग, बाइकलर स्टैंडर्ड आदि प्रमुख हैं। स्टैंडर्ड ट्यूलिप सबसे साधारण किस्म के ट्यूलिप होते हैं, जबकि डबल ब्लूम ट्यूलिप आकार में बड़े तथा अधिक सुंदर होते हैं। डबल ब्लूम ट्यूलिप में पंखुड़ियों की कई परतें होती हैं। पैरेट ट्यूलिप के फूल की पंखुड़ियों का आकार तोते के पंखों जैसा होता है और पंखुड़ियाँ भी कई रंगों की होती हैं। फ्रिंज ट्यूलिप के किनारे अपने नाम के अनुरूप झालरदार होते हैं जो बहुत आकर्षक होते हैं। कप जैसी आकृति वाले सिंगल लेट ट्यूलिप कई रंगों में मिलते हैं जो बहुत आकर्षक लगते हैं। रेम्ब्राँ ट्यूलिप काफी लंबे होते हैं, लेकिन हल्के रंगों में मिलते हैं, जिसके कारण इनका अपना अलग सौंदर्य होता है। अपने सुंदर रंगों तथा दो रंगों के कारण ट्रायम्फ ट्यूलिप भी पुष्प-प्रेमियों द्वारा बहुत अधिक पसंद किए जाते हैं। फॉस्टेरियाना ट्यूलिप की कलियाँ अन्य ट्यूलिप फूलों की कलियों के मुकाबले में कहीं अधिक आकर्षक होती हैं। लिली फ्लावरिंग ट्यूलिप की पंखुड़ियाँ अपेक्षाकृत लंबी तथा नुकीली होती हैं, जो मेहराब की तरह दिखलाई पड़ती हैं। बाइकलर स्टैंडर्ड ट्यूलिप के फूलों की पंखुड़ियाँ स्टैंडर्ड ट्यूलिप जैसी ही होती हैं, लेकिन इनमें रंगों की विविधता पाई जाती है।

ट्यूलिप के पौधों में एक पौधे पर प्रायः एक फूल ही खिलता है। ट्यूलिप के फूल ही नहीं इसका सारा पौधा ही सुंदर लगता है। हरे-हरे पत्तों के मध्य सीधे वृतों के शिखर पर खिले रंग-बिरंगे पुष्प अत्यंत आकर्षक लगते हैं। आम तौर पर ज़मीन से फूल तक पूरे पौधे की लंबाई 70-75 सेंटीमीटर तक ही होती है। ट्यूलिप लंबी-लंबी सीधी आयताकार, वृत्ताकार अथवा अन्य ज्यामितीय आकार की क्यारियों में लगाए जाते हैं। जिस प्रकार से एक पंक्ति में पौधों के बीच बराबर अंतर रखा जाता है, उसी प्रकार से प्रत्येक पंक्ति में भी बराबर अंतर रखा जाता है। एक क्यारी में प्रायः एक ही रंग अथवा प्रजाति के पौधे लगाए जाते हैं। विभिन्न रंगों के फूलों की क्यारियाँ ऐसे लगती हैं, मानो पूरे उद्यान में रंग-बिरंगे कालीन बिछा दिए गए हों। अलग-अलग क्यारियों के लिए सही रंगों के फूलों का चुनाव करना, जिससे कि वे अधिकाधिक आकर्षक लगें ये भी एक कला है और इसे यहाँ शिद्दत के साथ महसूस किया जा सकता है। वैसे तो एक क्यारी में कई रंगों के ट्यूलिप भी लगाए जा सकते हैं, लेकिन एक क्यारी में केवल एक रंग के फूल लगाने का उद्देश्य अलग-अलग रंगों के फूलों के कंदों को आपस में मिलने से रोकना ही हो सकता है।

फूल खिलने के बाद यह कुछ दिनों या कुछ सप्ताह तक बना रहता है। ट्यूलिप के फूल की अवधि प्रायः पंद्रह-सोलह दिन मानी गई है। यह देखने में जितना सुंदर लगता है उतना ही कोमल भी होता है। एक निश्चित तापक्रम में यह लंबे समय तक बना रहता है, लेकिन विषम तापमान या मौसम में बहुत जल्दी ख़राब हो जाता है। यदि सीजन में अपेक्षित तापमान से चार-पाँच डिग्री तापमान अधिक हो जाए तो सारे फूल ही जल्दी से खिलकर समाप्त हो जाएँ और महीने डेढ़ महीने तक रहने वाला सौंदर्य सप्ताह भर में ही चलता बने, ऐसे नाज़ुक मिजाज़ के भी होते हैं ये ट्यूलिप। दिन के समय सूर्य की रोशनी में फूल खिले रहते हैं और सूर्यास्त के बाद बंद हो जाते हैं। ग़लत समय की बारिश का भी ट्यूलिप के फूलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि रात में बारिश हो जाती है तो फूलों पर कोई विशेष प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि फूलों के बंद हो जाने के कारण पानी उनके अंदर तक नहीं पहुँच पाता, लेकिन दिन में अधिक बारिश हो जाने पर

फूल खराब हो जाते हैं। ट्यूलिप गार्डन में लगाए गए ट्यूलिप ज़्यादातर एक डेढ़ महीने तक ही खिलते हैं और उसके बाद समाप्त हो जाते हैं, लेकिन इस एक डेढ़ महीने के सीजन के लिए सारे साल काम चलता रहता है। ट्यूलिप को कंद पुष्प भी कहते हैं, क्योंकि इन्हें कंद यानी प्याज़ के आकार के कंदों से ही उगाया जाता है। फूल खिलने बंद हो जाने के बाद इनके कंदों को सुरक्षित रखने का काम प्रारंभ हो जाता है।

अगली वसंत ऋतु में ट्यूलिप उद्यान के तैयार होने से कई महीने पहले नए पौधे लगाने का काम प्रारंभ हो जाता है। पौधों को एक निश्चित क्रम में नाप-तौलकर लगाया जाता है। सभी पौधे एक सीध या गोलाई में लगाए जाते हैं। पौधों को लगाने और उनकी देखभाल करने के लिए यहाँ सैकड़ों लोग दिन-रात काम करते हैं। कई विशेषज्ञों की देखरेख में सौ से अधिक माली यहाँ पौधों को लगाने तथा उनकी देखरेख में लगे रहते हैं। उनके अथक परिश्रम के कारण ही पूरा उद्यान क्षेत्र रंगों से सराबोर हो उठता है। इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन का प्रबंधन और देखरेख जम्मू तथा कश्मीर सरकार के फ़्लोरीकल्चर विभाग द्वारा की जाती है। श्रीनगर की ज़बरवान पर्वत शृंखला की निचली ढलानों पर लगे इस उद्यान का प्रारंभ वर्ष 2008 में हुआ था। यह लगभग तीस हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैला हुआ है, जिसमें से उन्नीस हेक्टेयर में पचास से अधिक प्रकार के ट्यूलिप तथा अन्य अनेक प्रकार के पुष्प लगे हुए हैं, जिनकी कुल संख्या बारह लाख से भी अधिक है। इसमें से सात हेक्टेयर में केवल ट्यूलिप ही लगे हुए हैं।

ट्यूलिप मूल रूप से मध्य एशिया में उगने वाला एक जंगली फूल था, जिसे लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व तुर्की के लोगों ने उगाना शुरू किया। वर्तमान तुर्की के ओटोमन साम्राज्य के दौरान ट्यूलिप के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया और सोलहवीं शताब्दी में हॉलैंड के राजनयिकों और राजदूतों ने इसे अपने यहाँ काफी तादाद में आयात किया। उन्हीं दिनों ऑस्ट्रिया में विएना के प्रसिद्ध बागवानी विशेषज्ञ कैरोलस क्लूसियस ने ट्यूलिप की नई किस्में विकसित कर इसे उगाना प्रारंभ किया। जब उन्होंने इस पर पुस्तक लिखी तो ये फूल इतना लोकप्रिय हो गया कि वहाँ के लोग कैरोलस क्लूसियस के ट्यूलिप के उद्यान से ही पौधे और कंद चुरा-चुराकर ले जाने लगे। तब से आज तक ट्यूलिप की खेती और पैदावार में निरंतर सुधार और वृद्धि हो रही है। ट्यूलिप के फूलों का रंग और आकार इतना अधिक आकर्षक होता है कि बिना सुगंध के भी इसकी माँग बनी रहती है। यही कारण है कि विषम परिस्थितियों के बावजूद जहाँ भी और जैसे भी संभव हो, लोग ट्यूलिप के पौधे लगाना चाहते हैं।

आज ट्यूलिप को पूरे विश्व में एक प्रसिद्ध सजावटी फूल के रूप में महत्त्व प्राप्त हो चुका है। दुनिया में सबसे ज़्यादा ट्यूलिप के पौधे अथवा फूल नीदरलैंड में उगाए जाते हैं। ट्यूलिप के फूलों के विश्वव्यापी व्यापार में भी नीदरलैंड की बहुत बड़ी भागीदारी रहती है। आज नीदरलैंड दुनिया का सबसे बड़ा ट्यूलिप के फूलों का उत्पादक तथा निर्यातक देश है, जिससे लोगों की धारणा बन गई है कि ट्यूलिप का मूल स्थान नीदरलैंड है, लेकिन जैसा कि ऊपर कहा गया है—ट्यूलिप का मूल स्थान वास्तव में तुर्की है। तुर्की से सोलहवीं शताब्दी में यह फूल ऑस्ट्रिया, हॉलैंड और इंग्लैंड ले जाया गया। उसी दौरान गेस्नर ने अपने लेखों में इस फूल का उल्लेख किया और थोड़े समय में ही यह फूल प्रसिद्ध होकर पूरे यूरोप में फैल गया। गेस्नर के नाम पर ही इस फूल का नामकरण ट्यूलिपा गैस्नेरिआना (Tulipa gesneriana) किया गया। आज इसकी असंख्य प्रजातियाँ और नाम मिलते हैं।

अपने चित्ताकर्षक रंग-रूप के कारण ट्यूलिप आज पूरे विश्व में लोकप्रिय हो चुका है। ट्यूलिप के फूलों की एक एशियाई प्रजाति भी मिलती है, जिसे लेडी ट्यूलिप या जेन ट्यूलिप के नाम से जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम है ट्यूलिपा क्लूज़िआना (Tulipa clusiana)। यह अफगानिस्तान, इराक़, ईरान, पाकिस्तान तथा पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में ख़ूब उगते हैं। कश्मीर में पांपोर में केसर की खेती की जाती है। केसर की फसल के बाद खाली पड़े खेतों में वसंत के प्रारंभ में सड़क के दोनों ओर मीलों तक बहुत अधिक संख्या में लेडी ट्यूलिप या जेन ट्यूलिप के

फूल खिले देखे जा सकते हैं, जो बहुत सुंदर लगते हैं। पर्यटक अपने वाहनों से उतर-उतरकर इन्हें पास जाकर देखते हैं और इन्हें अपने कैमरों में क़ैद कर लेते हैं, लेकिन ये दृश्य केवल वसंत ऋतु में ही दिखलाई पड़ते हैं, सारे साल नहीं। केसर की फसल के समय पूरा क्षेत्र केसर की ख़ुशबू से भर जाता है। वास्तव में कश्मीर में जब भी जाओ, जिस मौसम में भी जाओ, कुछ नया देखने अथवा अनुभव करने को मिलता है जो अद्‌भुत ही नहीं अद्वितीय भी होता है।

श्रीनगर के दूसरे सभी दर्शनीय स्थलों पर पेड़-पौधे तथा फल-फूल लगाने और उनकी देखरेख करने का कार्य जम्मू तथा कश्मीर सरकार का फ़्लोरीकल्चर विभाग ही करता है। देश के पुष्प-प्रेमियों में ट्यूलिप की चाहत और लोकप्रियता तथा कश्मीर में इसके उगाने की अनुकूल संभावनाओं को देखते हुए जम्मू और कश्मीर के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री ग़ुलाम नबी आज़ाद ने वर्ष 2006 में कश्मीर में ट्यूलिप गार्डन लगाने के विचार को जन्म दिया। उनका यह हसीन ख़्वाब वर्ष 2008 में पूरा हुआ। तब से हर साल लाखों दर्शक इसे देखने आते हैं। वर्ष 2018 में इस उद्यान को देखने के लिए एक लाख अट्ठासी हज़ार से अधिक दर्शक यहाँ पर आए। इस उद्यान को विकसित करने का एक उद्देश्य और भी था और वह था श्रीनगर अथवा कश्मीर घाटी में पर्यटन की अवधि का विस्तार करना। पहले मार्च-अप्रैल के महीनों में पर्यटक यहाँ नहीं आते थे। ट्यूलिप गार्डन के कारण अब अप्रैल के महीने में भी बाहरी पर्यटक यहाँ ख़ूब आते हैं। हमारा अप्रैल के महीने में यहाँ आने का कार्यक्रम भी इस दौरान यहाँ ट्यूलिप गार्डन के खुलने के कारण ही बना इसमें संदेह नहीं।

इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन में ट्यूलिप के अतिरिक्त और भी बहुत से पेड़-पौधे और वृक्ष हैं, जिनके कारण यहाँ रंगों की बहार छाई रहती है। ट्यूलिप के अतिरिक्त हायसिंथ नामक फूल के पौधे भी बहुत अधिक संख्या में लगाए गए हैं। हायसिंथ भी ट्यूलिप की तरह ही अनेकानेक रंगों में मिलते हैं। हायसिंथ की भी अनेक प्रजातियाँ मिलती हैं। ग्रेप हायसिंथ अथवा मस्कैरी भी इनमें से एक है जिसके फूल यहाँ लगाए गए हैं। हायसिंथ का वानस्पतिक नाम हायसिंथस ओरिएंटेलिस (Hyasinthus orientalis) है। इन्हें प्रायः वृत्ताकार क्यारियों में लगाया गया है। इनके साथ ही दूसरे ऐसे फूल भी लगाए गए हैं जो इनके समाप्त होने पर खिलने लगेंगे। इससे क्यारियाँ अपेक्षाकृत लंबे समय तक किसी-न-किसी फूल से सुशोभित रहेंगी।

हायसिंथ के अलावा डेफॉडिल अथवा नर्गिस के कई रंगों के फूल भी यहाँ बहुत अधिक संख्या में लगाए गए हैं विशेष रूप से सफेद और पीले डेफॉडिल। नारसिसस अथवा नर्गिस कवियों का भी प्रिय फूल है और इसका हर भाषा के साहित्य में वर्णन मिलता है। डेफॉडिल अथवा नर्गिस का वानस्पतिक नाम नारसिसस पोएटिकस (Narcissus poeticus) भी इसी ओर संकेत करता है। पेंसी अर्थात् वायोला ट्राइकलर (Viola tricolor) के विविध रंग और आकार के फूलों की तो यहाँ भरमार है। जिधर नज़र डालो अलग-अलग रंग-रूप के पेंसी के फूल दिखलाई पड़ेंगे। एक फूल का पौधा जो पूरी घाटी में प्रचुरता से उगाया जाता है, उसके भी अनेक सुंदर-सुंदर पौधे यहाँ लगाए गए हैं, जिसे यहाँ ट्यूलिप ट्री के नाम से संबोधित किया जाता है। इसमें पूरे पौधे में ट्यूलिप के आकार के गुलाबी-बैंगनी से रंगों के फूल लगते हैं और बहुत अधिक संख्या में लगते हैं। पौधों पर फूलों के अतिरिक्त कुछ नज़र नहीं आता। इसका वानस्पतिक नाम है मैग्नोलिया लिलीफ़्लोरा (Magnolia liliiflora)। श्रीनगर के हर उद्यान में ये प्रचुर संख्या में देखे जा सकते हैं।

कश्मीर का जिक्र हो और चिनार की बात न की जाए, ये हो ही नहीं सकता। पूरी कश्मीर घाटी में असंख्य चिनार के पेड़ लगे हैं—विशेष रूप से श्रीनगर से बाहर जाने वाले रास्तों अथवा सड़कों पर। कई पेड़ तो चार सौ साल से भी अधिक पुराने हैं। चिनार के पत्ते अत्यंत कलात्मक होते हैं। लकड़ी पर नक्काशी का काम हो या कपड़ों पर कढ़ाई का काम हो यहाँ हर प्रकार की दस्तकारी में चिनार के पत्तों के आकार को विशेष रूप से स्थान दिया जाता है। यहाँ उद्यान में भी कई नए-पुराने चिनार के पेड़ लगे हैं। नवंबर में जब चिनार के पेड़ों के पुराने पत्ते झड़ते हैं, तब भी वे ज़मीन पर बिछे हुए-से बहुत सुंदर लगते हैं। नवंबर में पतझड़ के बाद अब वसंत में इनकी नई

पत्तियाँ निकल रही हैं। अभी पत्तियाँ छोटी और नाज़ुक-नाज़ुक सी हैं इसलिए पेड़ दूर से पहचान में नहीं आ पाते। कुछ ही दिनों में ये पत्तियाँ घनी होकर पेड़ों पर अच्छी तरह से छा जाएँगी। चिनार का वानस्पतिक नाम प्लैटेनस ओरिएंटेलिस (Platanus orientalis) है। चिनार का पेड़ बहुत धीरे बढ़ता है। कश्मीर घाटी में चिनार के पुराने दरख़्तों के लगातार ख़राब होकर नष्ट हो जाने के कारण चिनार लगातार कम होते जा रहे हैं, जो चिंता का विषय है। इसी से घाटी में चिनार के पेड़ काटने पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगा दिया गया है।

जापानी सूगी पाइन अथवा जापानी रेड सीडर जिसका वानस्पतिक नाम क्रिप्टोमेरिया जैपोनिका (Cryptomeria japonica) है, वह भी यहाँ लगा हुआ है। विलो तथा वीपिंग विलो के दरख़्त भी यहाँ लगे हुए हैं। वीपिंग विलो को वनस्पति-शास्त्र में सैलिक्स बेबिलोनिका (Salix babylonica) के नाम से तथा विलो को सैलिक्स एल्बा (Salix alba) के नाम से जाना जाता है। विलो के पेड़ तो पूरी कश्मीर घाटी में मिलते हैं और ख़ूब मिलते हैं। विलो वही दरख़्त है, जिसकी लकड़ी से क्रिकेट के बैट बनाए जाते हैं। श्रीनगर से कुछ ही दूरी पर संगम नामक स्थान है, जहाँ पहलगाम की ओर से आने वाली लिद्दर नदी जेलहम में आकर मिलती है। इस पूरे क्षेत्र में ही विलो की लकड़ी से क्रिकेट के बैट बनाने का काम किया जाता है। यहाँ ट्यूलिप गार्डन में पिस्ते का भी एक पेड़ लगा हुआ है जो काफी बड़ा और पुराना है। पिस्ते का वानस्पतिक नाम पिस्टैशिया वेरा (Pistacia vera) है। इस पेड़ में फूल तो आते हैं लेकिन फल नहीं बनते। वास्तव में पिस्ते के पेड़ दो तरह के होते हैं—नर और मादा। जब तक दोनों तरह के पेड़ पास-पास न हों, तब तक उनके फूलों में परागण नहीं हो सकता और इस कारण से फल विकसित नहीं हो सकते। पिस्ते का मादा फूलों वाला यह एकाकी पेड़ भी अपने जोड़ीदार के अभाव के शाप से ग्रस्त चुपचाप खड़ा है।

यहाँ उद्यान में हिमालय में उगने वाले बड़े-बड़े चीड़ और देवदार के वृक्षों के पुराने और नए लगाए गए अनेक पेड़ देखे जा सकते हैं। चीड़ को पाइनस रोक्सबुरगाई (Pinus roxburghii) के नाम से जाना जाता है और देवदार को सिड्रस देओदारा (Cedrus deodara) के नाम से। इस उद्यान में चेस्टनट और वॉलनट अर्थात् अखरोट के पेड़ भी हैं। चेस्टनट में अक्तूबर-नवंबर में फल लगते हैं। चेस्टनट के फलों को भूनकर खाया जाता है। अक्तूबर-नवंबर में चेस्टनट के भुने हुए फल यहाँ ख़ूब बिकते हैं। वॉलनट या अखरोट अर्थात् जुगलांस रेजिआ (Juglans regia) से तो हम सब परिचित हैं ही, लेकिन इनमें अन्य फलों के पौधों की तरह आकर्षक फूल नहीं खिलते। बेशक इसमें आकर्षक फूल नहीं खिलते, लेकिन इसके फलों का जवाब नहीं। अखरोट और बादाम सबसे अधिक गुणकारी फल अथवा मेवे हैं। फलों के पौधों में इस उद्यान में सेब, नाशपाती, लोकाट, चेरी, आड़ू, चेस्टनट, अखरोट, बादाम, खुबानी आदि सभी तरह के पेड़ काफी संख्या में हैं। इन सभी वृक्षों में एक ख़ास बात ये है कि इन सभी में दो तरह के पेड़ मिलते हैं। एक खाद्य फल देने वाले और दूसरे केवल आकर्षक फूल देने वाले। सेब को ही लीजिए। इसके भी दोनों प्रकार के वृक्ष यहाँ उपलब्ध हैं। जहाँ फल देने वाले सेबों के वृक्षों की कई प्रजातियाँ हैं, वहीं बहुत सारे सजावटी सेबों के वृक्ष भी हैं।

सेब के दोनों तरह के वृक्षों पर फूल लदे हुए हैं लेकिन उनके रंग तथा आकार में पर्याप्त विविधता और विभिन्नता देखने में आती है। सजावटी सेब जिसे ऑर्नामेंटल या क्रैब एपल कहते हैं पर लाल रंग के फूल खिले हुए हैं। यद्यपि सजावटी सेब के वृक्ष के फल खाने लायक नहीं होते लेकिन उद्यानों की सुंदरता बढ़ाने के लिए सजावट के तौर पर लगाया जाने वाला यह एक अत्यंत सुंदर पौधा है। वसंत ऋतु के प्रारंभ में इसमें गुलाबी, किरमिज़ी या गहरे लाल रंग की कलियाँ उत्पन्न होने लगती हैं और मार्च-अप्रैल के महीनों अर्थात् वसंत ऋतु में यह चटख गुलाबी रंग के आकर्षक फूलों से लद जाता है। फल वाले सेब के पेड़ों पर हल्का गुलाबीपन लिए हुए सफेद फूल खिले हुए हैं, जिनका आकार ऑर्नामेंटल एपल के फूलों से छोटा है। वैरायटी के अनुसार फल वाले सेब के पौधों के फूलों में भी पर्याप्त अंतर दिखलाई पड़ता है। दोनों तरह के पेड़ों के आकार में भी अंतर है। सजावटी सेब अर्थात्

ऑर्नामेंटल एपल के पेड़ अपेक्षाकृत पतले और लंबी-लंबी टहनियों से युक्त हैं जो पूरी तरह से फूलों से लद जाती हैं। यहाँ जिन पेड़ों पर वसंत ऋतु में फूल खिलते हैं, प्रायः अक्तूबर-नवंबर तक उनके फल तैयार हो जाते हैं।

यहाँ सिर्फ़ पेड़ों पर लगे फूलों के रंगों के आधार पर पेड़ों के नाम बतलाना कठिन है, क्योंकि एक ही तरह के रंग के फूलों वाले कई पेड़ मिलते हैं। इन दिनों अधिकांश पेड़ों पर सफेद, लाल और गुलाबी रंगों की छटा वाले फूल खिलते हैं। फूलों के रंगों के साथ-साथ पेड़ों की बनावट तथा उनकी पत्तियों के आकार और बनावट को देखने के बाद ही उनके सही-सही नाम बतलाना संभव होता है। यहाँ आड़ू के फूल वाले सजावटी पौधे भी बहुत आकर्षक हैं। पूरी टहनियाँ बड़े-बड़े सुर्ख़ लाल, गुलाबी और लाल-गुलाबी रंग के फूलों से भरी हुई हैं। इन पर लगने वाले फल अत्यंत छोटे और प्रायः निकृष्ट स्वाद वाले और कभी-कभी पूरी तरह से अस्वादिष्ट होते हैं लेकिन इनके फूलों के सौंदर्य के कारण इन्हें ख़ूब रोपा जाता है। पूरी घाटी में इनके फूलों के सौंदर्य का डंका बजता है। दूसरी तरफ फल वाले आड़ू के पेड़ों पर हल्की गुलाबी रंगत लिए हुए सफेद रंग के फूल दृष्टिगोचर होते हैं। पियर अथवा नाशपाती का वानस्पतिक नाम पाइरस कॉम्युनिस (Pyrus communis) है, जिसके फल वाले पेड़ों पर लगे फूलों की पंखुड़ियों का रंग एकदम सफेद है जो बीच में से भूरे रंग की हैं, जबकि खुबानी जिसका वानस्पतिक नाम प्रूनस आर्मेनिआका (Prunus armeniaca) है, के फूलों का रंग लाल है।

ये सब पेड़-पौधे ट्यूलिप के पौधों की क्यारियों के समानांतर कुछ दूरी पर सीधी पंक्तियों में लगाए गए हैं। इन्हीं में एक पंक्ति है छोटे-छोटे गुलाबी रंग के फूलों के पौधों की जिन्हें हिमालयी जंगली चेरी अथवा खट्टी चेरी कहा जाता है। इसका वानस्पतिक नाम है प्रूनस सेरासोइडिस (Prunus cerasoides)। हिमालयी चेरी को फलों के लिए नहीं, अपितु इसके फूलों के सौंदर्य के कारण लगाया जाता है। फूलों के लिए लगाई जाने वाली हिमालयी जंगली चेरी अथवा खट्टी चेरी के अतिरिक्त खाद्य फलों वाली चेरी के सफेद फूलों से लदे वृक्ष भी कम आकर्षक नहीं लगते। ये भी यहाँ काफी संख्या में हैं और इन्हें प्रूनस एवियम (Prunus avium) के नाम से जाना जाता है।

बादाम का वानस्पतिक नाम प्रूनस डलसिस (Prunus dulcis) है। बादाम के फूलों की कलियाँ तो लाल रंग की हैं लेकिन उनमें से पंखुड़ियाँ सफेद रंग की निकलती हैं। प्लम अथवा आलूबुखारे के पेड़ भी यहाँ पर लगे हुए हैं जो अधिकांश सजावटी प्लम अथवा आलूबुखारे के हैं। इनके बैंगनी-बैंगनी से ताम्रवर्णी झाड़ीनुमा पौधे ही बहुत सुंदर लगते हैं। प्लम अथवा आलूबुखारे के खाद्य फलों का वानस्पतिक नाम प्रूनस बुखारेंसिस (Prunus bukharensis) है लेकिन इनके सजावटी पौधों का वानस्पतिक नाम प्रूनस ट्राइलोबा (Prunus triloba) है। इन्हें फ्लावरिंग प्लम या फ्लावरिंग ऑमंड भी कहते हैं। इन्हीं के बीच में कुछ पंक्तियाँ है छोटे-छोटे पीले रंग के फूलों के पौधों की, जिन्हें फोरसाइथिया कहा जाता है। फोरसाइथिया के पूरे पौधे ही पीले रंग के नज़र आते हैं। इनसे ट्यूलिप के पौधों की क्यारियों का सौंदर्य कई गुना बढ़ जाता है।

आज भारत में ही नहीं पूरे विश्व में इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन का अपना विशेष स्थान है। यह पूरे एशिया का सबसे बड़ा ट्यूलिप गार्डन है। वर्ष 2015 तथा 2017 में कनाडा की वर्ल्ड ट्यूलिप समिट सोसायटी द्वारा इंदिरा गाँधी मेमोरियल ट्यूलिप गार्डन को क्रमशः विश्व के दूसरे और चौथे सबसे बड़े ट्यूलिप डेस्टिनेशन के रूप में पुरस्कृत किया गया है। यहाँ जितने फूल लगे हुए हैं उन सबको पहचानना और सबके नाम बताना एक आम आदमी के लिए असंभव है, लेकिन यहाँ आकर इन सबको देखना सचमुच अद्वितीय अनुभव होगा इसमें संदेह नहीं। तो अगली बार आपका भी जब भी बाहर जाने का कार्यक्रम बने कश्मीर को प्राथमिकता दीजिए और वह भी वसंत ऋतु में, जब श्रीनगर के इस उद्यान में ट्यूलिप अपने रंग और मुस्कुराहट बिखेरना प्रारंभ करें।

V

ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-110034
फोन नं. 09555622323 E-mail : srgupta54@yahoo.co.in

वर्तमान में संघर्ष से गुजरता हुआ नटों का गौरवशाली अतीत

— सुरेंद्र अग्निहोत्री

पुराने रीति-रिवाज को पकड़े नट समाज में लड़के-लड़कियों की शादी में भाँवरे पड़ने के पहले जमकर लाठियाँ चलती हैं। जब तक दोनों पक्षों में जमकर लाठी न चले। खून न बहे। तब तक शादी की रस्म अधूरी मानी जाती है। इस रिवाज को ये लोग बुंदेली योद्धा आल्हा और ऊदल की परंपरा से जोड़ते हैं। इनका कहना है कि हमारे पूर्वज क्षत्रिय थे। उनका आल्हा-ऊदल से ताल्लुक रहा। कालांतर में मुस्लिम धर्म स्वीकार करना पड़ा। इसके बावजूद हम अपना क्षत्रिय धर्म निभाते हैं।

नागफाँस में उलझी जिंदगी के खेल के ताने-बाने को रोज-ब-रोज सुलझाने के लिए शहर-दर-शहर सड़कें नापते पुलिस और दबंगों की दुत्कार सहकर अपने जीवन की पाठशाला से सीखे हुनर से हैरतअंगेज खेल दिखाकर दो वक्त की रोटी हासिल करने वाले नटों का अतीत कभी बहुत गौरवशाली भले ही रहा हो, लेकिन वर्तमान स्याह अंधकार से घिरा है। नट परिवार में कोख से बाहर आने के बाद शिशु की नई-नकोर आँखें रेल की पटरियों के बीच कोरी स्लेट पर नहीं, आसमान में बाँधी डोर पर चलने की इबारत लिखती है। इसी इबारत के बल पर भूख को पराजित करती है, लेकिन अब सर्कस के करतबों को मात देने वाली नटों की कलाबाजी फीकी पड़ती जा रही है। खेल विभाग इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। पढ़ाई-लिखाई ज्यादा न होने के कारण अर्धसैनिक बलों तथा सेना में भी गुंजाइश नहीं बनती। बुंदेलखंड के बांदा जिले के बरछा, सढ़ा बदौसा, अतर्रा, नरैनी बड़ोरवर कमासिन, तिंदवारी आदि गाँव-कस्बों में हजारों की तादाद में नट परिवार रहते हैं। मध्य प्रदेश के छतरपुर, पन्ना, सतना जिले में भी इनकी तादाद हजारों में है। किंतु सदियों से कलाबाजी के करतब दिखाकर अपना और परिवार का पेट पालने वाले इन नट परिवारों की दारुण गाथा सुनने वाला कोई नहीं है। मनोरंजन के क्षेत्र में आधुनिक क्रांति ने नट समाज के सामने संकटों का पहाड़ खड़ा कर दिया है। नटों ने रोजगार के नाम पर ग्रामीण क्षेत्रों में गाय, भैंसों की खरीद का रोजगार अपनाया था, लेकिन धार्मिक कारणों से इस रोजगार ने उन्हें धन कम जेल की सजा ज्यादा दिलाई, जिसके कारण नट पशु व्यापार छोड़ चुके हैं। नटों की पहचान इतिहास में राजाओं के लिए किले फतह करने के लिए सेंधमारी करने वाले मिथकीय चरित्र के रूप में होने के कारण इनके ऊपर सामाजिक रूप से प्रश्नचिह्न लग जाने से लाख गुरबत करने के बावजूद भी दूर होने का नाम नहीं ले रहा है। सढ़ा गाँव के

किरपाली नट ने बताया कि दो दशक पहले उसकी कलाबाजी देखने भीड़ टूट पड़ती थी। ढोलक और ढपली की थाप सुनते ही हजारों लोग दौड़ पड़ते थे और घेरा बनाकर बैठ जाते थे। दाँतों तले उँगली दबाकर करतब देखते थे। दर्शकों की वाहवाही से कलाबाज नटों की छाती चौड़ी हो जाती थी। बड़ी तन्मयता से लोग कलाबाजी देखते थे।

कलाबाज नट भी बड़ी तन्मयता से एक से बढ़कर एक हैरतअंगेज करतब दिखाते थे। एक पेड़ से दूसरे पेड़ की डाल पर रस्सी बाँधकर सौ मीटर तक बिना किसी सहारे के चलना, बाँस की ऊँचाई पर खड़े होकर पलटी मारना और हवा में चार-चार कलाबाजी लगाकर जमीन पर आना आदि ऐसे करतब हैं, जिन्हें देखकर लोग ठगे से रह जाते थे।

बरछा गाँव के सलीम नट ने कहा—एक जमाना था, जब नटों की कलाबाजी के बगैर गाँव-कस्बों के रईस परिवारों में शादी-ब्याह अधूरा माना जाता था। विवाह चाहे बेटी का हो या बेटे का। अगर दरवाजे विदाई के पहले गाँव का नट करतब दिखाने न आए तो लोग अपनी हेठी मानते। कहा जाता था कि फलाँ जमींदार की शान में बट्टा लग गया। जिसके दरवाजे पर नट नहीं आया। करतब दिखाने पर वर पक्ष और वधू पक्ष से सैकड़ों रुपए इनाम में मिलते थे। यही नहीं, गाँव में परंपरा थी कि गाँव के संपन्न किसान साल में एक बार एक मन अनाज नटों को देते थे। वक्त-बे-वक्त भी कस्बों और शहरों में नट करतब दिखाते थे। उपयुक्त स्थान पर बाँस और रस्सी बाँधकर नटों का खेल होता था। नटों की कलाबाजी से खुश होकर दर्शक इनाम देते थे। इतनी आमद हो जाती थी जिससे परिवार का पेट भरता था। सलीम ने कहा कि अब ढोल की थाप सुनकर लोग ठिठकते भी नहीं। ज्यादातर नट परिवार मुस्लिम हैं। पारंपरिक कलाबाजी के खेलों की लगातार उपेक्षा से लोग खानदानी करतब करना भी भूल चुके हैं। सांप्रदायिकता की बढ़ती खाई के कारण भी इस कला को संरक्षण नहीं मिला।

खेती-बाड़ी से हीन नट समुदाय के लोग गाँव छोड़कर डेरों में रहते हैं। कुछ तो भीख के लिए झोली फैलाते हैं। छोटे-छोटे बच्चे और महिलाएँ पेट भरने के लिए भीख माँगती दिखती हैं।

आजादी के बाद किसी ने नट समुदाय के लोगों के लिए कोई ध्यान नहीं दिया। इनकी शिक्षा, स्वास्थ्य की चिंता नहीं की गई और न इनके पारंपरिक पेशे को संरक्षण दिया गया। भूख और बदहाली से इन्हें कभी निजात नहीं मिली।

नट समुदाय के ज्यादातर लोग घास-फूस की झोपड़ियों में रहते हैं। मकान उन्हीं परिवारों के पास हैं, जिन्होंने अपना पारंपरिक पेशा छोड़कर अन्य कोई पेशा अपना लिया है।

पुराने रीति-रिवाज को पकड़े नट समाज में लड़के-लड़कियों की शादी में भाँवरे पड़ने के पहले जमकर लाठियाँ चलती हैं। जब तक दोनों पक्षों में जमकर लाठी न चले। खून न बहे। तब तक शादी की रस्म अधूरी मानी जाती है। इस रिवाज को ये लोग बुंदेली योद्धा आल्हा और ऊदल की परंपरा से जोड़ते हैं। इनका कहना है कि हमारे पूर्वज क्षत्रिय थे। उनका आल्हा-ऊदल से ताल्लुक रहा। कालांतर में मुस्लिम धर्म स्वीकार करना पड़ा। इसके बावजूद हम अपना क्षत्रिय धर्म निभाते हैं।

नट समुदाय के लोग ठगी के मामले में महारत रखते हैं। नट समुदाय के कुछ लोग अपराध भी करते हैं। भोले-भाले लोगों को ये अपनी लच्छेदार बातों में फँसाकर बड़ी आसानी से उसे ठगते हैं। इनकी इस आदत ने इनके

विश्वास को तोड़ रखा है। लोग आसानी से इनकी बातों पर यकीन नहीं करते। नटों की जिंदगी को परिवर्तित करने के लिए खेल मंत्रालय ने थोड़ी-सी भी पहल की होती तो यह समुदाय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी कलाबाजियों से दुनिया भर को चकित कर देता, लेकिन विकास का खाका तय करने वालों ने कभी देश की प्रतिभाओं की परंपरागत काबिलियत पर ध्यान नहीं दिया और उनके ऊपर अपने राज्य के लिये कर्तव्य पालन के लिए किए गए कार्यों को इतिहास के पन्नों में अपराधियों के रूप में निरूपित करके ताजिंदगी अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश कर दिया। पतली-सी डोर पर चलकर जिंदगी को साधने वाले नट समुदाय के रक्त में कलाबाजियाँ कूट-कूट कर भरी हैं। अगर उन्हें थोड़ा-सा आसरा मिल जाए तो वह अपने श्रेष्ठ प्रदर्शन से देश के लिए अनेक मेडल लाने में कामयाब हो सकते हैं। कवि अग्निदेव के शब्दों में नटों की जिंदगी को समझना ज्यादा आसान है।

नटों के लिए नहीं आया फरमान,
अधूरे रह गए बस सभी अरमान,
खेल प्रतिभा को नहीं मिली पहचान,
जिंदगी ठोकर खाने को हलकान,
किलों की फतह के लिए सेंधमारी,
चस्पा ताजिंदगी की बनी लाचारी,
पेचींदगी भरा कलाबाजी का खेल,
सामंती सोच से नहीं खा पाया मेल,
जो नहीं थे खेल में कभी शामिल,
उन्हें सुविधा के लिए माना काबिल।

V

ए-305, ओसीआर बिल्डिंग, विधान सभा मार्ग,
लखनऊ-226001 मोबाइल : 9415508695, 8787093085
ई-मेल : timesshatrang@gmail.com

वकील न होने की पीड़ा

— गोपाल चतुर्वेदी

यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं वकील बनते-बनते रह गया। आजादी के बाद की पीढ़ी को बनने-बनाने की अनंत संभावनाएँ उपलब्ध हैं। इसी से प्रेरित होकर हमने पिताजी से गुजारिश की कि हमें वकील बनने की अनुमति दे दें। उन्होंने हमें समझाया कि भारत परंपराओं का देश है। हमने परंपरा तोड़ने की धमकी दी। उन्होंने गुस्से से हमें ताका और संयत आवाज में बोले, ''अपने परिवार के लोग पुश्त-दर-पुश्त बाबू बनते रहे हैं। पड़ोस के राधेश्याम के यहाँ खानदानी मुकदमे और वकालत का पेशा है। तिवारी जी के यहाँ ठेकेदारी और राजनीति का सहअस्तित्व है। बेटे! परिस्थितियों की अनिवार्यता है कि तुम बाबू बनकर परिवार का नाम रोशन करो। मैं इस सिलसिले में बड़े साहब से बात कर लूँगा।''

यह उन दिनों की बात है जब देश तो स्वतंत्र हो गया था, पर पिता जैसे बुजुर्गों से नई पौध आजाद नहीं हुई थी। हमारे परिवार पर बाबू-मानसिकता इस कदर हावी थी कि बालक या पुरुष होने का पर्याय 'बाबू' कहलाता था। पिताजी को दादी 'बाबू' कहती थीं और हमें 'छोटे बाबू'! हमसे छोटे भाई 'बबुआ' थे। हमें यकीन है कि राधेश्यामजी अपने घर में 'वकील बाबू' और उनके पुत्र मझले और छोटे वकील बाबू। तकदीर भी अपने आड़े आ गई। हमने पहले ही प्रयास में एम.ए. पास कर लिया। वरना पढ़ाई के दायरे में हमारे प्रयाग विश्वविद्यालय में लखनऊ के तकल्लुफ का दस्तूर था। कुछ लोग मुस्तकिल विश्वविद्यालय में जमे रहते। दो-तीन एम.ए., एकाध किसी विदेशी भाषा का डिप्लोमा, एक अदद लॉ करते-करते आठ-दस साल पलक झपकते निकल जाते। भाग्यशाली यूनियन के नेता बन चंद हड़तालें, यूनियन का फंड और मौके-बेमौके उगाहा हुआ चंदा निगलकर डकार भी न लेते। कुछ प्रतियोगिता परीक्षाओं में भाग्य अजमाते।

शिक्षा का तोता पालते-पालते एक ने वाकई तोता पाल लिया। वह प्रशिक्षित तोता प्रत्याशियों की सफलता की संभावनाएँ आँकता। 'हाँ' या 'ना' लिखे लिफाफों को चोंच में दबाकर आकाशीय निर्णय सुनाता। इस भविष्यवाणी की सत्यता के आँकड़े तो नहीं हैं, पर तोते वाले की कामयाबी इस तथ्य से जाहिर है कि नजूमी तोते का बिल्ली का आहार बनने के बाद पहले तो उन्होंने एक ज्योतिष केन्द्र खोला और जब से इक्कीसवीं सदी का बिगुल बजा है, कंप्यूटर से भविष्य बता रहे हैं। जिनकी कहीं दाल न गलती वह या तो ए.जी. ऑफिस में कोट टांगकर कॉफी हाउस में दिन बिताते या काला कोट पहनकर कोर्ट जाने के बहाने ढूँढ़ते। अपने साथ ऐसा कुछ न हुआ। उधर रिजल्ट आया और इधर हम बाबूगिरी करने लगे। हमारे देखते-देखते कई काले कोटवाले कोठीवाले हो गए। हम बाबू के बाबू बने फाइलें पीट रहे हैं। यों स्वतंत्रता के बाद भारत ने बेहद प्रगति की है। तोड-फोड़ की बढ़ती प्रवृत्ति के साथ ही परंपराएँ तोड़ने की परिपाटी भी जड़ें जमा रही है। नेता जनसेवा की परंपरा तोड़ चुका है। हर आदमी अपनी जोड़-तोड़ में लगा है। परिवर्तन के युग में सिर्फ वकील है जो 'काले

कोट', 'माई लार्ड', 'योर ऑनर' आदि से अब भी जुड़ा हुआ है।

वकील न बन पाने के कारण मेरे मन का 'हीनभाव' दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। वकीलों ने कमर कसकर आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया, देश को आजाद कराया। बाबुओं ने क्या किया? स्वतंत्र भारत में भी वकील अन्याय के विरुद्ध एक सतत जंग छेड़े हुए हैं। मेरे परिचित राधेश्यामजी से पूरा शहर डरता है। पता नहीं कब, किसके विरुद्ध, किस कारण 'नोटिस' भिजवा दें। उनके दोनों लड़के भी वकील हैं। एक तात्कालिक कानूनी शिकार को नोटिस भेजता है, दूसरा उसकी ओर से पैरवी करता है। राधेश्यामजी मुकदमा जीतें या हारें, घी घर की खिचड़ी में ही जाता है। पिछले कई सालों से हमारे मुल्क में शक का माहौल बनता जा रहा है। कभी काले धन की बात होती है, कभी कमीशन और कभी स्विस बैंक की। सब एक-दूसरे पर शक करते हैं-जनता नेता पर, नेता आपस में, पत्नी पति पर। बस एक वकील है जो फीस के बाद अपने मुवक्किल पर पूरी तरह यकीन करता है। इस सहज विश्वास के चरम उत्कर्ष की स्थिति वह है जब वकील दूरदर्शन बन जाता है; अर्थात् जो पैसे दे उसी के प्रायोजित कार्यक्रम प्रसारित करने लगता है। राधेश्यामजी की कोठी के एक हिस्से में बड़े बेटे का 'चैंबर' है दूसरी तरफ छोटे का। छोटा सरकारी वकील है और सरकार का विश्वास करता है, बड़ा गुनहगार का। मैं एक बार बड़े के पास पड़ोसी के नाते मिलने गया तो वहाँ निम्नलिखित मनोरंजक वार्तालाप सुनाई पड़ा-

'साहब! बस बिना बात पुलिस घुस आई। घर में किसी को डंडे मारे, किसी को चपत। आव देखा न ताव और गनेशी को ले गई।' मूँछवाले ने कुरसी पर बैठे वकील साहब को वारदात की सूचना दी।

'क्या चार्ज है?' वकील साहब ने जानना चाहा।

'यही कत्ल-वत्ल का इल्जाम होगा।' मूँछ की झाड़ी से उत्तर आया।

''आपके भाई ने क्या वाकई खून किया था?'' वकील साहब ने प्रश्न किया।

'वकील साहब! इतने कर चुका है कि अब यह वाला किया है कि नहीं, कहना मुशिकल है। वैसे हम लोग एक-दूसरे की निजी जिंदगी में दखल भी नहीं देते हैं। पर यूँ ही जेल में ठूस देना तो बेहद नाइंसाफी है। हर तरह के चोर-उचक्के बाहर घूम रहे हैं और मेरा भाई अंदर सड़ रहा है।'

थोड़ी देर चुप्पी छाई रही। इस बीच मूँछ वाले के 'जूनियर' ने एक मैला-कुचैला थैला वकील साहब की मेज पर रख दिया।

कुरसी से स्वर उभरा, 'ठीक है, पहले जमानत करवा देते हैं, फिर आगे देखेंगे।'

वकील साहब ने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की एक और मुहिम अपने हाथ में ले ली। शायद वकीलों के ऐसे ही समदर्शी दृष्टिकोण से न्याय की रक्षा संभव है। फिर भी शंका-समाधान के लिए मैंने बड़े वकील बाबू से पूछा, 'इसे छुड़वा दिया तो क्या पता फिर कोई गैरकानूनी हरकत न कर डाले! आप क्यों मूँछवाले के भाई की जमानत करवा रहे हैं?'

'न हमने इसे खून करते देखा, न आपने। क्या पता, इसने कभी मक्खी भी मारी है कि नहीं? क्या सबूत है? हमने तो अपनी फीस मेज पर रखी देखी है। यदि कोई गुनाह हमारी आँखों के सामने होता तो हम कतई केस की पैरवी न करते। वैसे भी हमें गुनाह से नफरत है, गुनहगार से नहीं।' उन्होंने अपनी तकरीर से हमारी बोलती बंद कर दी।

वकीलों की प्रतिभा के तो हम बचपन से कायल थे। इस चर्चा के बाद उनकी नेकनीयती के भी मुरीद हो गए। अपनी पढ़ाई के दिनों से हमें पत्र लिखने का खासा

शौक था। अब सबके अपने-अपने शौक होते हैं-कोई क्रिकेट खेलता है, कोई कबड्डी; कोई शराबी होता है, कोई भंगेड़ी। हम यूनिर्सिटी की हर सुंदर लड़की को उसकी खूबसूरती की शान में कसीदा लिख भेजते। किसी मूर्ख कन्या ने हिंदी के प्रोफेसर से हमारे पत्र-लेखन की शिकायत कर दी। वह थोड़ी स्वस्थ और साँवली थी। हमें रंगभेद से सैद्धांतिक परहेज रहा है। लिहाजा हमने उसके सुंदर न होने के बावजूद उसके काली घटा-से व्यक्तित्व और मस्त हाथी जैसी चाल की भरपूर प्रशंसा की। संभव है, उसे हमारी भाषा और शैली आपत्तिजनक लगी हो। बहरहाल, हम हिंदी के प्रोफेसर के कमरे में बुलाए गए। वहाँ कानूनी सलाह के लिए लॉ के प्राध्यापक भी उपस्थित थे। 'आप बहुत पत्र लिखते हैं।' हिन्दी वाले 'सर' ने जिरह शुरू की।

'जी! मुझे पत्र-मित्र बनाने का शौक है। चिट्ठी लिखने के अभ्यास से भाषा प्रांजल हो जाती है। संसार के नामी-गिरामी लोग एक-दूसरे को पत्र लिखते हैं। नेहरूजी ने जेल से अपनी बेटी को पत्रों के माध्यम से सारा इतिहास सिखा दिया। आपको मेरे शौक से कुछ एतराज है क्या?' मैंने पूरे आत्मविश्वास से अपना पक्ष पेश किया।

'लेकिन आप तो हमउम्र लड़कियों को पत्र लिखते हैं। और उनमें भी शृंगार रस का बाहुल्य होता है। यदि आप अपनी बेटी को पत्र लिखते तो बात हम तक क्यों पहुँचती?' उन्होंने जिरह जारी रखी।

मैं कहने जा रहा था कि पत्र-लेखन का उद्देश्य अपनी होने वाली बेटी की माँ की तलाश है कि लॉ के प्रोफेसर ने बात रफा-दफा करवा दी।

'आप क्यों परेशान होते हैं, पंडितजी! यह इनका निजी मामला है। किसी ने 'ब्रीच ऑफ ट्रस्ट' की नोटिस भेज दी तो खुद ही बच्चू के होश ठिकाने आ जाएँगे।' उन्होंने कानूनी चेतावनी दी।

इस कानूनी पेंच से हमे विश्वास हो गया कि शौकिया शरारत भारी पड़ सकती है। संवैधानिक विवाद और उथल-पुथल के भय से हमने खूबसूरत खातूनों से अपनी खतो-किताबत खत्म कर दी। वकील होने की हमारी आकांक्षा इसी घटना के बाद जागी। यदि किसी के पास 'नोटिस' जैसा शक्तिशाली हथियार हो तो उसे तलवार-तमंचे की क्या दरकार! कानून और कलम का जोड़ करेला और नीम चढ़ा जैसा है। वकील जब चाहें, अपनी फीस की दर बढ़ा लेते हैं। न उन्हें आयकर का खतरा व्यापता है, न काले धन का। यह

सोचकर वकालत के पेशे के प्रति हमारा 'दीनभाव' हम पर विक्रम के बैताल-सा हावी हो जाता है। बाबू का रेट दाल में नमक के बराबर भी नहीं होता, फिर भी मन डरा-डरा रहता है। इधर हक की 'डाली' भी लोग खैरात की तरह देते। काम तो ऊपर के हुकुम से हो ही जाता है। वहीं राधेश्यामजी के यहाँ, मुवक्किलों की कृपा से, राशन से लेकर फल-मिठाई तक का ताँता लगा रहता है।

हम आज तक नहीं समझ पाए कि आर्थिक संपन्नता, सामाजिक शोहरत और प्रतिष्ठा तथा 'नोटिस' की सत्ता के रहते वकील बंधु मातमी काला कोट क्यों धारण करते हैं। क्या यह मुवक्किलों की पीड़ा में शरीक होने का उपक्रम है? या वह संसार को बताना चाहते हैं कि 'सूरदास की काली कामर चढ़े न दूजौ रंग', अर्थात् कोई कितनी भी बहस करे, तर्क दे, अपने फीसजन्य विश्वास की दुम टेढ़ी की टेढ़ी ही रहेगी। यह भी तो संभव है कि बाहरी परिधान आंतरिक विचारों का प्रतीक हों? हम कई दिन से इसी उधेड़बुन में लगे हैं एक ओर कभी गोरे दक्षिण अफ्रीका में कालों को हेय दृष्टि से देखते थे, दूसरी ओर अपने यहाँ मान्य और प्रतिष्ठित पेशे की पोशाक काली रखते हैं। यूँ यदि हमारा देश काले कोट की 'यूनिफॉर्म' बनाने में पहल करता तो बात समझ में भी आती।

हमारी भौगोलिक और आध्यात्मिक परिस्थितियों के कारण जीवन में धूल का बड़ा महत्व है। 'सब धूल में मिल जाएगा' का अहसास बचपन में सुने भजनों से लेकर दर्शन की किताबों तक में इतना प्रबल है कि मैलखोर कपड़े पहनना भौतिक सफलता में मन लगाने के लिए आवश्यक है। सफेद कपड़ों पर पड़ी धूल कोठी-बंगले हथियाने की निरर्थकता की ओर तत्काल इंगित कर देगी। काले कोट की धूल नजर ही नहीं आएगी तो क्यों कोई भलामानुस नश्वरता की खाक में मिलने के फलसफे में उलझेगा।

काले कोटे के रहस्य को समझने के लिए हम किसी वकील की मदद लेने की सोच ही रहे थे कि दरवाजे की घंटी बज उठी। बाहर एक वरदीधारी खड़ा था। उसने एक रजिस्टर में हमारे हस्ताक्षर लिए और एवज में बंद लिफाफा हमें थमा दिया। हम कुछ सशंकित हुए।

'किसने भेजा है?' हमने दरियाफ्त किया।

'राधेश्यामजी की कोठी में बड़े वकील बाबू के मुंशीजी ने।' उसने सूचना दी। हमें लगा कि कहीं पत्र-लेखन के दिनों का 'ब्रीच ऑफ ट्रस्ट' का नोटिस तो नहीं आ गया! अच्छा-खासा डाकिया चिट्ठी लाता है। इस हरकारे के द्वारा पत्र प्रेषित करने की क्या जरूरत आ गई? ऐसी हरकतों से तो कमजोर दिलवालों को दौरा पड़ सकता है। हमने मरी हुई आवाज में पप्पू की माँ से पानी की फरमाइश की और कुरसी पर ढेर हो गए। पानी गटक कर कुछ जान में जान आई। साहस बटोरकर लिफाफा खोला। एक कागज पर टाइप किया हुआ था-

'आपने दिनांक.....को श्री हरे राम से व्यावसायिक परामर्श किया था। इसके एवज में कृपया दो हजार पाँच सौ रुपए तत्काल भेजने की व्यवस्था करें।'

मैंने कागज को उलट-पलटकर देखा, पर 'बिल' का कारण पल्ले नहीं पड़ा। मैंने कौन सी कानूनी सलाह ले ली और कब? फिर यह 'बिल' क्यों? यकायक मुझे ध्यान आया कि एक बार मैं यूँ ही राधेश्यामजी की कोठी में बड़े वकील श्री हरे राम से मिलने चला गया था। वहाँ मैंने किसी खूनी की जमानत के बारे में बैठे-ठाले कुछ बकवास की थी। यह उसी का खामियाजा है। तब से मेरा निश्चित मत है कि वकीलों को सिर से लेकर पैर तक सिर्फ काला-ही-काला पहनना चाहिए।

❖

लेखक देश के वरिष्ठ एवं विख्यात व्यंग्यकार हैं।
लखनऊ, मोबाइल : 9919999923

शिक्षा की संस्कृति का देश-ऑस्ट्रेलिया

— डॉ. मीनाक्षी जोशी

पुस्तक प्राप्त करना बिल्कुल सरल। बिना किसी शुल्क के एक फॉर्म भरना होता है। आपको विशेष नंबर सहित एक कार्ड दिया जाता है। पुस्तकालय में जगह-जगह कंप्यूटर रखे हैं, जिनकी स्क्रीन पर पुस्तक लेने का पेज हमेशा खुला रहता है। कंप्यूटर की टेबल पर आप किताब रख दीजिए, उसमें लगा कैमरा किताब में लगे बार कोड नंबर अंकित कर लेता है, बस किताब आपके हवाले। एक बार में आप चाहे जितनी पुस्तकें ले सकते हैं। एक ही कार्ड जीवन भर उपयोगी होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि ये पुस्तकालय समय-समय पर विभिन्न भाषाओं की कार्यशाला, परिचर्चा, व्याख्यान एवं जाने-माने रचनाकारों से संवाद/साक्षात्कार का आयोजन भी सभी नागरिकों के लिए निःशुल्क करते हैं।

डेनिसन ने अमेरिका के मेनहेट्टन की काली बस्तियों के शिक्षकों से पूछा,—"हम किन्हें पढ़ाते हैं?" सभी शिक्षकों का उत्तर था,—"बच्चों को"। डेनिसन ने कहा,—"यह झूठ है। हम बच्चों को नहीं पढ़ाते, सच पूछा जाए तो हम पाठ को पढ़ाते हैं। बात विचारणीय है। शिक्षा से हमें क्या चाहिए, देश के नागरिक या नौकर? आज के हर युवा का सपना है विदेश में पढ़ाई करना, वहाँ बेहतर नौकरी पाना और डॉलर में कमाई कर अधिकतम सुख-सुविधाएँ पाना। 21वीं सदी के जिस मुकाम पर आज की युवा पीढ़ी खड़ी है, भविष्य को लेकर उनकी चुनौतियाँ दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही हैं। शिक्षा एवं रोजगार को लेकर वे निरंतर तनाव से घिरे रहते हैं। इस समस्या के अनेक कारणों में से एक महत्वपूर्ण कारण हमारी शिक्षा प्रणाली भी हैं।"

हाल ही में मुझे ऑस्ट्रेलिया के प्राथमिक, माध्यमिक स्कूलों तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था के संबंध में जानने का सुखद अनुभव मिला। मैंने देखा वहाँ स्कूल का अर्थ है, सबसे सम्मानजनक संस्था, समाज के आदर्शों और आस्थाओं का सबसे अच्छा केंद्र। वहाँ शिक्षक का अर्थ है, देश का सबसे बड़ा नागरिक तथा विद्यार्थी का अर्थ है, राष्ट्र। किंडरगार्टेन कक्षाओं में ज्यादातर दिन बच्चे बाहर के खुले वातावरण में अलग-अलग खेलों के माध्यम से ही सीखते हैं। केवल तीन या चार बच्चों की देख-रेख के लिए एक शिक्षक नियुक्त होता हैं। प्राथमिक-माध्यमिक स्कूलों की प्रधानाचार्य ने बताया कि इनोवेशन (शोध) की पद्धति हमारी पढ़ाई के केंद्र में हैं। बंद कमरे में पुस्तक के ढाँचे में ढालने की अपेक्षा खुले उपयुक्त माहौल में उनकी शोध प्रवृति को पहचानना और उसका विकास करना हमारा मुख्य लक्ष्य होता है। विद्यार्थियों की कार्यक्षमताओं में नए दृष्टिकोण के विकास के लिए नए-नए प्रयोगों को वहाँ बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। इस तरह से उन्हें विश्वविद्यालयीन

शिक्षा के लिए मानसिक और बौद्धिक रूप से तैयार किया जाता है। विशेष कौशल, ज्ञान और अनुभव के साथ स्नातक की शिक्षा प्रदान की जाती है। मुझे ऑस्ट्रेलिया की शिक्षण विधि में सबसे उल्लेखनीय बात यह लगी कि उनके यहाँ के तरीके अत्यंत संतुलित हैं, अर्थात् थोड़ा आनंद, थोड़ी गंभीरता। कोई भी ज्ञान बच्चों पर थोपा नहीं जाता अपितु उन्हें अपनी रुचि से स्वीकारने की पूरी स्वतंत्रता दी जाती है। यह सिद्धांत व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों स्तरों पर लागू होता है।

ऑस्ट्रेलिया के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के लिए भी सुविधाएँ कम प्रशंसनीय नहीं हैं। जैसे मजबूत सलाह एवं मार्गदर्शन व्यवस्था, पाठ्यक्रम की रूपरेखानुसार सभी विषयों के योग्य शिक्षकों को नियुक्त करना, सिद्धांत और व्यवहार के एकीकरण का निरंतर आकलन करना, सामयिक, व्यावहारिक और इंटरैक्टिव समस्याओं को सुलझाने पर ध्यान केंद्रित करना, प्रौद्योगिकियों के लिए एक्सपोजर आदि ।

एक उत्सुकता और थी यह जानने की कि इस देश में पुस्तक और पुस्तकालयों की स्थिति और व्यवस्था कैसी है? क्योंकि शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक साधन हैं पुस्तकें । मैं सिडनी के सबसे प्रमुख और समृद्ध 'पैरामेट्टा सिटी लायब्रेरी' जा पहुँची। अपने देश के पुस्तकालयों और विशेष रूप से हिंदी की पुस्तकों का स्थान आदि की तुलनात्मक जानकारी के लिए। पुस्तकहीन हो रहे भारतीय समाज में इस संदर्भ में अनेक सवाल खड़े किए हैं।...ओह!! अद्‌भुत शांति। अलग-अलग टेबलों पर बैठे लोग इतनी तल्लीनता से किताबों में डूबे थे कि जैसे वे अभी इस दुनिया से बिलकुल दूर हैं। बातचीत से जो जानकारियाँ प्राप्त हुई, वह आश्चर्यचकित करने वाली हैं। इस पुस्तकालय की कुल नौ शाखाओं में क्षेत्रीय भाषाओं सहित एक सौ इकतालीस भाषाओं की दो लाख अस्सी हजार से भी अधिक पुस्तकें उपलब्ध हैं। यह तो सिडनी का केवल एक पुस्तकालय है। पूरे ऑस्ट्रेलिया में ऐसे अनेक पुस्तकालय हैं। यहाँ हर आयु के पाठकों के लिए विविध

विधाओं की पुस्तकों तक पहुँचने के लिए केवल एक क्लिक। बिजली गुल? नेटवर्क बंद या धीमा, सर्वर डाउन?...भूल जाइए इन समस्याओं को। सबसे अधिक संख्या अंग्रेजी पुस्तकों की-लगभग एक लाख बावन हजार तीन सौ उन्नीस, इसके पश्चात चाइनीज, कोरियन, और चौथे स्थान पर हिंदी की लगभग एक हजार तीन सौ नब्बे पुस्तकें उपलब्ध थी। भारतीय भाषाओं की किताबों में पंजाबी की बीस, बंगाली की सत्रह, तमिल की तेरह, गुजराती-दस, मलयालम-नौ, उर्दू-नौ, मराठी छह, संस्कृत और तेलुगू की दो-दो।

पुस्तक प्राप्त करना बिल्कुल सरल। बिना किसी शुल्क के एक फॉर्म भरना होता है। आपको विशेष नंबर सहित एक कार्ड दिया जाता है। पुस्तकालय में जगह-जगह कंप्यूटर रखे हैं, जिनकी स्क्रीन पर पुस्तक लेने का पेज हमेशा खुला रहता है। कंप्यूटर की टेबल पर आप किताब रख दीजिए, उसमें लगा कैमरा किताब में लगे बार कोड नंबर अंकित कर लेता है, बस किताब आपके हवाले। एक बार में आप चाहे जितनी पुस्तकें ले सकते हैं। एक ही कार्ड जीवन भर उपयोगी होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि ये पुस्तकालय समय-समय पर विभिन्न भाषाओं की कार्यशाला, परिचर्चा, व्याख्यान एवं जाने-माने रचनाकारों से संवाद/साक्षात्कार का आयोजन भी सभी नागरिकों के लिए नि:शुल्क करते हैं। छुट्टियों में विद्यार्थियों के लिए सामान्य ज्ञान तथा विशेष प्रशिक्षण की कक्षाएँ भी नि:शुल्क आयोजित होती हैं। पुस्तकों की खुली अलमारियों की ऊँचाई केवल छह फुट, ताकि सभी पुस्तकें आसानी से दिखाई दे। हमारे पुस्तकालयों की अलमारियाँ कमरे की छत को छूती हुई। आपकी गर्दन ही अकड़ जाएगी पर ऊपर की किताबों के नाम भी नजर नहीं आएँगे और यदि सीढ़ी के सहारे पहुँच भी गए तो बरसों की जमी धूल आपके हाथों, आँखों और कपड़ों पर बरस पड़ेगी। रोचक जानकारी यह भी कि एक सप्ताह पूर्व के सभी भाषाओं के अखबार, पत्र-पत्रिकाएँ पुस्तकालय से बाहर निकलने के द्वार के निकट करीने से रख दिए जाते हैं, जिसे आप अपनी रुचि अनुसार बिना किसी कार्ड या अनुमति के अपने घर ले जा सकते हैं हमेशा के लिए। एक बार फिर दिमाग में कौंधे हमारे यहाँ रद्दी वाले की दुकान पर कचरे की तरह रखे पुराने पत्र-पत्रिकाओं के ढेर।

मन में प्रश्न उछला, हम क्यों नहीं ऐसी सुविधाओं का अनुकरण अपने देश में कर सकते? जवाब मिला-असंभव, जब तक शिक्षा का उद्देश्य सीखना नहीं केवल परीक्षाएँ पास करना होगा, जब तक हमारा इरादा केवल व्यक्तिगत लाभ लेना होगा, जब तक इन सुविधाओं का दुरुपयोग करने वालों के लिए कठोर दंड का प्रावधान नहीं होगा, तब तक हम नि:शुल्क प्राप्त हर सुविधाओं की यों ही धज्जियाँ उड़ाते रहेंगे। मेरा उद्देश्य अपने देश की व्यवस्था को कोसना नहीं है, पर तकनीक और विज्ञान में उनके अनुकरण से पहले अपनी मानसिकता को बदलना या सुधारना भी है। एक रिपोर्ट के अनुसार विदेशी शिक्षा के दृष्टिकोण से ऑस्ट्रेलिया सबसे महँगा देश है। फिर भी वहाँ लगभग 40,000 भारतीय छात्र शिक्षा ले रहे हैं, जबकि भारत में कुल विदेशी छात्रों की संख्या लगभग 75,000 है। नि:संदेह मामला गुणवत्ता का है। वहाँ की शिक्षा नौकरशाही से मुक्त है, विभागीय प्रक्रिया से मुक्त है, राजनीतिक हस्तक्षेपों से मुक्त है, वहाँ शिक्षा के नाम पर सम्मेलन, सेमिनार और कार्यशालाओं के दिखावटी जाल नहीं बुने जाते, वहाँ शिक्षा, संस्कार-व्यवस्था का भी प्रतिनिधित्व करती है। धन, साधन, समय और ऊर्जा का जितना अद्‌भुत समन्वय ऑस्ट्रेलिया में देखा, वह किसी भी देश के लिए अनुकरणीय हो सकता है।

V

भंडारा, महाराष्ट्र (भारत), मो : 923315230
ईमेल : minakshijoshi2511@gmail.com

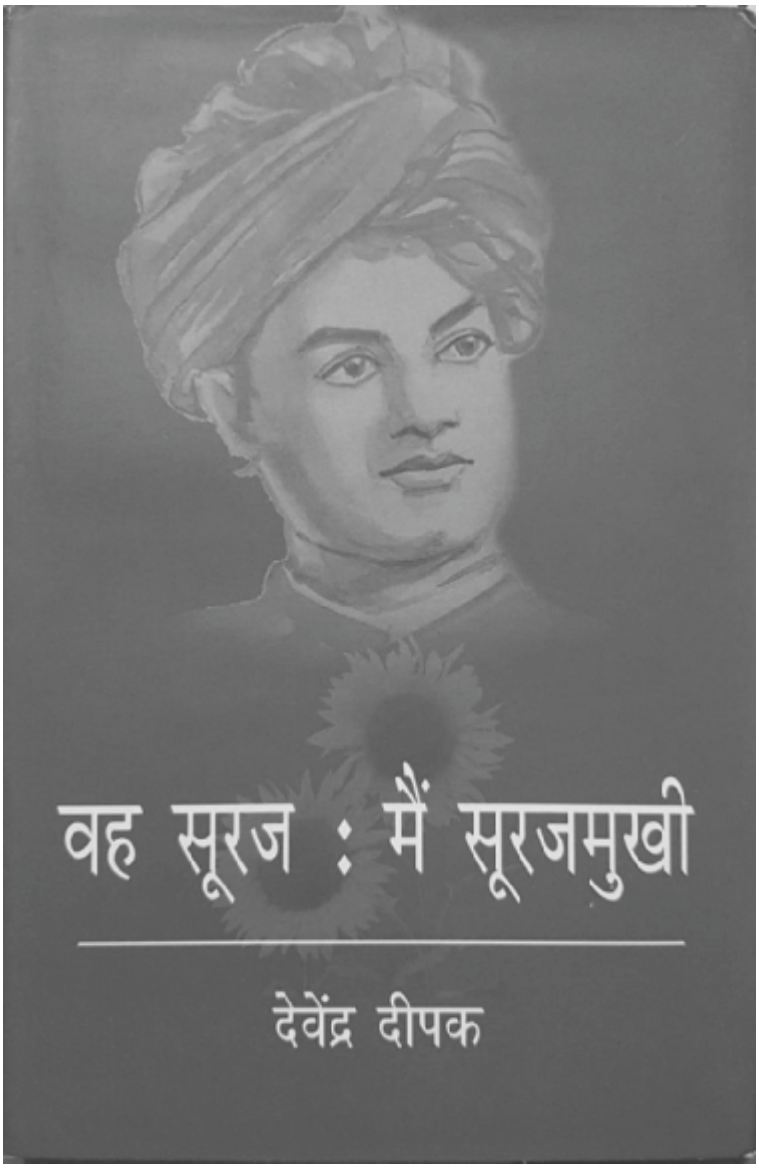

दीपक के नौ सूरज

— विनय त्रिपाठी

कितना कठिन है सूरज के पास पहुँचना। यह काम तो केसरी नंदन ही कर सकते हैं। इसलिए अपनी स्पष्ट समझ के साथ 'वह सूरज : मैं सूरजमुखी' के लेखक ने अपने सामर्थ्य को सूरजमुखी सामर्थ्य के रूप में चिह्नित किया है,—'अध्ययन, अनुभव और सृजन की दीर्घयात्रा में मेरे समक्ष अनेक ऐसे महापुरुष आए हैं जो मेरे लिए सूरज थे और मैं उनकी विचार-विभूति का भोक्ता (उपभोक्ता नहीं) सूरजमुखी!' सूरज और सूरजमुखी के बीच का यह नि:सर्ग सिद्ध रागानुबंध अंतर्वर्ती भी है और प्रकटरूप भी।

लेखक किसी तरह के भ्रम को पुष्ट करता अपने सूर्य-सदृश आदर्श व्यक्तित्वों का आलोक ग्रहण नहीं करता, अपितु चिर कृतज्ञ विनम्र भाव से उनकी ओर उन्मुख होता है। उसकी उन्मुखता में चिरनवीनता है। जीवंत पारस्परिकता है। चिर मैत्री है।

पर उसकी विनम्रता 'अँखझुकिया' नहीं, 'अँखलड़िया' है। 'विवेकानंद सूरज हैं और मैं सूरजमुखी हूँ।' उसे अँधेरे से लगाव नहीं, वह तो सूरज का चातक है। वह सूरज का आश्रित है। सूरज की प्रथम रश्मियों के साथ तन कर खड़ा हो जाता है और साँझ ढले पर्यंत जीवन-तत्व ग्रहण करता जिजीविषा सँजोता रहता है। यह लगन सामान्य नहीं इसीलिए वह एक पूरी सृष्टि रचने का प्रयास करता है।

उसकी सृष्टि के नौ सूरज दर्शाते हैं कि वह एक विशिष्ट धारा का नाविक हो कर भी राष्ट्र के प्राणों के साथ एकाकार होने का प्रयास करता है। भारतीय मनीषा के अप्रतिम अवगाहक-प्रसारक 'स्वामी विवेकानंद' से लेकर समकालीन भारतीय राजनीति की कविता सदृश 'अटलबिहारी वाजपेयी' तक वह वर्ण वैशिष्ट्य का अवगाहन करने का प्रयास करता है। अँग्रेजी शासन के

पुस्तक	–	वह सूरज : मैं सूरजमुखी
लेखक	–	देवेंद्र दीपक
प्रथम संस्करण	–	2020
पृष्ठ संख्या	–	191
मूल्य	–	500 रुपये
प्रकाशक	–	अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड 4697/3, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

ताबूत में आखिरी कील ठोकने वाले पंजाब केसरी 'लाला लाजपतराय', आजादी के आंदोलन के सरदार लौहपुरुष 'वल्लभभाई पटेल', स्वातंत्र्य वीर 'सावरकर', वंचित वर्ग की कूची 'डॉ. भीमराव अंबेडकर', सैनिक और किसान की एकात्मता के आग्रह 'लाल बहादुर शास्त्री,' सतपुड़ा के सघन वन से आत्मीय-कवि 'भवानीप्रसाद मिश्र,' एकात्म मानववाद के दार्शनिक 'पं. दीनदयाल उपाध्याय' के अवदान में अवगाहन करते लेखक की चाह पाठक को चेताने की नहीं, चेतना जाग्रत करने की है। वह मन को झकझोरना नहीं, पुष्ट करना चाहता है।

सूक्तिमत्ता इस पुस्तक के लेखन की विशेषता है। इसमें धर्म, संस्कृति, समाज, भाषा, साहित्य, कुरीतियाँ, रीतियाँ आदि सब का समावेश है। अपने सूरज व्यक्तित्वों के प्रति इसमें अनेक घोषकथन भी मिलते हैं। लेखक का आह्लादित मन उनके लिए विशेषण सँजोते नहीं थकता। तत्सम् शब्दावली इस पुस्तक का प्राणतत्व है। कहावतें और मुहावरे स्वाभाविक रूप से आए हैं। लेख, कविता, टिप्पणी इस पुस्तक के लेखन की विधाएँ हैं। इन विधाओं में अंतर्यात्रा करता लेखक आगे बढ़ता है। 'आचार्य निशांतकेतु' ने लेखक के इस वैशिष्ट्य के बारे में ठीक ही लिखा है, "देवेंद्र दीपक का गद्य अर्पणा बन जाता है, जब वह उनकी पर्णशाला में पहुँचता है और पत्रशाला में पहुँचकर विशेष गौरव को प्राप्त कर लेता है। डॉ. दीपक के गद्य और पद्य दोनों परस्पर रूपांतरणीय होकर एक विशेष स्वरूप को धारण करते हैं।"

'मेधा न्याय' करता लेखक अपनी प्रिय विधाओं के सशक्त हस्ताक्षरों का प्रसंगानुसार उल्लेख करता चलता है। उसने अपने मूल आग्रहों के प्रति सर्वांगरूप से न्याय किया है।

महान व्यक्तित्वों को अपनी तरह से समझने और पहचानने की खूबी इस पुस्तक की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। लेखक स्वामी विवेकानंद की 'सोशल पैथालॉजिस्ट' के रूप में पहचान करते हैं। वे उन्हें समाज चिकित्सक और कुशल होमियोपैथ कहते हैं। पुस्तक में उन पर छोटे-बड़े छह लेख हैं। इनमें स्वामी जी के विपुल अवदान पर विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है। वर्ण्य विषयों के साथ गंभीरता से न्याय करते हुए उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्षों को भी स्पर्श किया गया है। पूर्ववर्ती और परवर्ती की पड़ताल भी लेखक करते चलता है,—'कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद स्वामी रामानंद के परवर्ती संस्करण हैं। इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि स्वामी रामानंद स्वामी विवेकानंद के पूर्ववर्ती संस्करण हैं।' लाला लाजपतराय के अग्निचेता व्यक्तित्व और अवदान की दो लेखों में चर्चा है। वे प्रखर आर्य समाजी और राष्ट्रभक्त थे। उनकी महानता का सूत्र बताते हुए लेखक उनका आत्मकथ्य उद्धृत करता है।

सरदार पटेल की बात एक लेख में है। इसमें उनके स्वतंत्रता संग्राम में योगदान, स्वभाव, किसानों के प्रति विचार, उनकी कार्य संस्कृति और गृहमंत्री के रूप में किए गए कार्य का विशेष रूप से उल्लेख है।

सावरकर जी के संबंध में एक शोध लेख और तीन कविताएँ—'सात बंदी', 'याद', 'एक जाति-वैद्य के हवाले से' हैं। अन्य लेखों की तरह इनका केंद्रीय विषय भी अस्पृश्यता है,—"सावरकर ब्राह्मण थे, लेकिन उन्हें समूचे सवर्ण समाज को अस्पृश्यता का कलंक मिटाने के लिए जगाने का काम करना था।"

अंबेडकर जी की चर्चा करते हुए चार लेख और दो कविताएँ—'आखिरी आदमी का सलाम', 'अपमानित अंबेडकर प्रतिमा का वक्तव्य' हैं। लेखक ने अंबेडकर की पहचान सामाजिक अभिक्रिया के उत्प्रेरक व्यक्तित्व के रूप में की है। वे लिखते हैं—"एक नन्हीं-सी किरण अपनी साधना से एक सूरज कैसे बन जाती है, यह देखना हो तो हमें डॉक्टर अंबेडकर की साधना को देखना चाहिए।"

अंबेडकर की चर्चा करते हुए लेखक कई बार पूर्वाग्रहों को उभारते हुए पूर्वाग्रही हो जाता हुआ भी प्रतीत होता है, 'अंबेडकर ने जातीय दंभ की सिंह-मुद्रा और जातीय दंभ की ब्रह्म-मुद्रा दोनों को भोगा था।' लेखक ने

अंबेडकर को बहुविध जानने-जनाने और समझने-समझाने का प्रयास किया है,—"अंबेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा 14 अक्तूबर 1956 को ली। यह धर्मांतरण लगभग 20 वर्षों तक प्रतीक्षा और चिंतन के बाद किया गया और साथ ही यह भी कि वह केवल 52 दिन बौद्ध रहे।" लेखक ने उन्हें 'रफ' और 'टफ' दोनों कहा है। 'आर्यों' के मूलनिवास संबंधी प्रश्न की चर्चा भी की गई है। एक पत्रालेख और एक कविता-'शास्त्री जी के प्रति' शास्त्री जी के बारे में है। इनमें उनके जीवन और अवदान का संक्षिप्त पर प्रभावी रूप में उल्लेख है।

दो समीक्षात्मक लेखों में मुख्य रूप से मिश्र जी की आपातकालीन कविताओं की चर्चा है। लेखक ने मिश्र जी के तत्कालीन संकल्प की ओर ध्यान दिलाया है—

'सब मरे-अधमरे हैं तो क्या-
मैं एक ही जिंदा आदमी
इस ऊँचाई से आवाज लगाऊँगा
लाशों को जगाऊँगा।
लाशें जागेंगी
और नया एक दूसरा जश्न
मनाया जाएगा।'

कर्मठता, साहस, समर्पण और मनीषा की प्रतिमूर्ति उपाध्याय जी की चर्चा दो लेखों और एक कविता-'दीनू देख रहा है' में है। इस चर्चा में संघ की भी चर्चा है,—"राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विरोधी भी मानते हैं कि संघ 'ह्यूमन इंजीनियरिंग' की अद्‌भुत टकसाल है, जहाँ सिक्के नहीं, आदमी ढलते हैं।" उपाध्याय जी इसी टकसाल में ढले थे। लेखक ने उन्हें राजनीति का शिल्पी और दूसरा आचार्य कौटिल्य कहा है।

पुस्तक के अंत में अटल जी की कविताओं में उन्मेष की पड़ताल है। राजनेता कवि का आरोही उन्मेष है—

'मेरे प्रभु!
मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना
गैरों को गले लगा न सकूँ
इतनी रुखाई कभी मत देना।'

अटल जी का कवि अपनी पहचान कुछ इस तरह करता है-

'छोटे मन से कोई बड़ा नहीं होता,
टूटे मन से कोई खड़ा नहीं होता।'

लेखक ने अटल जी को प्रगतिशील भारतीयता का सशक्त, सार्थक और सहज कवि माना है।

मानवता की करुणा और आध्यात्मिकता से एकाकार लेखक प्रसंगानुसार स्थान-स्थान पर अपने बारे में भी बताता चलता है। वह अपने सूरजधर्मी व्यक्तित्वों के बारे में लिखनेवाले लोगों की भी चर्चा करता है। उसके जीवन के आठ दशकों की अनुभव आभा इस पुस्तक में जगह-जगह दृष्टिगत है। लेखक ने विषयानुसार स्थान-स्थान पर अपनी स्थापनाएँ देने का भी प्रयास किया है। कहीं-कहीं वह अपने सूर्यों के साथ एकात्म हो अंधकार रूपी कुरीतियों से लड़ता भी लगता है। उसका आग्रह है कि यदि हम किसी बात के जानकार हो जाएँ तो उसे मानना भी चाहिए।

यह पुस्तक निंदा के स्थान पर निदान, आलोचना के स्थान पर अनुष्ठान और आक्षेप के स्थान पर प्रक्षेप की बात करती चलती है। हर स्तर पर यह पुस्तक अछूतों, वंचितों, दलितों, दीनों, महिलाओं की पक्षधर के रूप में खड़ी दिखाई देती है। मानवाधिकार की बात करने के लिए इसमें एक पूरा लेख है। लेखक मानवता पर कलंक बन गए भेद के समूल उन्मूलन का पक्षधर है। यह पुस्तक छिन्न से अविच्छिन्न की ओर की प्रकाश-यात्रा है।

अधिकांश रचनाएँ पूर्व प्रकाशित हैं। अतः कुछ पुनरुक्ति दोष भी हैं, पर विषय गंभीर होने से वे खलते नहीं हैं। लेखक की कुछ प्रिय स्थापनाएँ भी बार-बार दुहराई गई हैं।

पुस्तक का आवरण आकर्षक है। सुदृढ़ पुट्ठे में पिरोए गए श्रेष्ठ गुणवत्ता वाले कागज में मुद्रण प्रभावी है।

V

म.नं. 19, स्वस्तिक, सीटीओ, बैरागढ़, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. : 8827301068, व्हाट्सएप 6265825459,
ई-मेल : purvaiya04@gmail.com

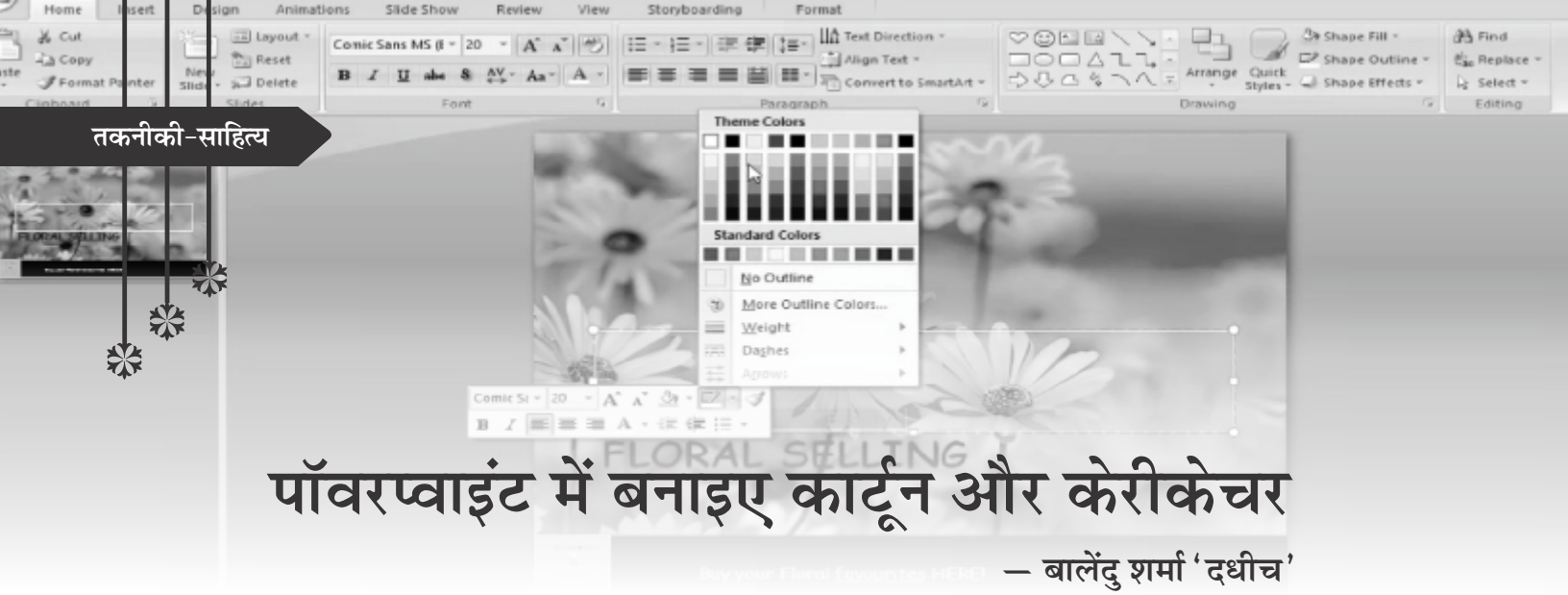

पॉवरप्वाइंट में बनाइए कार्टून और केरीकेचर

— बालेंदु शर्मा 'दधीच'

अगर आपसे कार्टून या केरीकेचर बनाने के लिए किसी अच्छे से सॉफ्टवेयर का नाम पूछा जाए तो आप क्या कहेंगे? शायद आप इलस्ट्रेटर, कोरल ड्रॉ, पेन्ट शॉप प्रो आदि महँगे सॉफ्टवेयरों का नाम लेंगे। लेकिन अगर मैं आपसे कहूँ कि आप यह काम अपने सीधे-सादे पॉवरप्वाइंट में ही कर सकते हैं और वह भी किसी डिजाइनर की मदद लिए बिना, तो आपको यकीन होगा? शायद नहीं।

लेकिन यह सच है। जो माइक्रोसॉफ्ट पॉवरप्वाइंट प्रेजेन्टेशन तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है, उसमें आप और भी बहुत सारे काम कर सकते हैं, जिनमें से एक है कार्टून, कैरीकेचर या दूसरे ग्राफिक्स बनाना। इन्हें बनाना किसी प्रोफेशनल सॉफ्टवेयर की तुलना में ज्यादा आसान है और इनका रिजोल्यूशन या पिक्चर क्वालिटी भी बहुत अच्छी होती है। आइए, आपको बताएँ कि यह कैसे होता है।

सबसे पहले पॉवरप्वाइंट को खोलिए। अब वह कार्टून, कैरीकेचर, लोगो या आइकन सोचिए, जिसे आप ड्रॉ करना चाहते हैं। बेहतर यह होगा कि उससे मिलता-जुलता कोई चित्र किसी सर्च इंजन पर जाकर डाउनलोड कर लें और उसे अपनी एक स्लाइड में इन्सर्ट कर लें। हम अपने ग्राफिक्स में इसका इस्तेमाल नहीं करेंगे, बस अपने आपको गाइड करने के लिए इसे देखते रहेंगे कि इसमें सिर कैसे बनाया गया है और पाँव कैसे। ठीक है?

मान लीजिए कि आपको एक व्यक्ति का चित्र बनाना है जो ब्रेड खा रहा है। तो सबसे पहले आपको उसका चेहरा ड्रॉ करना है ताकि उसके बेस पर आप सारी तस्वीर बना सकें। इसके लिए आप पहले Insert और फिर Shapes में जाएँगे और वहाँ से एक गोल किनारों वाले आयत की आकृति को चुन लेंगे। जैसे ही आप उसे क्लिक करेंगे, वह आपके पॉवरप्वाइंट स्लाइड में आ जाएगी। इसका रंग हम चेहरे के रंग से मिलता-जुलता रखेंगे। अब एक वृत्त या सर्कल लेंगे और उसे काले रंग में बदल देंगे। अब एक और छोटा वृत्त लेकर उसका रंग भी चेहरे के रंग जैसा बना देंगे और उसे पिछले (काले) वृत्त के भीतर इस तरह लगा देंगे कि काले वृत्त की सिर्फ मोटी आउटलाइन ही दिखती रहे। यह उस व्यक्ति के चश्मे का एक तरफ का फ्रेम बन रहा है। अब इस फ्रेम के एकदम बीचोंबीच छोटा सा काला वृत्त और डाल देंगे जो कि उसकी आँख का काम करेगा। इन तीनों वृत्तों को सलेक्ट करके ग्रुप कर लेंगे और अब उन्हें

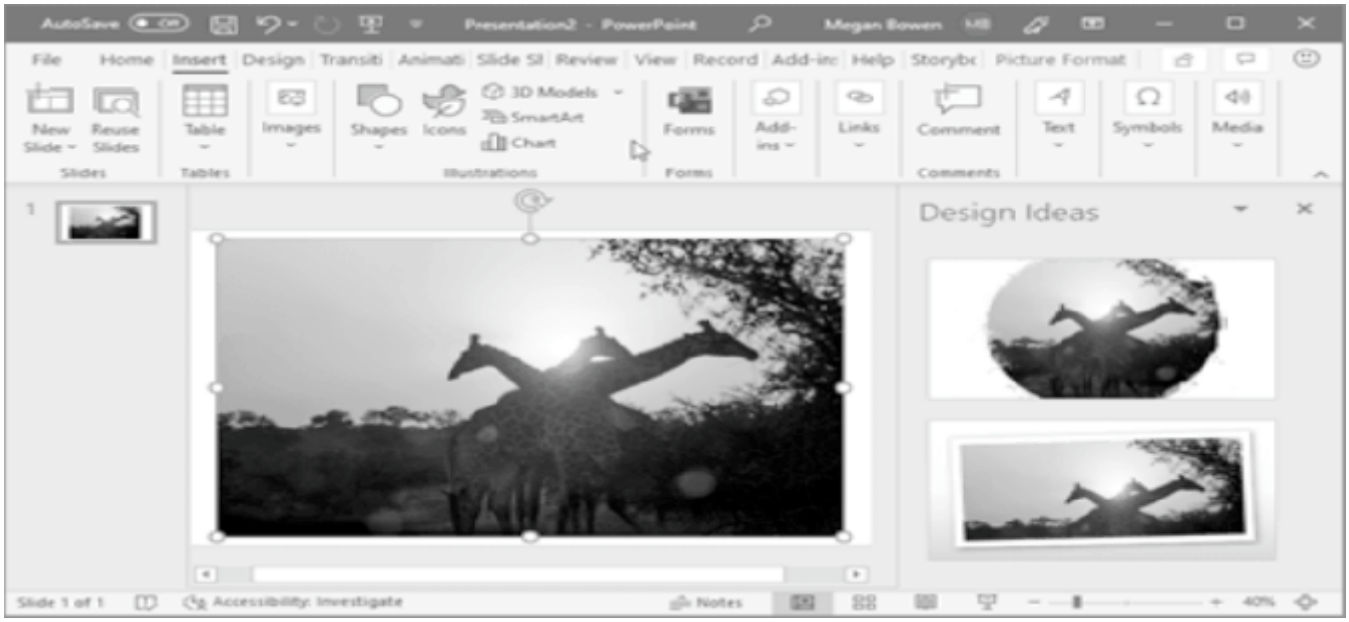

चेहरे के एक तरफ लाकर रख देंगे। फिर इसकी एक कॉपी बनाकर चेहरे के दूसरी तरफ ले जाएँगे। इन दोनों के बीच में एक लाइन बना देंगे। ये सब चीजें मिलकर उस व्यक्ति के चेहरे पर लगे हुए चश्मे का आभास देंगी। अब एक काला वृत्त लेकर उसके सिर पर ऊपर की तरफ लगाएँगे। फिर इसकी कुछ कॉपियाँ बनाकर उन्हें एक के बाद एक सिर पर इस तरह लगा देंगे कि वह बाल बनने का आभास देगा। इसी प्रकार एक वृत्त लेकर उसे कान के रूप में इस्तेमाल करेंगे लेकिन Send to back कमांड का इस्तेमाल करके बाईं तरफ चेहरे के पीछे भेज देंगे। फिर इसकी एक कॉपी बनाकर उसे दाईं तरफ चिपका देंगे। अब दो छोटे-छोटे वृत्त बनाकर उन्हें चेहरे के एकदम बीच में नाक के दो छेदों की तरह लगाएँगे। लीजिए उस शख्स का चेहरा बनकर तैयार हो गया।

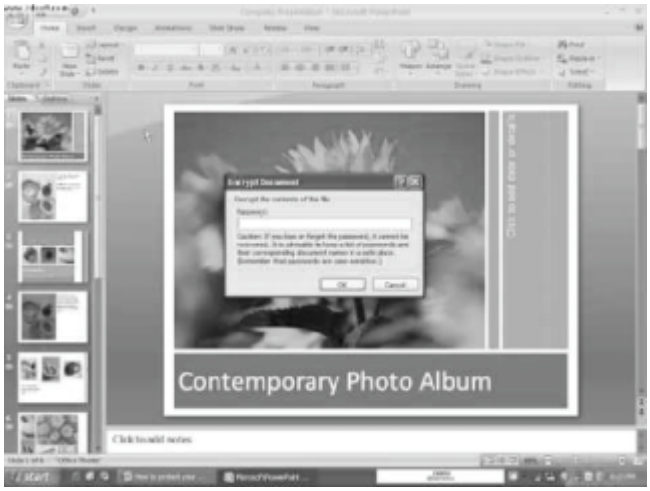

चूँकि इस प्रक्रिया में काफी कुछ प्रैक्टिकल ढंग से देखने की जरूरत है, इसलिए आप आगे की जानकारी लेने के लिए यह वीडियो देखिए-

https://bit-ly/2AIWHGX

तो कैसा लगा आपको? पॉवरप्वाइंट में सचमुच कई तरह के क्रिएटिव ग्राफिक्स बनाना संभव है। आप चाहें तो इन्हें JPG, PNG, GIF जैसे कई इमेज फॉरमैट्स में सेव भी कर सकते हैं।

(इस लेख में दी गई तरकीब को आप यूट्यूब पर वीडियो के रूप में देख सकते हैं। इसके लिए लेखक के यूट्यूब चैनल पर यहाँ जाएँ- https://www-youtube-com/BalenduSharma Dadhich\sub_confirmation=1 (संपादक)

V

लेखक जाने-माने तकनीकविद् हैं और वर्तमान में विश्व की अग्रणी कम्पनी माइक्रोसॉफ़्ट में निदेशक पद पर कार्यरत हैं।
504, पार्क रॉयल, जीएच 80, सेक्टर 56, गुरुग्राम-122011
मोबाइल : 9868235423

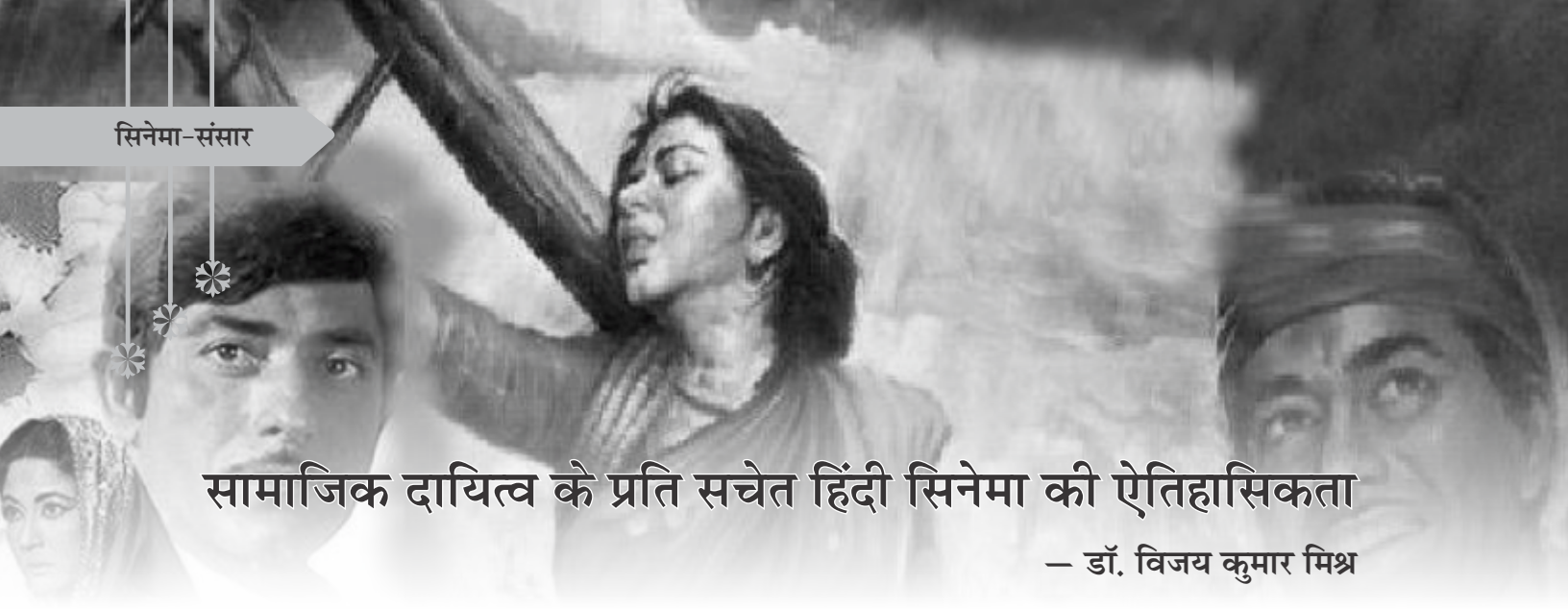

सामाजिक दायित्व के प्रति सचेत हिंदी सिनेमा की ऐतिहासिकता

— डॉ. विजय कुमार मिश्र

असल में सिनेमा को लेकर प्रेमचंद का अनुभव बेहद कड़वा रहा। जाहिर है उनका सिनेमा संबंधी अभिमत भी उसी से प्रभावित था। किंतु हम सिनेमाई परिदृश्य को समग्रता में देखें तो यह अपने आरंभ से ही मनोरंजनकारी स्वभाव के साथ ही सामाजिक सोद्देश्यता के आदर्श को भी साथ लेकर चला है। शुरू-शुरू में हिंदी फिल्मों ने धार्मिक और पौराणिक कथाओं को आधार बनाया, जिसका तीसरे दशक में आते-आते समाज की ओर काफी झुकाव हो गया था।

मानव सभ्यता के विकास में कलाओं की महती भूमिका सर्वविदित है। कलाएँ मनुष्य और उसके बाह्य जगत के बीच के गहन संबंधों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही हैं। सुंदर दुनिया की निर्मिति में इसने हर युग में बड़ी भूमिका निभाई है। समय-समय पर विशेषज्ञों ने कला और समाज के संबंधों की बारीक व्याख्याएँ की हैं। अन्र्स्ट फिशर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक कला की जरूरत में कला के संभावित भविष्य को मानव इतिहास की प्रगतिशील प्रक्रिया से जोड़ते हुए उसके सामाजिक प्रकार्य को विस्तारपूर्वक बताया है। उन्होंने लिखा है,—"कला 'जीवन की स्थानापन्न' है अथवा आसपास की दुनिया से मनुष्य का संतुलन स्थापित करने वाला साधन है—इस विचार में कला के स्वरूप और उसकी जरुरत की आंशिक पहचान निहित है। चूँकि मनुष्य तथा चारों ओर की दुनिया के बीच किसी स्थायी संतुलन की आशा उच्चतम रूप में विकसित समाज के अंदर भी नहीं की जा सकती, इसलिए इस विचार में यह संकेत भी निहित है कि कला सिर्फ अतीत में ही जरूरी नहीं थी, बल्कि हमेशा जरूरी रहेगी।"[1]

बहरहाल, सिनेमा कला की खोज आधुनिक समाज की महानतम उपलब्धि है। हमारे समाज-जीवन को पिछली सदी में जिस एक कला विधा ने सबसे अधिक प्रभावित किया है वह सिनेमा ही है। सिनेमा ने मनुष्य जीवन के हर कोने में अपनी पैठ बना ली है, जिससे हमारी जीवन शैली के विविध आयामों के निर्धारण में सिनेमा की भूमिका निर्णायक हो गई है। सिनेमा के प्रति लोगों की धारणा में भी सकारात्मक बदलाव आया है। अब सिनेमा को न तो हीन समझा जाता है और न ही अब यह अकादमिक विमर्शों से दूर है। आज सिनेमा और समाज को लेकर लोगों की पहले से कहीं अधिक स्पष्ट समझ दिखाई देती है।

अपनी अब तक की यात्रा में भारतीय सिनेमा ने निरंतर समाज में घटने वाली घटनाओं को उसके विशिष्ट संदर्भ में परदे पर उतारने का काम किया है। सामाजिक दायित्व के प्रति सचेत हिंदी सिनेमा का समृद्ध ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है। भारतीय सिनेमा के बदलते हुए रंग भारत की सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया से अनिवार्यत: संबद्ध हैं। "हम जब

भारतीय सिनेमा की बात करते हैं तो हमारे जहन में भारत की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास और भाषा पहले आती है, क्योंकि भारतीय सिनेमा का इन सब से बहुत गहरा नाता है। जैसे-जैसे वक्त बदल रहा है, वैसे-वैसे सिनेमा का रूप बदल रहा है। सभ्यता, संस्कृति, भाषा और इतिहास को सिनेमा में बड़ी खूबसूरती से दर्शाया गया है। रिश्तों की खूबसूरती तो कभी उलझे हुए रिश्ते भी फिल्मों में देखने को मिलते हैं, जो कहीं-न-कहीं हमारी निजी जिंदगी पर आधारित होते हैं, जिनकी कहानी हमारी जिंदगी से जुड़ी हुई लगती है। बदलते हुए समाज का रूप-रंग और स्वरूप हमें भारतीय सिनेमा में बखूबी देखने को मिलता है।"[2]

वस्तुतः सिनेमा-माध्यम दूसरे कला माध्यमों से भिन्न और विशिष्ट है। अलग कला रूप होते हुए भी यह विविध कलाओं का संगम है। अपनी पहुँच और प्रभाव की व्यापकता के कारण इसने बड़े-बड़े साहित्यकारों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है। प्रेमचंद, रेणु, कमलेश्वर जैसे हिंदी के अनेक साहित्यकारों ने सिनेमा की ओर रुख किया। इनमें से कई सफल हुए और कई असफल होकर साहित्य की ओर लौट आए। स्वयं प्रेमचंद अपनी पहली ही फिल्म 'मिल मजदूर' के प्रदर्शन के बाद सिनेमाई परिदृश्य से बेहद असंतुष्ट दिखे और आगे चलकर सिनेमा से उनका मोहभंग हो गया। उन्होंने 28 नवम्बर 1934 को बंबई से जैनेंद्र कुमार को भेजे अपने पत्र में लिखा,—"मैं जानता था 'मिल मजदूर' आपको पसंद नहीं आएगी। मैं जिन इरादों से यहाँ आया था उनमें से एक भी पूरा होता नजर नहीं आता। ये प्रोड्यूसर जिस ढंग की कहानियाँ बनाते आए हैं, उसकी लीक से जरा भर नहीं हट सकते।"[3]

असल में सिनेमा को लेकर प्रेमचंद का अनुभव बेहद कड़वा रहा। जाहिर है उनका सिनेमा संबंधी अभिमत भी उसी से प्रभावित था। किंतु हम सिनेमाई परिदृश्य को समग्रता में देखें तो यह अपने आरंभ से ही मनोरंजनकारी स्वभाव के साथ ही सामाजिक सोद्देश्यता के आदर्श को भी साथ लेकर चला है। शुरू-शुरू में हिंदी फिल्मों ने धार्मिक और पौराणिक कथाओं को आधार बनाया, जिसका तीसरे दशक में आते-आते समाज की ओर काफी झुकाव हो गया था।

"यह दशक चूँकि सक्रिय रूप से राष्ट्रीय जनजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन की शुरूआत का दशक था, इसलिए भारतवासियों के हृदय में सांस्कृतिक चेतना का पुनर्जागरण हो चला था। मानवीय मूल्यों को आधार बनाकर समाज-सुधार संबंधी आंदोलन भी जोर पकड़ता जा रहा था, जिसकी अभिव्यक्ति उस काल की कई फिल्मों में साफ-साफ झलकती है।"[4]

इस दशक के सबसे मशहूर फिल्मकार व्ही. शांताराम ने समसामयिक समस्याओं और राष्ट्रीय महत्त्व की अनेक फिल्में बनाकार अभूतपूर्व ख्याति अर्जित की। स्त्री-पुरुष अधिकारों की समानता पर आधारित 'अमर ज्योति' और 'दुनिया न माने' जैसी उनकी फिल्में विशेष उल्लेखनीय हैं। 1936 में हिमांशु राय ने छुआछूत पर आधारित 'अछूत कन्या' नाम की बेहद प्रभावशाली फिल्म बनाई। युवाओं की बेकारी पर बना 'जागरण' (मोहन भवनानी) और वेश्या उद्धार पर केंद्रित 'आदमी' (व्ही. शांताराम) भी बेहद उत्कृष्ट फिल्में थीं। सामाजिक कुरीतियों पर केंद्रित 'जागीरदार' (1937), 'वतन' (1938) 'औरत' (1940) जैसी फिल्में बनाने वाले महबूब खान भी इस युग के महान निर्देशक थे।

चालीस के दशक में सामाजिक समस्याओं और राष्ट्रीय चेतना पर फिल्म बनाने की दिशा में काफी प्रगति हुई। 1941 में प्रदर्शित 'पड़ोसी' (व्ही. शांताराम), 'सिकंदर' (सोहराब मोदी), 'रोटी' (महबूब खान), 'किस्मत' (ज्ञान मुखर्जी) के साथ ही इस दौर में बनी 'ज्वार भाटा', 'हुमायूँ', 'धरती के लाल', 'डॉ. कोटनीस की अमर कहानी', 'नीचा नगर', 'ऐलान', 'दहेज' आदि सामाजिक चेतना से संपृक्त प्रमुख फिल्में थीं। इन फिल्मों ने हिंदी सिनेमा परिदृश्य को पूरी तरह से बदल कर रख दिया।

पचास के दशक में हिंदी सिनेमा काफी परिपक्व हो गया था। 1951 में बी.आर. चोपड़ा ने स्वातंत्र्योत्तर समाज के भौतिकवादी परिवेश और उसके अंत:कलह को 'अफसाना' के माध्यम से दिखाया तो राजकपूर के 'आवारा' में सामाजिक कारणों से युवकों में बढ़ती अपराध की प्रवृत्ति और उसके भीतर के अंतर्द्वंद्व को फिल्माया गया। 1953 में बिमल रॉय ने रोजगार की तलाश में महानगरों की ओर पलायन करने वाले लोगों की जिंदगी की त्रासदी पर 'दो बीघा जमीन' जैसी महान फिल्म बनाई। बिमल रॉय की 'नौकरी' राजकपूर की 'जागते रहो' व्ही. शांताराम की 'दो आँखें बारह हाथ' महबूब खान की 'मदर इंडिया' बी.आर. चोपड़ा का 'नया दौर' आदि फिल्में आजाद भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और उसकी त्रासदी को उजागर करती हैं। गुरुदत्त की 'प्यासा' (1957) यश चोपड़ा निर्देशित 'धूल का फूल' (1959), बिमल रॉय की 'सुजाता' शक्ति सामंत निर्देशित 'जाली नोट' और विजय आनंद का 'काला बाजार' जैसी फिल्में भी खास थीं।

साठ और सत्तर के दशक को नव सिनेमा आंदोलन के उभार और साहित्यिक कृतियों के फिल्मांतरण के लिए याद किया जाता है। 1961 में नितिन बोस द्वारा निर्देशित 'गंगा जमुना' फिल्म प्रदर्शित हुई जो फर्ज और संबंधों की रस्साकशी पर आधारित थी। अगले वर्ष रवींद्रनाथ टैगोर की मूलकथा पर आधारित 'काबुलीवाला' फिल्म का प्रदर्शन हुआ। इस दशक में 'साहब, बीवी और गुलाम', 'बंदिनी', 'शहर और सपना' जैसी फिल्मों ने खास लोकप्रियता अर्जित की। 1964 में दो दोस्तों की अनोखी कहानी पर आधारित 'दोस्ती', भारत चीन की लड़ाई पर आधारित 'हकीकत', भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति को प्रतिबिंबित करने वाली फिल्म 'गाइड', राष्ट्रीय चेतना पर आधारित मनोज कुमार की फिल्म 'उपकार' तथा एच.एस. रावेल द्वारा निर्देशित 'संघर्ष' जैसी फिल्में प्रदर्शित हुईं। ये सभी फिल्में भारतीय सिने-इतिहास की उत्कृष्ट फिल्में हैं। सत्तर के दशक में 'आनंद' (हृषिकेश मुखर्जी), 'दस्तक' (राजिंदर सिंह बेदी), 'मेरा नाम जोकर' (राजकपूर) जैसी फिल्मों ने भारतीय सिनेमा की सामाजिक चेतना और मानवीय संवेदनाओं से जुड़े पक्षों को बड़े पैमाने पर पर्दे पर उतारने का काम किया।

साठ के दशक के अंत में समानांतर सिनेमा आंदोलन के प्रभाव में जिन नए ढंग की कला फिल्मों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई और साहित्यिक कृतियों के फिल्मांतरण का जो विशिष्ट वातावरण निर्मित हुआ उसका उत्कर्ष अगले दशक में देखने को मिला। सत्तर के दशक के आरंभ में ही हिंदी सिनेमा मुख्यधारा का सिनेमा या व्यावसायिक सिनेमा और समानांतर सिनेमा या कला सिनेमा के दो मुख्य रूपों में स्पष्ट रूप से विभाजित हो गया। लगभग डेढ़ दशकों तक प्रभावी रहने वाला कला सिनेमा आंदोलन हिंदी सिनेमा में सौंदर्यबोध और मजबूत कथानकों के पुनरुत्थान का वाहक था। इस आंदोलन ने भारतीय सिनेमा को विदेशों में भी प्रतिष्ठित किया। सत्यजीत राय जैसे फिल्मकारों ने इस दिशा में बड़ी भूमिका निभाई। एकरेखीय कथानक, मानवतावादी दृष्टिकोण और विषयवस्तु की यथार्थवादी प्रस्तुति इस तरह के सिनेमा की प्रमुख विशेषताएँ थी। "तत्कालीन लोकप्रिय सिनेमा के विरुद्ध नवसिनेमाकारों का विद्रोह, सरकार से मिलने वाली वित्तीय सहायता इस प्रकार के सिनेमा निर्माण में मददगार रही। छोटे बजट पर बनाई गई इन फिल्मों ने अनेक पुरस्कार जीते, इसलिए इससे लोगों को यह लगने लगा कि 'छोटा' ही 'कलात्मक' होता है।"[5]

कालांतर में कला सिनेमा आंदोलन का असर धीरे-धीरे कम होने लगा। यह भारत की साधारण जनता की रुचि में फिट नहीं बैठता था। इसे शिक्षित बुद्धिजीवियों का सिनेमा कहा जाने लगा। सरकार ने भी धन उपलब्ध कराने और संस्थान खोलने के अतिरिक्त वितरण की कोई खास व्यवस्था नहीं की। आगे चलकर व्यावसायिक सिनेमा से जुड़े फिल्मकारों ने भी उन्हीं विषयों पर फिल्में बनानी शुरू

कर दी और कला सिनेमा को चुनौती देने लगे। इसके अतिरिक्त इस आंदोलन से जुड़े फिल्मकारों की वैचारिक जकड़न आदि के कारण भी अल्प समय में ही समानांतर सिनेमा दम तोड़ने लगा और समय से पहले ही इसका अवसान हो गया। "उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उसके माध्यम से भारतीय दर्शक अपनी सांस्कृतिक, भाषायी और भौतिक विविधताओं को खोज पाए। वे अलग-अलग प्रांतों के लोगों, मौसम, संगीत, मिथकों और जीवनशैलियों से परिचित हो पाए।"[6]

कला सिनेमा आंदोलन के प्रभाव में बनने वाली 'चित्रलेखा' (1964), तीसरी कसम' (1966), 'उसकी रोटी', और 'सारा आकाश' (1969) जैसी फिल्में भी इस दौर में साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण को नए आयाम दे रही थीं। इस संबंध में 'रजनीगंधा' (बासु चटर्जी), 'एक अधूरी कहानी' (मृणाल सेन), 'आषाढ़ का एक दिन' (मोहन राकेश), 'दुविधा' (मणि कौल), 'बदनाम बस्ती' (प्रेम कुमार), 'त्रिसंध्या' (राजेन्द्र बेदी), 'अंकुर', 'निशांत', 'मंथन', 'मंडी' (श्याम बेनेगल), 'आक्रोश', 'अर्द्धसत्य' (गोविन्द निहलानी), 'घरौंदा' (भीमसेन), 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है?' (सईद मिर्जा), 'अर्थ', 'सारांश' (महेश भट्ट) आदि अनेक फिल्मों के नाम गिनाए जा सकते हैं।

1973 में श्याम बेनेगल निर्देशित 'अंकुर' प्रदर्शित हुई जो आंध्र प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में सामंतों द्वारा दलित खेतिहर मजदूर और उसकी पत्नी के दैहिक शोषण पर आधारित थी। इसी वर्ष एम.एस. सथ्यू की 'गर्म हवा' और अवतार कौल निर्देशित 'सत्ताईस डाउन' जैसी फिल्में भी बनीं। 1974 में श्याम बेनेगल ने 'चरणदास चोर' और दो साल बाद 'भूमिका' जैसी सार्थक फिल्में बनाई। 1981 में सत्यजीत रे द्वारा प्रेमचंद की कहानी पर बनाई गई फिल्म 'सद्गति' में शोषण और मानसिक गुलामी की दुनिया और उसकी भयावहता को दर्शाया गया है। 1983 में प्रदर्शित 'अर्द्धसत्य' (गोविंद निहलानी), और 'मंडी' (श्याम बेनेगल) धर्म, समाज, राजनीति के खोखलेपन को उजागर करती सशक्त फिल्में थीं। पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था और देश की लचर न्याय व्यवस्था पर आधारित सईद अख्तर मिर्जा की फिल्म 'मोहन जोशी हाजिर हो', 'दामुल' (प्रकाश झा), 'मिर्च मसाला' (केतन मेहता), 'तमस' (गोविंद निहलानी) आदि अस्सी के दशक की महत्त्वपूर्ण फिल्में थीं।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में 'धारावी' (सुधीर मिश्रा), 'दीक्षा' (अरुण कौल) और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (श्याम बेनेगल), 'रोजा' (मणिरत्नम), 'अर्थ' (दीपा मेहता) जैसी फिल्में काफी चर्चित रहीं। इसके अतिरिक्त 'माचिस', 'बैंडिट क्वीन', 'लम्हे', 'रुदाली', 'सलाम बॉम्बे' आदि फिल्मों ने भी लोगों को काफी प्रभावित किया। यहाँ तक आते-आते हिंदी सिनेमा का परिदृश्य काफी बदल चुका था। तकनीक, कथानक, प्रस्तुतीकरण, गीत-संगीत आदि सभी दृष्टियों से परिवर्तन देखे जा सकते हैं। इस दौर में हिंदी सिनेमा ने अंतरराष्ट्रीय पटल पर भी अपनी धाक जमानी शुरू कर दी। फिल्म देखने और दिखाने के तरीके बदलने लगे। बदले हुए परिदृश्य में इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दो दशकों में 'लगान', 'गदर', 'कभी खुशी कभी गम', 'देवदास', 'कोई मिल गया', 'कल हो न हो', 'बागबान', 'वीर जारा', 'रंग दे बसंती', 'तारे जमीं पर', 'लगे रहो मुन्ना भाई', 'कृष', 'धूम-2', 'चक दे इंडिया', 'सिंघम', 'दबंग', 'पीके', 'थ्री इडियट्स', 'भाग मिल्खा भाग', 'पीकू', 'दंगल', 'रुस्तम', 'हिंदी मीडियम', 'मिशन मंगल' आदि फिल्मों ने सफलता के नए मानक स्थापित किए। सामाजिक प्रतिबद्धताओं से युक्त कथानक वाली फिल्मों 'पिपली लाइव', 'तारे जमीं पर', 'पा', 'थ्री इडियट्स', 'टॉयलेट-एक प्रेम कथा', 'पैडमैन', 'ब्लैक फ्राइडे', 'मुन्ना भाई एमबीबीएस', 'विक्की डोनर', 'इंग्लिश विंगलिश', 'पीके', 'ओह माय

गॉड' आदि फिल्मों ने समकालीन समाज की विडंबनाओं को प्रस्तुत कर उसके प्रति लोगों को जागरूक करने का काम किया।

'वेडंज़सडे', 'नो वन किल्ड जेसिका' जैसी फिल्में समाज में अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध खड़ा होने का संदेश देती हैं। मानव-तस्करी और वेश्यावृत्ति की समस्याओं पर केंद्रित 'चाँदनी बार', 'चमेली' आदि ने हमारे समय के सच को सामने लाने का काम किया। शिक्षा-व्यवस्था की विसंगतियों और इस क्षेत्र में नवाचार की संभावनाओं को प्रस्तावित करने वाली फिल्मों 'तारे जमीं पर', 'थ्री इडियट्स', 'मुन्ना भाई एमबीबीएस', 'हिचकी', 'सुपर थर्टी' आदि ने शिक्षा-व्यवस्था की खामियों की ओर लोगों का ध्यान खींचा। अपराध, राजनीतिक छल-छद्म और उसकी फाँस को 'गंगाजल', 'आरक्षण', 'अपहरण', 'राजनीति', 'गैंग्स ऑफ वासेपुर', 'चक्रव्यूह', 'पान सिंह तोमर' आदि के माध्यम से दर्शकों के सामने रखा गया तो 'क्या कहना', 'लज्जा', 'मि. एंड मिसेज अय्यर', 'लव आज कल', 'इश्किया', 'बैंड बाजा बारात', 'अनजाना अनजानी' 'कॉर्पोरेट', 'फैशन' जैसी फिल्में स्त्री-चरित्र के विभिन्न पहलुओं को सामने लाती हैं।

नई सदी की हिंदी फिल्मों में कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर काफी वैविध्य देखा जा सकता है। 'ये मेरा इंडिया' (2009), 'खाप' (2011), तथा 'शूद्र' (2012) जैसी फिल्मों में जहाँ जातिवाद के दंश को दिखाया गया है तो 'वेलडन अब्बा' (2008), 'जॉली एलएलबी' (2013), 'सत्याग्रह' (2017) में भ्रष्टाचार की बारीकियों को फिल्माया गया है। प्रकाश झा की फिल्म 'चक्रव्यूह' में नक्सलवाद की समस्या की गंभीरता का प्रस्तुतीकरण हुआ है। इस दौर में संगठित अपराध पर बनने वाली फिल्मों में 'फुटपाथ' और 'मकबूल' (2003), 'अपहरण' (2005), 'ओमकारा' (2006), 'ट्रैफिक सिग्नल' और 'शूटआउट एट लोखंडवाला' (2007), 'आमिर', 'ब्लैक एंड व्हाइट' (2008), 'भिंडी बाजार' (2011), 'गैंग्स ऑफ वासेपुर' (2012), 'हॉलिडे' (2014) आदि प्रमुख हैं। इन फिल्मों के माध्यम से इस क्षेत्र में व्याप्त अंधकार, भय, आतंक और संघर्ष को दर्शाया गया है।

इस तरह हम देखते हैं कि अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति अपने उद्भव काल से ही सचेत हिंदी फिल्मकारों ने अनेक ऐसी फिल्में बनाई हैं जो सामाजिक समस्याओं पर केंद्रित और सामाजिक परिष्कार के उद्देश्य से युक्त रही हैं। सामाजिक यथार्थ, उसकी विषमताओं, विसंगतियों को परदे पर उतारने वाले इन फिल्मकारों ने भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य की निर्मिति में बड़ी भूमिका निभाई है। इस क्रम में पिछले दो दशकों में कई नए फिल्कारों ने जिस प्रयोगधर्मिता के साथ भारतीय समाज की आंतरिकता से जुड़े पक्षों को सिनेमा के परदे पर रूपायित किया है, वह हिंदी सिनेमा के स्वर्णिम भविष्य के प्रति आश्वस्त करने वाला है।

संदर्भ :

1. अर्न्स्ट फिशर, कला की जरूरत, अनुवाद - रमेश उपाध्याय, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 9
2. जिंदगी में भी डाला असर, खुशनुमा परवीन, मीडिया विमर्श सिनेमा विशेषांक -1, दिसंबर 2012, पृष्ठ 30
3. माधुरी, 1 अक्टूबर, 1964
4. प्रसून सिन्हा, भारतीय सिनेमा : एक अनंत यात्रा, श्री नटराज पब्लिशर्स, 2006, पृ. 85
5. वासुदेव अरुण, नव भारतीय सिनेमा, पृ. 32
6. वैश, थॉरवेल, सिनेमाज ऑफ इंडिया, मैकमिलन पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 146

V

सहायक प्रोफेसर, हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
यू-89, परिवार अपार्टमेंट, सुभाष पार्क, उत्तम नगर,
नई दिल्ली-110059 मो. : 8920116822, 8585956742
ई-मेल : vijayvijaymishra@gmail.com

व्यंग्य, जीवन की विद्रूपता से संघर्ष : सूर्यबाला

वरिष्ठ कथाकार और व्यंग्यकार डॉ. सूर्यबाला से डॉ. संतोष विश्नोई की बातचीत के प्रमुख अंश

समकालीन व्यंग्य एवं कथा-साहित्य में अपनी विशिष्ट भूमिका तथा महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली डॉ. सूर्यबाला ने 'मेरे संधि पत्र', 'सुबह के इंतजार तक', 'अग्निपंखी', 'यामिनी-कथा', 'दीक्षांत' आदि उपन्यासों की रचना की इसके साथ-साथ 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'देशसेवा के अखाड़े में', 'भगवान ने कहा था' आदि इनके प्रमुख व्यंग्य संग्रह हैं। आपके व्यंग्य लेखन का उद्देश्य कोरी गुदगुदी या हास्य उत्पन्न करना नहीं, बल्कि पाठक के मन में अपनी और अपने समाज की जीवन स्थितियों के विस्मयकारी साक्षात्कार के द्वारा मोहभंग और परिवर्तन की भूमिका बनाना है। आपकी व्यंग्य रचनाओं का दायरा राजनीति, समाज, धर्म, प्रशासन, मध्यवर्गीय आकांक्षाओं की विकृतियों से लेकर बाजारीकरण, देश की आर्थिक व्यवस्था से होती हुई आम आदमी को आत्मसात करता हुआ विस्तृत क्षेत्रों तक फैला हुआ है। आपसे प्रश्नावली आधारित साक्षात्कार के प्रमुख अंश प्रस्तुत हैं—

व्यंग्य लिखना अन्य विधाओं के लेखन से किस प्रकार भिन्न होता है, व्यंग्य लिखने के तहत कैसी रचनात्मक अनुभूति होती है?

व्यंग्य-लेखन एक सर्वथा भिन्न प्रकृति, दृष्टि और समझ की मांग करता है। यह प्रकृति और प्रतिभा या विशिष्टता कह लें, जन्मजात होती है। ललित-निबंधकार, कवि, कहानीकार अन्य सभी विधाओं का लेखन कमोबेश एक-सी ही रचनात्मक प्रतिभा की माँग करता है। लेकिन व्यंग्य-लेखन के लिए 'व्यंजना' की प्रभूत प्रतिभा चाहिए होती है। यहाँ शब्द छद्मदेशी होते हैं। ऊपर से सहज मासूम अंदर से पैने। रचनात्मक अनुभूति तो एक मन लायक रचना पूरी करने की होती है। क्योंकि व्यंग्य या व्यंजना का उपयोग शिल्प के रूप में हम अन्य विधाओं में भी तो करते ही हैं।

आज व्यंग्य-चेतना इतनी प्रभावी हो गई है कि साहित्य की विविधता विधाओं में अपनी पैठ बना चुकी है फिर भी पद्य की अपेक्षा गद्य में इसका प्रसार अधिक दिखाई देता हैं। इस संबंध में आप क्या कहना चाहेंगे?

निश्चित रूप से पत्र-पत्रिकाओं के स्तंभों तथा अन्य रूपों में भी व्यंग्य आज की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बन चुकी है। हास्य-व्यंग्यपरक कविताओं का प्रारंभ भी लगभग गद्य के साथ बल्कि और पहले से हुआ, लेकिन देखते-देखते कविताएँ मंच केंद्रित होती चली गईं और उसी अनुसार उनका स्तर भी हल्का और सतही होता चला गया। मंच पर वाहवाही की अपनी शर्तें हैं। क्रमशः मंच की गंभीर कविताओं को ओवरटेक करती हुई हास्य-व्यंग्यपरक सस्ती, चुटकुलेनुमा कविताएँ ही मंच पर अपना वर्चस्व स्थापित करती चली गईं। यह साहित्य के व्यावसायिक पक्ष के साथ खुला और दुर्भाग्यपूर्ण समझौता था। पूरी तरह से टीआरपी केंद्रित।

लेकिन आधुनिक गद्य में व्यंग्य का विकास बड़े

सुथरेपन और परिपक्व दृष्टि के साथ हुआ। अधिकांशत: छोटा आकार, शिल्प की तराश और सामाजिक विरूपताओं के प्रति सचेत प्रहारात्मकता ने इसे देखते-देखते गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बना दिया और इसका पूरा श्रेय शरद जोशी, परसाई, श्री लाल शुक्ल, रवींद्र नाथ त्यागी तथा के.पी. सक्सेना जैसे मूर्धन्य व्यंग्यकारों को जाता है, जिन्होंने गुणवत्ता के स्तर पर व्यंग्य-लेखन की साख को आँच नहीं आने दी। शरद जोशी और के.पी. सक्सेना जैसे व्यंग्यकारों ने मंच पर 'हिट होने के बावजूद' मंचीय व्यावसायिकता से कोई समझौता नहीं किया। हास्य-व्यंग्य प्रधान कविताएँ साहित्य की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाईं। अंतिम पायदान पर ही रहीं।

अधिकांश व्यंग्यकार और समीक्षक व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा नहीं, अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम मानते हैं। सभी विधाओं में लिखी जाने के कारण भी क्या व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा माना जा सकता है?

औरों की नहीं जानती लेकिन मेरा यह स्पष्ट मत है और आज से नहीं दो दशक पहले से कि जिस रूप में जिस तराश और सलीके के साथ वर्तमान व्यंग्य-लेखन विकसित होता चला गया है। उससे यह शैली मात्र न रह कर एक मुकम्मल विधा की शक्ल अख्तियार कर चुका है। रचना चाहे जिस विधा की हो, लेकिन यदि उसका लक्ष्य, कथ्य और शिल्प तीनों सामाजिक विरूपताओं के प्रतिरोध से जुड़े हैं तो वह व्यंग्य-विधा के ही खाते में जाएगी। वहाँ प्रमुखता विधा के स्वरूप और सीमाओं से ज्यादा विद्रूप और व्यंग्य की होती है। सामान्यत: छोटी व्यंग्य रचनाएँ स्तंभ या लेख इसलिए भी ज्यादा लोकप्रिय और प्रभावी होते हैं, क्योंकि उनमें व्यंग्यकार सीधा लक्ष्य-संधान कर पाता है, जबकि कहानी आदि अन्य विधाओं में अन्य विधाजन्य शर्तें भी पूरी करनी होती है।

आप के विचार में हास्य का प्रयोग व्यंग्य में अनिवार्य है, क्या हास्य के बिना भी श्रेष्ठ व्यंग्य लिखा जा सकता है?

मैं हास्य को व्यंग्य का अनिवार्य तत्व नहीं मानती लेकिन त्याज्य भी नहीं मानती। सारा कुछ व्यंग्यकार की प्रतिभा और शिल्प कौशल पर निर्भर करता है। सतही और फूहड़ हास्य तो हास्य रचना में भी त्याज्य चाहिए। शिष्ट और बारीक हास्य, व्यंग्य की नक्काशी की तरह होता है। उसका प्रभाव और संप्रेषणीयता बढ़ाता है जबकि भोंडा, स्थूल हास्य रचना की गुणवत्ता को घटाता है।

किसी भी रचना का मूल्यांकन करने के लिए कुछ तत्व निर्धारित रहते हैं। आपके विचार से कौन-कौन से तत्व व्यंग्य में जरूरी हैं?

यह समझना आवश्यक है कि व्यंग्य लेखन कठिन न सही पर अन्य विधाओं कविता, कहानी, नाटक आदि से काफी अलग अवश्य है। व्यंग्यकार में समाज जीवन और व्यक्तिमन की विसंगतियों, विरूपताओं को देखने-पकड़ने की अपनी विशिष्ट दृष्टि होती है। साथ ही उस विद्रूप को सामान्य से सर्वथा अलग व्यंजना की बारीक तराश के साथ अभिव्यक्त करने का कौशल। व्यंग्य-लेखन का उद्देश्य विरूपताओं का लाउड बयान अथवा इकहरी टिप्पणी मात्र नहीं होता। उसकी शक्ति ऊपर से बेहद सीधे-सादे बल्कि मासूम से दिखते शब्दों के माध्यम से पैनी छुरी वाली मार करने में निहित होती है। अत: पहली बात तो व्यंग्य किसी व्यक्ति को लक्ष्य कर नहीं, बल्कि प्रवृत्ति या समस्या को लक्ष्य कर हो। दूसरी सतही स्थूल और लाउड बयानबाजी से अलग बारीक, गहरा और शालीन हो। कुछ लोगों को यह भी भ्रम है कि प्रहारात्मक शब्दों के बिना उत्कृष्ट व्यंग्य-रचना नहीं की जा सकती। इसके उलट व्यंग्य-लेखन में बात तब बनती है, जब अंदाज बेहद मासूम हो और आशय बहुत गहरा। व्यंग्य शब्दों में नहीं बल्कि 'अर्थ में होता है और व्यंग्य में भी' अतिरिक्त अश्लील होता है।

स्वतंत्रतापूर्व के व्यंग्य-लेखन तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखे जाने वाले व्यंग्य साहित्य में क्या भिन्नता रही है?

स्वतंत्रता पूर्व का व्यंग्य-लेखन मुख्यत: ब्रिटिश राज के विरोध में कवच का काम करता था। जिससे लेखन के प्रतिरोध को व्यंग्य के आवरण में छुपाया जा सके। इतर प्रकार के व्यंग्य में हास्य का पुट ज्यादा रहता था, किंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् के व्यंग्य समाज में आई गिरावट और भ्रष्टाचार से उपजे आमजनों के मोहभंग से जुड़े हैं।

हरिशंकर परसाई, शरद जोशी और रवींद्रनाथ

त्यागी तीन हास्य-व्यंग्य की त्रयी हैं। इन व्यंग्य रचनाकारों के रचना-कर्म के विषय में आप क्या कहना चाहेंगे?

इस प्रश्न का उत्तर पर्याप्त स्पेस और समय माँगता है। अति संक्षेप में तीनों का व्यंग्य-लेखन कथ्य और शिल्प की दृष्टि से एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। मैं इसमें श्रीलाल शुक्ल को भी शामिल करना चाहूँगी। श्री लाल शुक्ल चूँकि उच्च प्रशासकीय सेवाओं से जुड़े थे, अत: अति उच्चवर्ग से लेकर ग्रामीण जीवन तक में बहुत गहरी पैठ थी उनके व्यंग्य लेखन की। शरद जी सहज, खिलंदड़ी और शरारती शैली के प्रखर व्यंग्यकार थे। परसाई में व्यंग्य की मारक क्षमता अपने चरम पर थी, सिर्फ कभी कदा विचारधारात्मक आग्रह की प्रबलता हावी हो गई है। रवींद्रनाथ त्यागी के व्यंग्य में हास्य, लालित्य एवं ज्ञान का अपूर्व संगम था। उनकी स्मृति तथा ज्ञान विस्मित करते थे।

प्राय: ऐसा होता है कि व्यंग्यकार किन्हीं स्थितियों को लेकर कुछ लिखता है पर समय के अनंतर स्थितियाँ बदल जाती हैं और रचनाकार द्वारा लिखा गया उत्कृष्ट व्यंग्य पुराना पड़ जाता है ऐसे में व्यंग्य साहित्य की शाश्वता पर प्रश्न खड़ा नहीं होता? ऐसे में लेखक का साहित्य प्रासंगिक कैसे रह पाएगा?

आपका यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। व्यंग्य-लेखन के साथ जुड़ी यह एक बड़ी विडंबना है। यों यह समस्या अन्य विधाओं की सामयिक समस्याओं से जुड़ी रचनाओं के साथ भी आती है, लेकिन व्यंग्य चूँकि सामयिक विरूपताओं पर ही किया जाने वाला प्रत्यक्ष प्रतिरोध है, अत: इसके पुराने पड़ जाने का खतरा ज्यादा रहता है। पाठक की स्मृति से वे घटनाएँ लुप्त हो चुकी होती हैं। अत: मेरा मानना है कि सामयिकता को उत्स बनाते हुए भी रचना का सार्वकालिक ट्रीटमेंट ही उसे लंबे समय तक प्रासंगिक रख पाता है। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि गंभीर व्यंग्य-लेखन घटना विशेष पर की गई सामयिक टिप्पणी मात्र नहीं होता। सामयिकता को सर्वकालिकता से जोड़ना ही व्यंग्यकार की सबसे बड़ी चुनौती होती है।

लेकिन एक दिलचस्प बात यह भी कि गंभीर सामाजिक समस्याएँ और विसंगतियाँ तो प्राय: कभी न समाप्त होने वाली ही होती हैं, चाहे भाषा की समस्या हो या भ्रष्टाचार और गरीबी की। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य व्यंग्य-लेखन को मात्र बाहरी समस्याओं से जोड़कर देखना उसके कैनवास को सीमित करना है। व्यंग्य तो समाज और राजनीति के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ मानव स्वभाव और आचरण के रेशे-रेशे में व्याप्त है। प्राय: सभी वरिष्ठ और गंभीर व्यंग्यकारों ने इन्हें अपने व्यंग्य का विषय बनाया भी है।

आजकल अखबारी व्यंग्य अधिक दिखाई दे रहा है, क्या ऐसा व्यंग्य साहित्य को समृद्धि दे सकता है?

साहित्य को समृद्ध करने के लिए छोटा-बड़ा आकार नहीं, गुणवत्ता चाहिए होती है। रचना बेशक छोटी या अखबारी स्तंभ के रूप में ही हो, यदि वह उत्कृष्ट और स्तरीय है तो साहित्य में शामिल है, एक छोटी कविता की तरह। परसाई और शरद जोशी से लेकर आज के अनेक व्यंग्यकारों ने ऐसी छोटी, चुटीली और बेधक व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं।

किसी भी लेखक को व्यंग्य रचना करते समय किस पक्ष को अधिक महत्व देना चाहिए? उसके कलात्मक शिल्प की परिपूर्णता पर या उसके कथ्य पक्ष पर?

व्यंग्य या किसी भी विधा में लिखते समय लेखक

सायास कथ्य या शिल्प के महत्व को लेकर नहीं उलझता। उसकी कोशिश हमेशा अपनी रचनात्मकता का सर्वोत्तम दे पाने की होती है। एक अच्छी व्यंग्य रचना में कथ्य और शिल्प एक दूसरे में इस तरह समाहित होते हैं कि शिल्प अलग से न दिखकर रचना को उसके चरम तक निखारने का माध्यम बनता है। व्यंग्य को तराशता और पैना करता है। व्यंग्यकार की हुनरमंदी ऐसे प्रयोगों में होती है जो शब्द को चकमक पत्थर की तरह घिसकर अर्थ और ध्वनि का चमत्कार उत्पन्न कर सके। मैंने श्रीलाल शुक्ल के व्यंग्य शिल्प के लिए एक जगह कहा है कि वे एक साधारण से ढेले (शब्द) से हथगोले का काम लेते थे। यह उक्ति शरद जोशी और परसाई पर भी उतनी ही खरी उतरती है।

वर्तमान हास्य व्यंग्यकारों के प्रति आपका क्या कहना है?

समकालीन व्यंग्यकारों की कई समर्थ पीढ़ियाँ इन दिनों लगातार लिख रही हूँ। जिनमें शंकर पुणतांबेकर से लेकर नरेंद्र कोहली, शेरजंग गर्ग, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, गोपाल चतुर्वेदी, हरि जोशी, शिव शर्मा, यशवंत व्यास, सुरेश कांत, श्रीकृष्ण चराटे, यज्ञ शर्मा, हरीश नवल, अलोक पुराणिक, जवाहर चौधरी, विनोद शंकर शुक्ल आदि अनेकों नाम तो हैं ही, अन्य विधाओं के साथ-साथ व्यंग्य-विधा को भी समृद्ध करने वाले लेखकों में विष्णु नागर, पंकज सुबीर, सूर्यकांत नागर, कैलाश सेंगर, गिरीश पंकज आदि अनेकों समर्थ व्यंग्यकार है। नाम लेने में सबसे ज्यादा दु:ख भूलवश छूट जाने वाले नामों के लिए होता है। युवाओं में कुछ नाम बेशक अत्यंत संभावनाशील प्रतीत होते हैं लेकिन अभी तक कुल मिलाकर छोटी व्यंग्य रचनाओं से व्यंग्य उपन्यासों तक व्यंग्य-लेखन में नेतृत्व की डोर ज्ञान चतुर्वेदी ही सँभाले हुए हैं। निसंदेह उनके उपन्यासों में गालियों की बहुतायत को लेकर ज्ञान चतुर्वेदी का एक कट्टर प्रतिपक्ष भी खड़ा हो गया है। मैं स्वयं इन शब्दों के प्रयोग के विरोध में न होने पर भी मानती हूँ कि कहीं-न-कहीं थोड़ी 'एडिटिंग' की गुंजाइश बनती जरूर है। यह एडिटिंग काट-छाँट ज्ञान चतुर्वेदी के व्यंग्य-लेखन की ही नहीं विश्वस्तर पर हिंदी-व्यंग्य की साख कायम करने में समर्थ होगी। शेष तो यही कहूँगी कि ज्ञान चतुर्वेदी-सी उत्कट प्रतिभा के व्यंग्यकार कभी-कभार ही पैदा होते हैं, जिन्होंने व्यंग्य की उत्कृष्टता का मानक रचा। दूसरा सर्वाधिक प्रतिभाशाली नाम प्रेम जनमेजय का है जिन्होंने उत्कृष्ट व्यंग्य-लेखन के साथ-साथ 'व्यंग्ययात्रा' जैसी व्यंग्यलोचन और रचनात्मक व्यंग्य की पत्रिका निकालकर समकालीन व्यंग्य को शिखर तक पहुँचा दिया है। नयों के साथ आश्वस्तिकर होने के बावजूद प्राय: यह अवश्य लगता है, जैसे प्रतिभा और परिश्रम की तुलना में आत्मविश्वास और उतावली जरूरत से ज्यादा है।

साहित्य की अन्य विधाओं से व्यंग्य की भाषा को आप किस तरह अलग करते हैं? और व्यंग्य के लिए कैसी भाषा जरूरी मानते हैं?

हर व्यंग्यकार अपनी भाषा ईजाद करता है। अन्य विधाओं जैसे कहानी, कविता, ललित निबंध, उपन्यास आदि की भाषा में 'कमोबेश' आवाजाही हो सकती है, लेकिन व्यंग्य की भाषा चकमक की तरह दूर से चमकती और चिटकती है। रोजमर्रा के उन्हीं शब्दों से व्यंग्यकार ऐसा चमत्कार उत्पन्न करता है, जैसे साधारण-सी बॉल से खिलाड़ी के गुगली और स्पिन वाले थ्रो। भाषा की आक्रामकता और वक्रता के साथ सहजता व्यंग्य-शिल्प का अनिवार्य गुण है।

इसमें संदेह नहीं कि आज का व्यंग्य वर्तमान युग की विसंगतियों, विडंबनाओं, विद्रूपताओं, कथनी और करनी पर प्रकाश डालता है। व्यंग्य कितनी सार्थक भूमिका निभा सकता है?

व्यंग्य विधा प्रत्यक्षत: आज के व्यक्ति की समस्याओं के साथ जुड़ती है। उसके आक्रोश में सहभागी बनती है। जीवन और उसकी विद्रूपता से लड़ने की प्रेरणा और हौसला देती है। व्यंग्य के माध्यम से विसंगतियों पर पड़ने वाली चोट, विचार और भावना के स्तर पर पाठक को एक किस्म की तृप्ति और आश्वस्ति सौंपती है।

V

सहायक प्रोफेसर कॉलेज शिक्षा, फरीदाबाद,
हरियाणा, मोबाइल 9887547908
Email : santosh.vishnoi2010@gmail.com

— कृष्ण मनु

मिलन

विशेष आवाज में मोबाइल बजा। केतली से चाय ढालते हुए अधेड़ चौंक गया। वह बुदबुदाया-'इतने वर्षों बाद केतकी? नहीं, नहीं, यह उसका भ्रम है। वर्षों से भ्रम में ही जी रहा है वह। कभी उसकी साँसों में रचने-बसने वाली केतकी आज नानी-दादी बन चुकी होगी।'

सिर झटक दिया उसने और पागलपन पर मुस्कुराया भी।

फिर बजी फोन की घंटी। वही टोन जो सिर्फ केतकी के लिए सेट था। वह कैसे भूल सकता है इस विशिष्ट गीत के धुन को जो केवल केतकी के लिए था अर्थात् है—हमने देखी है इन आँखों की महकती खुशबू। हाथ से छू के इसे रिश्तों का इल्जाम न दो।

मैंने काँपते हाथों से फोन उठाया। दिल धड़ककर सीने से बाहर आ जाना चाहता था। खुद को संयमित किया—'हेलो।'

सिर्फ दो शब्द कहने में मैं पसीने से भीग गया।

उधर की आवाज किसी की साँसों में लिपट गई लगती थी। निश्चय ही उधर केतकी ही थी। वह उसकी साँसों की पहचान कोलाहल के बीच भी कर सकता था।

'अब कुछ बोलो भी केतकी! खामोशी की चादर ओढ़कर जीवन के पचास बसंत काट दिए मैंने।'

'सिर्फ तुम अकेले नहीं। हम दोनों ने। तुम्हारा ईगो कि तुम घर जमाई बनकर साथ नहीं रह सकते थे और पिता जी की जिद कि वे हमारा ब्याह तभी करेंगे, जब तुम उनके कारोबार में हाथ बँटाओगे। ईगो और जिद इन दो पाटों के बीच में पिसकर रह गया शील।'

'....।'

'खामोश क्यों हो गए शील। आज हम दोनों बंधन मुक्त हो गए। न पिता जी की जिद है और न तुम्हारे ईगो की वजह। पिता जी के देहांत होते ही उनका कारोबार ट्रस्ट को सौंप कर देखो मैं आ गई तुम्हारे पास।'

'केतकी तुम....तुम कहाँ हो?' मुश्किल से बोल पाया वह।

'बिल्कुल तुम्हारे घर के पास.....पार्क में।'

'वहाँ क्या कर रही हो। आकर अपना घर सँभालो केतकी।'

और वह उद्धत हो दौड़ पड़ा उद्यान स्थल की ओर, मानो जन्म-जन्मांतर से किसी प्यासे पथिक को जलाशय अनायास मिल गया हो।

❖

अंधेरे में सूरज

एक छोटे राज्य के छोटे-से जिले में छोटा-सा गाँव। गाँव के एक छोर पर ताल वृक्षों से आच्छादित एक पोखर जिसके किनारे बैठे बचपन के दो मित्र बातचीत में तल्लीन थे।

'अरे यार, तुम्हारी तो चाँदी कट रही है। मैं दुबई में बेकार तुम्हारी चिंता किया करता था। तुम्हारे लिए जॉब की तलाश में रहता था।' उनमें से एक गाँव के एकमात्र रंगरोगन किए हुए पक्के मकान पर फिसलती-सी नजर डालकर चुप हो गया।

दूसरा भी चुप रहा। वह सिर्फ हाथ में लिए कीमती स्मार्ट फोन पर अंगुलियाँ फिराता रहा। कुछ देर तक वहाँ खामोशी की चादर बिछी रही।

कुछ देर चहलकदमी करने के बाद पहला दूसरे के नजदीक सट कर बैठ गया। हल्की आह भरी। खामोशी की चादर हौले से उसने हटाया—'वैसे मेरा हक नहीं बनता कि मैं यह सवाल करूँ लेकिन मैं उत्सुकता दबा नहीं पा रहा हूँ। कहीं तुम बुरा तो नहीं मानोगे?'

'तुम्हारी बात का बुरा मानूँगा? सवाल ही नहीं।'

'यार, तुम करते-धरते तो कुछ नहीं फिर भी ऐशोआराम के सारे साधन जुटा लिए। गाड़ी खरीद ली, पक्का मकान भी बनवा लिया। मुझे देखो, देश छोड़ा फिर भी कुछ कमा नहीं पाया।'

दूसरा हौले से मुस्कुराया। कहा कुछ नहीं। बस देखता रहा।

'दूसरों की मूर्खता का लाभ समझ लो।' उसके चेहरे पर कुटिल मुस्कान पुता आया।

पहले ने उसे घूरा। संशय से उसकी आंखों में थोड़ी सिकुड़न हो आई-'कहीं तुम..?'

आशय भाँपकर पहले ने शीघ्रता से कहा,—'नहीं-नहीं, ऐसा-वैसा मत समझना। मैं चोरी-चकारी में विश्वास नहीं रखता।'

'फिर?' उत्सुकता और गहरी हो आई थी।

'अरे यार, ये डाक्टर, वकील, इंजीनियर अपने फन में लाख माहिर हों लेकिन व्यवहार में इनकी अक्ल का पहिया चल नहीं पाता।'

'मतलब?'

'मतलब देख लो।' उसने फोन उठाया, एक नंबर मिलाया—'मैं बीओआई बैंक के हेड ऑफिस से बोल रहा हूँ। आप का एटीएम कार्ड ब्लॉक हो गया है। आप कार्ड नंबर और पिन कोड बताइए। जल्दी कीजिए। आज शाम पाँच बजे तक का समय है आप के पास।'

उसने मोबाइल का स्पीकर ऑन कर दिया। कुछ देर साँय-साँय की आवाज आती रही, फिर उधर से खरखराती आवाज में कहा गया-'कार्ड नंबर है....'

उसने पहले वाले को देखकर बाईं आँख दबाई। फोन से आवाज लगातार आ रही थी,—'सर, पिन कोड लिखा जाए....।'

'ठीक है आप के मोबाइल पर ओटीपी नंबर आएगा चार डिजिट का। वो भी लिखा दीजिए।'

'हाँ सर, आ गया। ओटीपी नंबर....है।'

इतना सुनते ही उसने फोन बंद कर लिया और सिम निकालकर मोबाइल में दूसरा सीम डाल दिया।

'बन गया काम।' उसने हँसते हुए पहले वाले से कहा और किसी को फोन से सारा ब्यौरा बताकर आदेश दिया कि रकम ट्रांसफर कर लो जल्दी।

पहले वाला आश्चर्यचकित हो बस देखता रह गया।

'तुम्हारी जिज्ञासा शांत हुई या....।'

'समझ गया सबकुछ लेकिन यह तो असंवैधानिक है। सरासर ठगी है।'

'ठगी नहीं मित्र, लोगों की मूर्खता से फायदा। पढ़े-लिखे लोग, इंजीनियर, वकील तक भी जब बैंको के लाख सावधान करने के बावजूद अपना कार्ड नंबर और पिन नंबर फोन पर शेयर कर देते हैं तो बताओ उनकी ऐसी नासमझी से फायदा उठानेवाला उठाएगा न। बोलो।'

पहले ने केवल लंबी साँस ली। कहा कुछ नहीं। दूसरे ही दिन दूसरे वाले को पुलिस, अनजान मुखबिर की सूचना पाकर, गिरफ्तार कर थाने ले आई ।

पहले वाले ने हाजत में बंद सिर झुकाए खड़े मित्र के करीब आकर धीरे से बोला,—'सजा काटकर दुबई आ जाना, मैं सारा प्रबंध कर दूँगा।'

V

'शिवधाम', पोद्दार हार्डवेयर स्टोर के पीछे
कतरास रोड, मटकुरिया, धनबाद-826001 (झारखंड)
मोबाइल : 9939315925 ई-मेल : kballabhroy@gmail.com

'साब' का मूड

— अरुण अर्णव खरे

मूड-एक ऐसा शब्द है जिससे हम सभी का वास्ता एक बार, दो बार नहीं अपितु अनेक बार पड़ा होगा और इसके अनुभव भी कभी सुखद, कभी दुखद तो कभी कष्टप्रद हुए होंगे। यदि आप अफसर हैं या रहे हैं तो यह बात कभी-न-कभी, किसी-न-किसी माध्यम से आपके कानों तक जरूर पहुँची होगी, जब आपके मातहतों ने या आपसे काम करवाने आए लोगों ने आपके कमरे (सॉरी कक्ष) के बाहर स्टूल पर उनींदे से बैठे उस शख्स से यह पूछा होगा कि 'साब का मूड कैसा है?' यह ऐसा वाक्यांश है जिससे व्यक्ति को अपने साहब होने के महत्व का पता चलता रहता है और 'साब' बने रहने के लिए ऊर्जा की सतत आपूर्ति होती रहती है।

ऑफिस के कर्मचारियों को 'साब' के मूड के बारे में जानकारी किसी से लेनी नहीं पड़ती, वे साहब के हाव-भाव से ही समझ जाते हैं कि आज 'साब' का मूड कैसा है। यदि 'साब' ने ऑफिस में प्रवेश करते समय चपरासी की नमस्ते का उत्तर दे दिया तो कर्मचारी स्वमेव समझ जाते हैं कि 'साब' अच्छे मूड में हैं और उनसे उलझी हुई फाइलों में आसानी से दस्तखत कराए जा सकते हैं। जिस दिन 'साब' तेजी से अपने कक्ष में प्रवेश करते ही महिला स्टेनो को डिक्टेशन के लिए बुला लेते हैं और कमरे के बाहर का लाल बल्ब जल उठता है तो सबको पता चल जाता है कि आज मेमसाब ने 'साब' का मूड ऑफ कर दिया है। इसकी पुष्टि होने में भी ज्यादा देर नहीं लगती जब एक-डेड़ घंटे की डिक्टेशन के बाद भी स्टेनो को कोई पत्र या ड्राफ्ट टाइप करते किसी ने नहीं देखा होता। इस दिन कर्मचारी 'अफसर की अगाड़ी और घोड़े की पिछाड़ी भली नहीं होती' कहावत को याद करते हुए 'साब' से सुरक्षित दूरी बनाकर रखने में अपना हित देखते हैं।

कर्मचारियों को 'साब' का मूड भाँपकर चलना नौकरी के पहले ही दिन सीनियर कर्मचारी सिखा देते हैं। उसे बताया जाता है यदि ऑफिस में अपनी अहमियत बना कर रखनी है तो 'बॉस इज आलवेज राइट' के अलिखित लेकिन प्रशासनिक हलकों में आई.एस.ओ. मापदंड सरीखे सर्टीफाइड फार्मूले का पालन जरूरी है। 'साब' यदि गुस्से में कभी गधा, बेवकूफ भी बोल दें तो 'यस सर' कहकर मान लेना चाहिए। जो इतनी सहनशक्ति का परिचय दे पाते हैं वे शीघ्र ही 'साब' की गुडबुक में शामिल हो जाते हैं और गोपनीय किसिम की फाइलों तक उनकी पहुँच होने लगती है। धीरे-धीरे 'साब' के गोपनीय कार्यों के राजदार भी हो जाते हैं।

कर्मचारियों को 'साब' के मूड के अनुसार काम करने की आदत डालनी पड़ती है। उनके पास 'आज काम का मूड नहीं है' कहने की सुविधा नहीं होती। यह सुविधा केवल 'साब' को प्राप्त होती है। वह जब मन हो, वक्त बेवक्त, सुबह-शाम, छुट्टी वाले दिन को भी कर्मचारी को फाइल लेकर अपने बंगले पर बुलाकर काम पर लगा सकता है। हर अफसर को काम करने वाले लोग पसंद होते हैं लेकिन जो काम करने का केवल दिखावा करते हैं, वे और भी ज्यादा पसंद होते हैं। हर कार्यालय में ऐसे एक-दो कामकाजी निखट्टू कर्मचारी होते हैं जो 'साब' का मूड रिफ्रेश रखने की तमाम भौतिक, रासायनिक और जीव विज्ञानी विधियों से परिचित होते हैं। ऐसे बेकायदे के लोग

अनेक मौकों पर बड़े कायदे के सिद्ध होते हैं इसलिए 'साब' के चहेते बन जाते हैं।

कभी-कभी पूरी सावधानी के बावजूद 'साब' का मूड पढ़ने में मौसम अथवा ज्योतिषी की भविष्यवाणी सरीखी गफलत भी हो जाती है। वैसे भी अफसर के मूड का कोई भरोसा नहीं होता। अफसर होने के नाते उसे छोटी-छोटी बात पर उखड़ने की छूट होती है। जब उसे लगने लगता है कि कर्मचारी उसकी शराफत का फायदा उठाने लगे हैं तो वह किसी को टारगेट बनाकर किसी पर भी उखड़ जाता है। उखड़ते समय उसे इतना ध्यान तो रहता ही है कि जिसपर वह उखड़ रहा है वह कहीं कर्मचारी-नेता तो नहीं है।

बाहरी तौर पर कर्मचारी-नेता और 'साब' की कभी पटरी नहीं बैठती लेकिन 'वन-टू-वन' होने का मौका मिलते ही नेता जी पालतू बिल्ली की तरह पेश आते हैं और 'साब' सर्वशक्तिमान दाता की तरह। वन-टू-वन मीटिंग समाप्त होने पर दोनों ही अपने-अपने कारणों से खुश नजर आते हैं। एक साब का मूड ठिकाने पर लाने का दावा करता है और दूसरा नेता जी का मूड ठिकाने लगाने का। किसने किसको ठगा, ये बाहर वाले समझ ही नहीं पाते, जबकि दरअसल ठगे वही जाते हैं।

V

डी-1/35 दानिश नगर
होशंगाबाद रोड, भोपाल-462026 (म.प्र.)
मोबाइल 9893007744 ई मेल : arunarnaw@gmail.com

रचनाकारों से अनुरोध

- कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप करवाकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- कृपया लेख, कहानी एक से अधिक और कविता आदि तीन से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। अधिकतम शब्द-सीमा 3000।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के अंत में अपना पूरा नाम, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियाँ (हाई रेज्योलेशन) भी भेज सकते हैं।
- यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली-भाँति जाँच लें।
- यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- रचनाएँ किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएँगी। अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाएँ यथासमय प्रकाशित की जाएँगी।
- आप अपने सुझाव या प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

दर्द ईंटों का

— पुष्पेश कुमार पुष्प

एक भट्ठे से दो व्यक्ति अपने अलग-अलग कामों के लिए एक समान ईंटों को खरीदकर ले गए।

एक व्यक्ति ने उन ईंटों से आम जनता के लिए एक मंदिर का निर्माण कार्य आरंभ करवाया तो दूसरे व्यक्ति ने भाइयों के आपसी झगड़ों को समाप्त कराने के उद्देश्य से एक आलीशान भवन के आँगन में बँटवारे की दीवार खड़ी करवाने का काम आरंभ करवाया।

जब मंदिर पूर्ण रूप से तैयार हो गया तो लोगों में प्रसन्नता की सीमा न रही। लोग उस मंदिर में श्रद्धा और भक्ति से पूजा-पाठ करने लगे। वहाँ के लोग मंदिर के निर्माण होने से परम शांति का अनुभव कर रहे थे। लोगों के बीच वह मंदिर आस्था का केंद्र बन गया था। लोग मंदिर में पूजा-पाठ

करने के साथ-साथ उन ईंटों को भी नमन करते थे।

इधर आलीशान भवन के आँगन में बँटवारे की दीवार भी पूर्ण रूप से तैयार हो गई। लेकिन बँटवारे की दीवार की ईंटों को काफी दु:ख सहना पड़ रहा था। लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे और काफी बुरा-भला कहते थे। जब भी कोई व्यक्ति उस आलीशान भवन में आता, तो आँगन के बीच खड़ी दीवार को नफरत की निगाहों से देखता। छोटे-छोटे बच्चों के लिए खेलने वाला बड़ा-सा आँगन अब काफी संकीर्ण हो गया था। बच्चे भी उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। इस प्रकार घर का पूरा माहौल घुटन भरा हो गया था।

समय बीतता गया, किंतु आज भी वह मंदिर और वह बँटवारे की दीवार मौजूद है। मंदिर की दीवार को आज भी लोग श्रद्धा से नमन करते हैं और मंदिर की दीवार की ईंटों पर लिखा है—'प्रेम, श्रद्धा और भक्ति'। वहीं आँगन के बीचों-बीच खड़ी बँटवारे की दीवार की ईंटों पर लिखा है—'नफरत और घृणा'।

V

डाल से बिछुड़े पत्ते

ठिठुराती सर्द हवाओं के बीच फुटपाथ पर बैठे रामनंदन और उनकी पत्नी गोमती ठंड से थर-थर काँप रहे थे। तन पर फटे-पुराने कपड़े और ऊपर से बर्फीली हवा मानो उनके बदन में सुई चुभो रही थी। दाने-दाने को तरसते रामानंदन ने कभी नहीं सोचा होगा कि उनका बेटा दिलीप पत्नी की बातों में आकर उन्हें यों ही फुटपाथ पर मरने के लिए छोड़ देगा। बुढ़ापे में भी यह दिन देखना पड़ेगा, उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। रामनंदन उदास स्वर में गोमती से कहते हैं—"अब हम क्या करेंगे? बुढ़ापे के सहारे ने भी हमें बेसहारा कर दिया। हमें भिखारी बनाकर छोड़ दिया।"

गोमती भरोसा दिलाते हुए कहती है,—"निराश क्यों होते हो दिलीप के बापू? दिलीप हमारा खून है। वह इतना निर्दयी नहीं हो सकता। वह बहू को समझाएगा और हमें वापस घर ले जाने के लिए अवश्य आएगा। हमें इस प्रकार भीख माँगने नहीं देगा।"

इतना सुनते ही रामनंदन का खून खौल जाता है और वह गुस्से में कहता है,—"उस नालायक में इतनी समझदारी होती, तो वह बहू के कहने पर हमें इस प्रकार फुटपाथ पर भीख माँगने के लिए नहीं छोड़ देता। शायद! हमने उसकी परवरिश सही तरीके से नहीं की। हम उसे वह संस्कार नहीं दे पाए जो देना चाहिए था। इकलौता होने के कारण उसके हर गलत काम को नजर-अंदाज करते रहे।"

रामनंदन की बातों को सुनकर गोमती निराश स्वर में कहती है,—"तुम ठीक कहते हो जी। किस प्रकार नौ महीने अपने गर्भ में रखा। भूखे-प्यासे रहकर उसे अपने पैरों पर खड़े होने लायक बनाया। यदि मैं जानती कि वह हमें बुढ़ापे में इस कदर दर-दर की ठोकर खाने के लिए छोड़ देगा, तो मैं उसे जन्म ही नहीं देती। इससे तो अच्छा था मैं बाँझ ही रहती।"

तभी जमीन पर पड़े सूखे पत्ते खड़खड़ाने लगते हैं। गोमती को लगता है कि दिलीप उन्हें घर ले जाने के लिए आ रहा है। गोमती रामनंदन से कहती है,—"देखो! हमारा दिलीप हमें घर ले जाने के लिए आ रहा है।" दोनों साँसें थामे उस ओर देखने लगते हैं। लेकिन यह उसका बेटा दिलीप नहीं मरियल-सा एक आवारा कुत्ता था और वे दोनों डाल से बिछुड़े पत्ते की तरह फड़फड़ाने लगे।

v

विनीता भवन, निकट बैंक ऑफ इंडिया
काजीचक, सवेरा सिनेमा चौक, बाढ़-803213 (बिहार)
मो. : 09135014901 ई-मेल : pushpeshkumar530@gmail.com

लघुकथा-लोक

पवन शर्मा

मि. जोसफ

"जो भले लोग होते हैं, वो हमारे आसपास ही रहते हैं, वो हमारा हमेशा भला ही चाहते हैं।" एक ने कहा।

"हाँ-हाँ, सही कह रहे हो।" सबने हाँ में सिर हिलाया।

"मि. जोसफ भी उन्हीं में से एक थे।" दूसरे ने कहा।

"हाँ सचमुच, बहुत भले थे।" उनमें से कुछ ने कहा।

"मुझे मालूम नहीं था कि वो इतनी जल्दी चले जाएँगे!"

"हाँ-हाँ....फिजीकली फिट भी थे बहुत मिस कर रही हूँ मैं।" कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े।

"जब हम परेशान रहते थे या घर की बहुत याद आती थी, तब वो हमारे सामने जरूर होते थे।"

"हाँ.... हाँ।"

"होली हो, दिवाली हो, क्रिसमस हो, बर्थ डे हो.... हमारे साथ ही सैलीब्रेट करते थे....नहीं भूल सकती उनको"

"हम भी।"

"जानते हो-एक बार तीन माह से घर नहीं गया.... मम्मी-पापा की बहुत याद आ रही थी। मैं इसी गार्डन की बेंच पर अकेला बैठा था। वो आए....मुझे उदास देख कर बोले- क्या हुआ? मैं कुछ नहीं बोल पाया मेरी आँखों में आँसू थे....उन्होंने पाँच सौ का नोट दिया और कहा-जा घर .... घूम-फिर कर आ जा, बहुत दिन से गया नहीं है।"

"सचमुच यार, बहुत हेल्पफुल नेचर था उनका।"

"मि. जोसफ ने ही हमें यहाँ आकर बैठने के लिए कहा था कि जब तुम लोग बहुत सैड फीलिंग करो तो सब एक गोल घेरे में बैठकर आपस में बात किया करो.... सारी सेडनेस दूर हो जाती है।"

"हाँ-हाँ, यही कहते थे।" सब एक साथ बोले।

"ये भी कहते थे कि एकसाथ मिलकर बैठने पर किसी के चेहरे पर मुस्कराती माँ नजर आएगी....तो किसी के चेहरे में पिता नजर आएँगे!"

"सचमुच, यही कहते थे मि. जोसफ!"

"भले आदमी थे।"

"आर.आई.पी. !...." कहने के बाद सबने एक साथ अपनी आँखें बंद कर लीं।

सबको लगा कि मि. जोसफ मुस्कराते हुए उनके सामने खड़े हैं।

v

विद्या भवन, सुकरी चर्च, जुन्नारदेव, जिला-छिंदवाड़ा (म.प्र.)
मोबाइल-9425837079/8319714936
E-mail : pawansharma7079@gmail.com

रक्तदान-महादान

— रेनू शर्मा

रिक्शा चलाते-चलाते सोमू गहन चिंता में था...

'कहाँ से करूँ मुनिया की फीस का इंतजाम...? दो-चार दिन तक फीस जमा नहीं हुई तो स्कूल से उसका नाम कट जाएगा। फिर मेरे और मुनिया की माँ के सपनों का क्या होगा? मुनिया भी तो पढ़-लिख कर कुछ बनना चाहती है। पर पढ़ाई का खर्च? पाई-पाई जोड़कर, सारे फालतू खर्चों पर लगाम लगाकर भी उसकी फीस का जुगाड़ नहीं हो पाता। हर बार यही समस्या आगे आ जाती है। इस बार तो कहीं से उधार भी नहीं मिल सका...।'

तभी एक जगह उसे कुछ लोग इकठ्ठा हुए दिखाई दिए। एक व्यक्ति मंच पर चढ़ा नेताओं की तरह कुछ भाषण दे रहा था। उसके पीछे एक बैनर लगा था, जिसे सोमू पढ़ नहीं सकता था। बाकी लोग आगे कुर्सियों पर बैठे थे। उसने सुना, वह व्यक्ति कह रहा था,—"भाइयों और बहनों, जैसा कि आपको बताया गया है कि रक्त का उत्पादन नहीं किया जा सकता, यानी इसका कोई विकल्प नहीं है, सिवाय इसके कि इसे व्यक्तियों से लिया जाए। इसीलिए रक्तदान को महादान कहा गया है। इसे देने से न जाने कितनी जिंदगियाँ बचाई जा सकती हैं। रक्तदान से न सिर्फ दूसरे की जिंदगी बचती है, बल्कि स्वयं का भी शरीर स्वस्थ रहता है, क्योंकि इससे खून पतला और साफ रहता है, जिससे दिल का दौरा पड़ने और ब्लड कैंसर जैसे भयानक रोग भी नहीं होते। शरीर में नया खून बनता है और सबसे बड़ी बात यह कि 24 से 72 घंटों के बीच शरीर में खून का वॉल्यूम पूरा बन जाता है, 21 दिन में शरीर उतना रक्त पूरा बना लेता है, परंतु खून दोबारा तीन महीने बाद ही दिया जा सकता है। 18 से 60 साल तक का कोई भी व्यक्ति रक्तदान कर सकता है। बहुत से जरूरतमंद लोग या बड़े-बड़े अस्पताल खून देने वालों को रूपये वगैरह भी देते हैं, पर हमें चाहिए कि...।"

'रुपया भी मिल सकता है...?' सुनते ही सोमू की आँखों में एक नई चमक आ गई, 'यानी अगर मैं अपना खून दूँ तो मुनिया की फीस का इंतजाम हो सकता है...। पर उसने तो कहा था तीन महीने में एक बार...। तो क्या हुआ, मुनिया की माँ को भी..., और अब तो भगवान की दया से अपना सोनू भी तो 18 से ऊपर का हो गया है...।'

सोमू के पैर तेजी से पैडल पर पड़ते हुए उसे किसी बड़े अस्पताल की तरफ ले जा रहे थे और दिमाग में बार-बार एक ही गूँज उठ रही थी, "रक्तदान महादान..., रक्तदान महादान"।

V

कूटनीति

"आइए मैडम, कैसी हैं आप? कैसे आना हुआ?" यूनियन-नेता छगनलाल ने गरमजोशी से स्वागत करते हुए कहा।

"ठीक हूँ..., बस थोड़ा यहाँ से अपनी बदली करवाने को लेकर परेशान हूँ। इसी सिलसिले में आपसे मिलने आई हूँ। शायद आप कोई मदद कर दें", सुनीता ने कहा, "आप तो जानते ही हैं कि मेरा घर फगवाड़ा में है और मैं यहाँ लुधियाना में नौकरी कर रही हूँ। रोज का आना-जाना बहुत

पड़ जाता है, और मजबूरी यह है कि फगवाड़ा छोड़ कर यहाँ लुधियाना में रह नहीं सकती। पूरा घर-परिवार वहीं बसा है। अब अकेली के लिए सबको तो परेशान नहीं कर सकती।"

"तो क्या चाहती हैं आप?" स्पष्ट जानते हुए भी छगनलाल उसी के मुँह से सुनना चाहता था।

"यही कि किसी भी तरह, हो सके तो मेरा तबादला फगवाड़ा या उसके आसपास की किसी ब्रांच में ही कहीं करवा दें, जहाँ से मैं अपनी नौकरी पर आसानी से आ-जा सकूँ। पहले पोस्टिंग नजदीक थी तो इतने साल निकल गए रोजाना आने जाने में, जैसे भी था। पर अब इतनी दूर...., करने वाले कर लेते हैं, पर मुझसे नहीं होती।"

"हूँ....," छगनलाल कुछ सोचते हुए बोले, "तुम्हारे तो नए साहब आए हैं अभी, उनसे क्यों नहीं अर्ज किया?"

"सुना है वह बड़े खुर्राट हैं, किसी की भी नहीं सुनते.., ईमानदार भी बहुत हैं नहीं तो कुछ..., तभी तो आई हूँ आपके पास...", सुनीता बोली।

"उन्हें पता है कि तुम फगवाड़ा से आती-जाती हो?.. या किसी ने बताया हो उन्हें?" छगनलाल ने पूछा।

"नहीं, ...न ही मैंने बताया है, क्या पता, पता चलते ही रोज का आना-जाना बंद ही करवा दें", सुनीता ने कहा।

"फिर तो तुम्हारा काम हो गया समझो", छगनलाल ने चुटकी मारते हुए कहा, "बस तुम्हें एक काम करना होगा।"

"क्या?" सुनीता के दिल की धड़कनें बढ़ गईं।

"अपने साहब के सामने ही किसी भी बात पर झगड़ा मोल ले कर उनके चपरासी को थप्पड़ मार देना बस....", छगनलाल कहने लगा। "मगर...", सुनीता ने चिंतित हो बीच में ही टोकना चाहा।

"कुछ नहीं होगा...", छगनलाल ने भी उसी तरह टोकते हुए अपनी बात जारी रखी, "चपरासी सुंदर अपना ही आदमी है। हम यूनियन की तरफ से विरोध करते हुए तुम्हारी बदली की माँग रखेंगे और तुम्हारी बदली के आदेश फगवाड़ा ही करवा देंगे। हो जाएगा...चिंता न करो....। बस..., तुम्हें जरा पार्टी फंड का ध्यान रखना होगा, ...और कुछ पार्टी-वार्टी, ... सुंदर के लिए, ...समझ गईं न...।"

"जरूर...., धन्यवाद", एक हल्की-सी मुस्कान के साथ सुनीता वहाँ से चली गयी।

V

19, सैनिक विहार, जंडली,
अंबाला शहर (हरियाणा)-134005
ई मेल : renu.bhardwaj0311@gmail.com

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' की छह कविताएँ

लक्ष्य की प्राप्ति

लक्ष्य दुर्लभ जरूर
पर असंभव नहीं होता है
अथक मेहनत के बिना
वह संभव भी नहीं होता है
ऊँची उड़ान के लिए तो
दौड़ना तेज पड़ता है
गिरकर कोशिश करने से ही
कोई शिखर पर चढ़ता है
कई संघर्षों से प्राप्त लक्ष्य
दूरगामी बहुत होता है
जो हमारे जीवन में
अमरत्व का बीज बोता है।

V

इर्द-गिर्द घूमता है

जन्म के समय प्राणी
सुप्त रहता है
धीरे-धीरे उसमें
विविध आकांक्षाओं का निर्माण होता है
देह, देश और काल
परिस्थितियाँ और भोग
तथा संपर्क ही संस्कारों को
पैदा करता है,
प्राणी इन्हीं में
अपना सुख ढूँढता है
और इसी में अपनी
इच्छाएँ दृढ़ कर
जिंदगी भर इन्हीं के
इर्द-गिर्द घूमता है।

V

तुम स्वयं ही

तुम स्वयं के मित्र भी
तो शत्रु भी हो
तुम स्वयं की राह भी
राहगीर भी हो
तुम स्वयं ही स्वयं की
तस्वीर भी हो
तुम स्वयं ही स्वयं की
तकदीर भी हो
तुम बनो निज मित्र
अपनी राह तुम खुद ही
बन स्वयं के मित्र अपनी
आत्मा को तुम जगाओ।

V

जीने की स्वतंत्रता

सुख के लिए
विषयों पर आश्रित
हो जाना
और येन-केन प्रकारेण
इच्छित विषयों को
ही पाना
परतंत्रता है
हमारे पास तो
श्रम के बल पर
जीवन जीने की स्वतंत्रता है।

V

आशा की मुस्कान

हर रोज की तरह
आज भी निकलूँगा
रोज की तरह आज भी
बहुत लोगों को सुनूँगा
न जाने कितनी परेशनी में
लोग होते हैं
अर्थ, स्वास्थ्य और व्यवस्था में
हर जगह शोर होते हैं

मेरी कोशिश है कि मैं
हर समस्या का समाधान लाऊँ
हर समस्या का समाधान पाऊँ
निराश, मुरझाए चेहरे पर
आशा की मुस्कान लाऊँ।

V

दूषित उद्देश्य

दूषित उद्देश्य
कभी शिखर तक नहीं पहुँचाता
कहीं कोई पहुँचता भी है
तो वह
जिंदगी में संतोष नहीं पाता
रावण और
हिरण्यकश्यपु का तप
बेकार हो गया
मेघनाद का
यश भी
दूषित हो गया था
वस्तुत: महत्व
परिणाम का नहीं
गुण का हुआ करता है।

V

सम्प्रति : शिक्षा मंत्री, भारत सरकार
27, सफदरजंग रोड, नई दिल्ली-110011

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण' के तीन नवगीत

नदिया बोली मुझसे इक दिन

नदिया बोली मुझसे इक दिन,
रुक मत पगले! चलता चल।
बाधाएँ आएँगी पथ में,
हिम्मत से जाएँगी टल।

चरैवेति संकल्प बने जब,
पाँवों में गति आ जाती है।
रखना याद सदा इसको तू,
प्रगति तब चलकर आती है।

पाँवों की गति ने लाँघे हैं,
बाधाओं के पर्वत हर पल।
नदिया बोली मुझसे इक दिन,
रुक मत पगले! चलता चल।

कर्म-मंत्र जो अपना लेगा,
वही सफलता को ब्याहेगा।
सारा जग तब उसका होगा,
गीत उसी के जग गाएगा।

कर्मशील बढ़ता नित आगे,
रोक न पाता कोई छल।
नदिया बोली मुझसे इक दिन,
रुक मत पगले! चलता चल।

लक्ष्य-सिंधु उसको ही मिलता,
चरैवेति जिसका जीवन हो।
कृष्ण वही बन पाता पगले,
तन-मन जिसका वृंदावन हो।

उसे नमन करती बाधाएँ,
जिसके मन में हो उनका हल।
नदिया बोली मुझसे इक दिन,
रुक मत पगले! चलता चल।

V

जीवन गायन हो जाए

मिटे अहम् का तमस,
जगे विनय का उजियारा!
जीवन पावन हो जाए!!

मन के वृंदावन में गूँजे,
कान्हा की मुरली के स्वर!
रोम-रोम आनंद से झूमे,
परम नाम हो जिह्वा पर!!

मिटे भाव मेरे-तेरे का,
अपना लगे जगत सारा!!
तन वृंदावन हो जाए!!

शब्द-ब्रह्म का दर्शन करके,
परम तत्त्व जग को दे दे!
दु:ख सभी के लेकर सबको,
सुख का अमृत हम दे दे!!

मिटे पीर सभी के मन की,
हर्ष मिले सबको प्यारा!
जग में सावन हो जाए!!

धरती का गुण क्षमा अनूठा,
जन-मन में अब भर दें हम!
रक्त-पिपासा मिटे मनुज की,
जग को जगमग कर दें हम!!

प्रीत जगे मानव के मन में,
हिंसा-कलुष मिटे सारा!
जीवन गायन हो जाए!!

V

आशा-दीप जले

आशा-दीप जले जो मन में,
दीपित यह जग हो जाए।

कर्म सभी को गति देता है,
विश्वास हृदय में भर देता।
दूर निराशा भागे पल में,
अमृत मन को कर देता।।

कर्म-मंत्र जो मिले जगत को,
अमृत यह जग हो जाए।

स्वार्थ खुशी देंगे जीवन में,
लेकिन मुक्ति नहीं पाओगे।
सुख औरों को दोगे जब भी,
स्वयं देवता बन जाओगे।।

परोपकार जो आए मन में,
उपकृत यह जग हो जाए।

याद वही आते हैं जग में,
जो औरों को सुख देते हैं।
सबको अमृत बाँट रहे जो,
विष सारा खुद ले लेते हैं।!

यही भावना हो जो सबकी,
पुलकित यह जग हो जाए।

V

पूर्व प्राचार्य
74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की-247667
मोबाइल : 9412070351

विवेक गौतम की तीन कविताएँ

तैरती यादें

यूँ ही नहीं
रंग उतरकर सूरज की गोद से
बिखर जाते हैं
मन की घाटी में।

नदी समय की
तैराती उनको
दसों दिशाओं में।

यूँ ही नहीं
डूबती आँखें
आँखों से होकर फिर रूहें
तैरा करतीं नील गगन में
बादल बनकर फाहों-सी।

कभी-कभी
बीते जमानों की खिड़कियाँ खोल
आँखों के पानी में
चुपके से यादें
तैरने लगती हैं नावों-सी।

कभी-कभी
दिन ढलते-ढलते
घाटी में पलते और चलते
जिस्म ओढ़ लेता हूँ मैं।

घर-बार उतर आता है
बाजार उतर आता है
फिर प्यार उतर आता है मुझमें।

कभी-कभी
ठंडी नाजुक हवा-फिजा में
नीले रंगों वाली तितली
सुंदर नयनों वाली मछली
मेरी नाव छुआ करती है
उनींदी आँखों वाली लड़की।

कभी-कभी
आसमान हो जाता हूँ मैं
कभी हरी घाटी का बिस्तर
डल झील का पानी होकर
जिस्मों में उतरा करता हूँ।

कभी-कभी
आवाज नदी की
पत्थर के दिल से टकराकर
गूँजा करती है सूने में
सपनों से लहराते जल में।

कभी-कभी
आलोक उतरता
सीने की हर एक जुंबिश में
काँधे पर चेहरे को टाँगे
जिस्म से होकर रंग पहनती
अक्सर जुंबिश।

नाव जिंदगी की
बस यूँ ही...
घाटी में जिंदा रहती है
अक्सर उसकी मुस्कानों से।

V

सृजन

मेरी कलम की
स्याही पोंछ देने से
मेरे विचार नहीं मरेंगे।

पत्थर को
तोड़ने पर
छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटकर भी
पत्थर
पत्थर ही रहता है।

खाल को
जब-जब खींचा जाएगा
बजाया जाएगा
आवाज आएगी
चीखों की
चाहे खाल जीवित हो या
मृत।

स्याही छीन लेने से
कागज फाड़ देने से
रुकते नहीं
सृजन

फैली हैं पर्वत-शृंखलाएँ
नहीं है कहीं नाम
नहीं है अमर होने की
छटपटाहट,
कालजयी होने का
मोह भी नहीं।

सदियों की तपस्या
आज भी बोलती है
अपनी भाषा

कलात्मकता
आज भी करती है स्पंदित,
झिंझोड़ती है मन
जगाती है
भावनाएँ-संभावनाएँ!

पंछियों के पंख
काट देने से
अदृश्य नहीं हो जाता
आँखों का असीम आकाश।

V

बंदर सपने नहीं देखते

अंतिम अवसर की प्रतीक्षा
मत करो तुम
क्योंकि
बंदर
कभी नहीं बन पाए
इंसान।

और जो बन पाए
प्रतिरूप
वे बंदर ही रहे....
मात्र मानव बंदर।

बंदर
कुछ भी कर सकते हैं
क्योंकि
सपने नहीं देखते
बंदर।

अगर देखते
तो....
कभी नहीं खेलते
बारूद से।

बारूद
सुदूर ग्रहों से
नहीं आया धरा पर
न ही कोई अवतार
लाया था बारूद
पृथ्वी की गोद में
भागीरथी परिश्रम से।

ध्रुवों की
पिघलती बर्फ से
उठ रही हैं आवाजें
कुछ करो
उन बंदरों का
जो खेल रहे हैं
बारूद से
लगाकर राक्षसी मुखौटे
अमानवीय चेहरे।

V

डी-61, प्रथम तल, ईस्ट विनोद नगर, दिल्ली-110091
मोबाइल : 9911170832

आभा चौधरी की तीन कविताएँ

फावड़ा चलाती स्त्री

ये जो सिर पर
बड़ा-सा ईंट का गट्टर लिए,
धोती की काँछ बाँधे,
दिहाड़ी करती स्त्री है न...
आँखों में इसकी
घुमड़ते, गरजते बादलों के मंजर है..।
ये तो बस व्यवस्थित समाज के
मंच की सहयोगी किरदार मात्र है...।
मंच की प्रस्तुति तो
नायक की है..।
वही सफल-असफल,
योग्य-अयोग्य कहलाया जाएगा..।

हाथ में काँच की चूड़ियाँ पहने,
सीमेंट गारे का मसाला बनाती,
फावड़ा चलाती स्त्री,
यकायक रुक जाती है,
भौचक-सी देखती रह जाती है...
कार चलाती, बनी-ठनी, संभ्रांत महिला को...।
अगले पल
ठेकेदार की हाँक पर,
फिर सँभाल लेती है
फावड़े की पकड़...
परिवार चलाने को,
माथे पर लगी
रक्तिम बिंदी का मान रखने को,
नाक में पहना
चमकता लाज का पुर्लंगा
बचाने को,
पैरों में बंधे संस्कृति के खडुओं
को बरकरार रखने को....।

चढ़ जाती है....ले तसला
अधूरी बनी बिल्डिंग की खतरनाक ऊँचाइयों पर...।
फिर भी नहीं,
सरकने देती है सिर से
मर्यादा की चादर को.... ।

ये जो चूल्हे में गीली लकड़ियों संग
खुद को जलाकर
ममता, प्रेम और करुणा का
प्रसाद पका रही है,
इसकी गिनती इंसानों में नहीं...।
इनके कलपुर्जे
प्रसव और
पारिवारिक दायित्व के लिए
अति उत्तम है...।
मर्द की भद्दी गाली को
प्रेम मान,
उसकी वासना की
आग बुझाना,
इन्हें बखूबी आता है...।

फिर भी ये श्रमसिद्धा,
सो जाती हैं चैन की नींद,
दुधमुँहे बच्चे को छाती से लगा,
सुनहरे कल के सपने संजोती,
मन ही मन बुदबुदाती
'हमरा बबुआ भी कल
सकूल जाएगा, डिरैस पहन कर, टाई लगा कर....
हमरा बबुआ भी
सकूल जाएगा कल...।'

V

दगाबाज

रोज मिल कर भी
नहीं मिलते हैं
वो चितचोर नयन दगा करते हैं।
बहुत सोचा कि न सोचूँ उन्हें,
मगर मेरी सोच की इस धृष्टता पर
महकती हवाएँ मुझे सजा देती हैं।
तुम ख्वाब थे तो हकीक़त क्यों लगते थे?
तुम अदृश्य थे...
तो सहारा क्यों दिखते थे?
अब सोचता है मन बावरा कि
तुम जो थे, वो नहीं थे तब भी,
और तुम जो हो, वो नहीं हो,
तब भी, तुम रहते हो प्राणवायु की तरह
मेरी हर उच्छ्वास और
नि:श्वास में,
तुम्हारा होना, न होना,
इतना जटिल प्रश्न नहीं है।
जटिल तो ये है कि जब नहीं थे
हुए किस लिए?
क्या औचित्य रहा होगा
नियति का, तुम्हें मेरे समक्ष परोसने का?
क्या नियति कभी बिना किसी कारण के भी
कुछ घटित करने का बोझ उठाती है?
या बावरा मन उस अप्रत्यक्ष कारण को
अनदेखा कर देता है...!
जो भी रहा और जो भी है,
मननीय है,
शायद इसी लिए
मेरे हर प्रश्न में अनुत्तरित उत्तर होता है
हर उत्तर में तुम्हारे होने का कारण होता है।
तुमसे अब न कहूँगी कि क्यों थे, और क्यों नहीं हो।
अब उस होने और न होने की
सुरभित पवन के झोंके को
जी भर कर जी लूँगी...उस नेह पियाले को पी लूँगी
इस देह पर लिखी हर इबारत को पढ़ लूँगी
तुम्हारे न होने में ही तुम्हारा होना ढूँढ लूँगी मैं।

V

अहसास

इतना जाना तो ये जाना
कि अब तक
कुछ भी न जाना...!
हे प्रभु तुम्हें जानने की कोशिश
में इतना आनंद है तो
तुम्हें जान कर खुशी से
मर न जाऊँ कहीं ...
मुझे पनपने दो अपनी शाखाओं में
कि पत्तों और बूटों पर तेरा नाम लिखूँ
जलने दो मुझे
ग्लानि की उफनती लपटों में,
खुद को फिर से रच सकूँ मैं
मुझे चलने दो अभी
श्रम के असाध्य मार्गों पर
कि कण कण में घुल जाऊँ मैं..!
घिसने दो मेरे पाँव
पथरीली पगडंडियों पर
कटने दो मेरी रातें
रेगिस्तानों का छोर ढूँढ़ने में
कि कुछ तो अहसास हो
हम भी जिन्दा जीव हैं
संसार के बाकी जीवों की तरह..!
जान कर जान पाऊँ
कि क्या क्या नहीं जाना
जीवन पाकर भी...!

V

प्रवक्ता, इतिहास
पी-126, सेक्टर-11, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.)
मोबाइल : 9650740990

हर्षवर्धन आर्य

शब्द-सौदागर

शब्द ले लो, शब्द
बाबूजी, शब्द ले लो
कवियों के, कहानीकारों के
व्यापारियों के, जमींदारों के
मजदूरों के, किसानों के
लैला-मजनू के अफसानों के
जनता के, नेता के,
खलनायक और अभिनेता के
शब्द ले लो।

शब्द हैं बाबू...
अफसरों के, सरकारों के
नक्कालों और मक्कारों के
स्वामियों के, मठाधीशों के
गुरुओं के और शिष्यों के
भाँति-भाँति के स्वाद वाले
खट्टे-मीठे-रसीले,
कुछ लच्छेदार, कुछ कसैले
सभी तरह के शब्द ले लो...

वह पुकारता जा रहा था
एक बड़ी-सी टोकरी सिर पर उठाए
एक रहस्यमयी मुस्कान होठों पर सजाए
कि, अचानक पूछ बैठा मैं...
कैसे शब्द हैं भाई
तुमने यह शब्द-संपदा...कहाँ से पाई
पहले थोड़ा रूक कर उसने
मुझे अपनी नजरों से तौला
फिर अपना शब्दों का टोकरा
सिर से उतारते हुए बोला—
बाबूजी यह शब्द-संपदा मैंने
गली-गली, गाँव-शहर घूम-घूम बटोरी है
सच कहता हूँ बाबू...
सच के कहने में क्या चोरी है।

फिर एक-एक पोटली खोल
शब्द दिखाने लगा
और अपना शब्द-जाल
मुझ पर फैलाने लगा
देखो बाबू...
कुछ शब्द नेताओं के बंगलों से बटोरे हैं
इनमें से कुछ सभ्यता के कोरे हैं
कुछ हँसी के पिटारे हैं,
कुछ शब्द सत्ता के गलियार से चुने हैं
भले ही असंवैधानिक हों पर
बड़े ही चुटीले हैं,
कुछ शब्द स्कूल-कॉलेजों की
दीवारों से उतारे हैं,
संस्कृति और शिक्षा-दीक्षा
इनमें भले ही लड़खड़ाती नजर आए
पर इन्हें प्रयोग करते छात्र लगते बड़े प्यारे हैं।

और, बाबूजी कुछ शब्द मेरे पिटारे में
ऐसे बचे हैं

जो रेडियो, टेलीविजन पर मीडिया ने
हिंदी और अंग्रेजी को तोड़-मरोड़ कर रचे हैं
अपनी भाषा की सेहत पर
दु:ख तो है बाबू
पर संतोष भी है
कि, इन अंग्रेजी-उपासकों के शब्दकोश में
कुछ तो हिंदी के शब्द भी सजे हैं

ले लो बाबू, ले लो...
इस पोटली के शब्द बड़े प्यारे हैं
इन शब्दों ने बहुतों के जीवन सँवारे हैं
देखो बाबू, यह शब्द बड़े लच्छेदार हैं
मीठे, चटपटे, मजेदार हैं
आज तक जिसने भी इन्हें आजमाया है
उसने अपनी नैया को पार पाया है
बड़े-बड़े नेता लोग इन्हीं लच्छेदार
शब्दों के भाषण जनता को पिलाते हैं
फिर पाँच साल तक
जनता की गाढ़ी कमाई पर मौज उड़ाते हैं...
सत्ता के गलियारों में अंतर्ध्यान हो जाते हैं
इन्हें आप भी बेझिझक
आजमा सकते हैं
अपने बरसों से अटके काम
चुटकियों में बना सकते हैं।

बाबू, मेरे पास कुछ आयातित शब्द
बड़े ही नमकीन हैं
कुछ नये मिजाज के तो, कुछ शब्द रंगीन हैं, देखो बाबू,
यह शब्द कुछ कटु-कसैले हैं
बिल्कुल नीम चढ़े करेले हैं
यों तो ये शब्द सीधे सच्चे हैं
पर सच्चे, कटु शब्द भला
किसे अच्छे लगते हैं
भले ही ये शब्द आईना दिखलाते हैं
पर, गलती के पुतले तो सच्चाई से तिलमिलाते हैं
और बाबू,
इस थैली में जो शब्द लाल-पीले हैं
वास्तव में लाजवाब रसीले हैं
कभी निश्छल मासूमों के बीच
जब इन शब्दों को लुटाओगे
तो बदले में कलियों की मुस्कान
और, फूलों की हँसी पाओगे
यह खट्टे-मीठे अनुभव के शब्द
सब को खूब सुहाएँगे
जीवन की संध्या बेला में
बहुत काम आएँगे।

जब आँगन में उगे
नींबू-इमली के झाड़ के पास
नाती-पोतों का मजमा लगाओगे
जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों की
चहकती-महकती कहानियाँ सुनाओगे
तब-तब बाबू,
भूले बिसरे
याद, हमें भी कर लेना
नए-पुराने शब्दों से तुम
उनकी झोली भर देना।

V

3724/1, कन्हैया नगर, त्रिनगर, दिल्ली-110035
फोन : 9968421236, 8700989095
ईमेल : aryaharshvardhan2@gmail.com

अंजलि हजगैबी बिहारी

उलझे से हम

मत पूछा कीजिए अब
हाल-चाल हमारा
सब दर्द-ए-दिल बयान करने
का लालच हो जाता है।
बड़ी फुर्सत के साथ रोने को बैठे जो आज
वो दो बूँद आँखों की दहलीज पर ही अटक गए
जो अचानक किचन से कुकर की सीटी सुनाई दी
दाल गल गई
अभी समय नहीं मिलेगा अपने आप के लिए
सब महामारी की चिंता से उबरे हैं
और बड़े जोश के साथ निकले हैं
और हम रोज की रेस में
फिर से उतरते ही थके हारे
घर लौटे हैं।
पथराई आँखों सी
कुछ उम्मीदें...
कोहनियों से गोदता हुआ
कलेजे को...
राख-सा मुँह
दूधमुँहे बच्चे की तरह
भीख माँग रहा
राहत की
किचन के बर्तन
टेबल के बिखरे सामान
बिस्तर पर अनसुलझे चद्दर-तकिए
वाशिंग मशीन में पड़े कपड़े
और घर की कचोटती हुई दीवारें
दो महीने के इस लॉकडाउन ने
जीवन की दिशा ही बदल डाली
सब बड़े खुश हैं
और हम बैठे हैं किचन में
अपनी दाल गलाने के लिए

V

सहायक संपादक, विश्व हिंदी सचिवालय
(भारत व मॉरीशस सरकार की द्विपक्षीय अंतरराष्ट्रीय संस्था)
मॉरीशस, मोबाइल : +23058187026
ई-मेल : publications@vishwahindi.com

अरविंद सिंह नेकित सिंह

मत्रिफ़जि (Matriphagy)

मंदबुद्धि मैं कहलाया गया
क्योंकि नस्ल शायद
अपने बाबा का था नहीं
फिर भी लीचड़, मैं चिपका रहा,
उसकी जाँघों से।

मंदबुद्धि मैं
मंदबुद्धि मैं कहलाया गया
जब साहब का मैं बना चेला
और शेर के पंजों बीच खेला।

मंदबुद्धि मैं
कहलाया गया
जब लकड़बग्घों को
अपने वफादार धारीदार लकड़बग्घों का
दाना-पानी बंद करके आपस में भिड़वाया।

हाँ मैं मंदबुद्धि हूँ
हूँ मैं मंदबुद्धि
मैं लूताशाव हूँ, मैं लूताशाव हूँ
सीमित पल है मेरे पास
नहीं तो मेरा अस्तित्व नहीं
मैं मंदबुद्धि हूँ।
मैं मंदबुद्धि हूँ!!!

नस्ल शायद
अपने बाबा का था नहीं
फिर भी लीचड़, मैं चिपका रहा,
उसकी जाँघों से।

साहब का पिल्ला बना,
शेर का चूहा बना
तो सीखा
बोटी फेंककर, लकड़बग्घा,
भाई-बंधुओं को आपस में भिड़ाना।

पर मैं करता क्या
आखिर था मैं
मंदबुद्धि लूताशाव
जिस के पास न विकल्प था
न समय
थी तो बस होड़ उत्तरजीविता की
मंदबुद्धि मैं

मंदबुद्धि मैं ?

❖

हिंदी शिक्षक
महात्मा गाँधी माध्यमिक पाठशाला, मॉरीशस

गुलशन सुखलाल

भगवान

भगवान
एक नहीं होता सभी का
किसी कारखाने में
एक ही साँचे में ढले
एक ही रंग-रूप-आकार के
नहीं होते
भगवान

अलग-अलग होते हैं

उसके बनने में
लगते हैं अपने व्यक्तिगत
विश्वास
मान्यताएँ
मूल्य
धारणाएँ
सोच
किताबें
दोस्त
गुरु
परवरिश और
कुछ पसीना भी

आखिरकार उतना ही अलग होता है
हर किसी का भगवान
जितना कि
होता है
हर किसी का डीएनए

कुछ मिलते-जुलते
दिखते जरूर हैं
एक-दूसरे से
कुछ समय तक
लेकिन बड़े होते हैं
पूरे होने लगते हैं
और तब
नैन-नक्श डील-डौल
अलग हो ही जाते हैं

हर किसी का बनने लगता है
अपना अलग परम
और उसके साथ ही
बन ही जाता है
एक रास्ता
उसकी पहचान का।
वह भी अलग

साँचे में ढला होता
तो खराबी दिख जाती किसी में
यह डिफेक्टिव भगवान है!
बोल देते
निकाल देते मार्केट से

लेकिन साँचा नहीं है
तो डिफेक्ट नहीं है
आखिर भगवान है
अच्छा ही होगा

तो चले चलो
बनाते चलो
अपना-अपना भगवान

जब तक चेहरे एक जैसे दिखें
साथ में
जब अपने भगवान का
डीएनए अलग दिखने लगे
तो सवाल नहीं
तो जिद नहीं साथ चलने की
दूसरे वाले जैसा बनेगा नहीं
अपना वाला रूप भी
छूट जाएगा
पहुँचना तो अलग ही है

मोक्ष शायद
एक ही भगवान पाने को नहीं
बल्कि अपने अलग भगवान
का अलग रूप
पहचानने
बनाने को कहते हैं।

भगवान में भी फर्क
डीएनए का होता है।

❖

वरिष्ठ प्राध्यापक
महात्मा गाँधी संस्थान, मॉरीशस, मोबाइल : +23052504112

ऐतिहासिक गाथाओं का साक्षी माउंट आबू

— डॉ. विभा खरे

माउंट आबू का इतिहास विविधता लिए है। कभी यह राजस्थान के चौहान राजवंश का हिस्सा था और वहाँ के राजपूत नरेशों का गर्मियों का स्वास्थ्यवर्धक पर्वतीय स्थल था। बाद में इसे सिरोही के महाराजा ने पट्टे पर ब्रिटिश सरकार के रेजिडेंट का मुख्यालय बना लिया था। तब राजस्थान को ही राजपूताना कहा जाता था। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान यहाँ अंग्रेज मैदानों की गर्मी और गर्द गुब्बार से बचने के लिए सैरसपाटे के लिए आया करते थे। यह सैनिकों के लिए सैनिटोरियम भी था। यहाँ की छोटी-छोटी झोपड़ियाँ और कुटियाएँ उस जमाने की कहानी को आज भी दर्शाती हैं।

ऋषियों-मुनियों का आवास-स्थल

प्राचीनकाल में माउंट आबू बहुत से ऋषियों-मुनियों का आवास स्थल था। पौराणिक कथाओं के अनुसार 33 करोड़ हिंदू देवी-देवता इस पावन पर्वत पर आया करते थे। यह वही स्थल है, जहाँ महान ऋषि वशिष्ठ रहा करते थे और जिन्होंने पृथ्वी की राक्षसों से रक्षा के लिए 4 अग्निकुलों की उत्पत्ति के लिए यज्ञ किया। ये यज्ञ प्राकृतिक चश्मे के पास किए गए, जोकि गाय के आकार की चट्टान से फूटकर निकलता है।

पौराणिक कथा के अनुसार

एक अन्य पौराणिक कथा के अनुसार वशिष्ठ मुनि की गाय नंदिनी एक गहरे गड्ढे में फँस गई थी। मुनि ने भगवान शिव से सहायता की गुहार की। शिवजी ने गड्ढे को पानी से भरने के लिए दैवीय नदी सरस्वती को भेजा, ताकि गड्ढे के भरने पर नंदिनी गाय ऊपर आ जाए। तब वशिष्ठ ने यह सुनिश्चित करने का फैसला किया कि भविष्य में ऐसी कोई दुर्घटना न हो, उन्होंने पर्वतराज हिमालय के सबसे छोटे पुत्र से गड्ढे को स्थायी रूप से भर देने के लिए कहा। उन्होंने भी यह काम सर्वशक्तिशाली सर्प अर्बुद की सहायता से संपन्न किया। यह स्थल बाद में अर्बुद पर्वत कहलाने लगा। बाद में इसी ने अबू पर्वत का वर्तमान स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस स्थल के प्रति जैन समुदाय के लोग भी श्रद्धा और आस्था रखते हैं।

क्या देखें?

गुरुशिखर : राजस्थान के एकमात्र हिल स्टेशन की सबसे ऊँची चोटी है। यह समुद्र-स्तर से लगभग 1722 मीटर ऊपर और शहर से 15 किलोमीटर दूर है। इस चोटी पर चढ़ने का और वहाँ से नजारे देखने का अपना लुत्फ है।

गौमुख मंदिर : माउंट आबू के नीचे आबू रोड की तरफ संगमरमर की गाय के मुँह से एक छोटी नदी बाहर आती है और इस मंदिर का नाम इसी पर पड़ा है। वहाँ शिव के वाहन नंदी बैल की संगमरमर की एक प्रतिमा भी है। कहा जाता है कि यहाँ का अग्निकुंड भी वशिष्ठ मुनि ने बनाया था। इसी से 4 राजपूत वंशों का जन्म हुआ था। वशिष्ठ की मूर्ति के एक तरफ राम तो दूसरी तरफ कृष्ण की

प्रतिमा है। मंदिर तक पहुँचने के लिए आपको घाटी में 750 सीढ़ियाँ नीचे उतरनी पड़ती हैं।

दिलवाड़ा जैन मंदिर : दिलवाड़ा मंदिर परिसर में उत्कृष्ट नक्काशी वाले संगमरमर के 2 विशाल मंदिर भी शामिल हैं। यह मंदिर जैनियों के पहले तीर्थंकर (जैनी प्रचारक) आदिनाथ को समर्पित है। मध्य में स्थित मंदिर में आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित है।

अधर देवी मंदिर : शहर से लगभग 3 किलोमीटर उत्तर में अधर देवी का मंदिर है, जोकि विशाल चट्टान को काटकर बनाया गया है। इसमें 365 सीढ़ियाँ चढ़ने पर ही प्रवेश हो सकता है। मंदिर के सबसे छोटे निचले द्वार से जाने के लिए आपको झुककर गुजरना पड़ता है। यह पर्यटकों का प्रिय स्थल है।

संग्रहालय और कला वीथिका : यह संग्रहालय 2 हिस्सों में बँटा हुआ है। पहले भाग में स्थानीय आदिवासियों

श्री अधर देवी मंदिर-गुरु शिखर (माउण्ट आबू)

दिलवाड़ा जैन मंदिर (माउंट आबू)

की झोपड़ी का चित्र है। इसमें उनकी सामान्य जीवन शैली दर्शाई गई है। इसमें उनके हथियार, वाद्ययंत्र, महिलाओं के जेवर, कान के झुमके और परिधान वगैरह शामिल हैं।

दूसरे भाग में राग-रागिनियों पर आधारित कई लघु चित्र, सिरोही की कई जैन मूर्तियाँ, दरम्याने आकार की ढालें और लकड़ी पर की गई नक्काशी की कुछ वस्तुएँ रखी गई हैं।

इस संग्रहालय की आकर्षक वस्तुओं में छठी शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक की देवदासियों और नर्तकियों की नक्काशी की हुई उम्दा मूर्तियाँ हैं।

सनसेट प्वाइंट : माउंट आबू के पर्यटन कार्यालय से 1½ किलोमीटर दूर सनसेट प्वाइंट है, जोकि बहुत लोकप्रिय है। यहाँ सूर्यास्त के दृश्य को देखने के लिए हर शाम भारी संख्या में लोग पहुँचते हैं। यहाँ आप घोड़े से भी जा सकते हैं। यहाँ के रेस्तराँ और होटलों में लोगों की भीड़ रहती है।

हनीमून प्वाइंट : गणेश रोड से 2½ किलो दूर उत्तर-पश्चिम में हनीमून प्वाइंट है, जिसे अंद्रा प्वाइंट भी कहते हैं। यह प्वाइंट हरी-भरी घाटियों और मैदानों का मोहक दृश्य उपस्थित करता है। शाम के झुटपुट के लिए आपको नक्की झील के पास से जाना पड़ता है।

नक्की झील (माउंट आबू)

इसके अलावा कई ऐसे प्वाइंट हैं, जहाँ से आप इस सारे क्षेत्र की खूबसूरती का आनंद ले सकते हैं।

रघुनाथ मंदिर : नक्की झील के पास रघुनाथ जी का मंदिर है। इसमें रघुनाथ जी की खूबसूरत प्रतिमा है। यह 14वीं शताब्दी में जानेमाने प्रचारक श्री रामानंद द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी।

बाग-बगीचे तथा पार्क : इस पहाड़ी की स्वर्गिक भूमि में जगह-जगह खूबसूरत बाग-बगीचे बनाए गए हैं। इनमें अशोक वाटिका, गाँधी पार्क, म्यूनिसिपल पार्क, शैतान सिंह पार्क और टैरस गार्डन प्रमुख माने जाते हैं।

ब्रह्म कुमार शांति पार्क नाम का एक अन्य उद्यान बहुत ही शांत और खूबसूरत है। इसके प्राकृतिक वातावरण में शांति और मनोरंजन दोनों का एक साथ आनंद लिया जा सकता है।

शांति पार्क अरावली पर्वत की 2 विख्यात चोटियों के बीच बना हुआ है। यह पार्क माउंट आबू में ब्रह्म कुमारी मुख्यालय से 8 किलोमीटर दूर प्राकृतिक सौंदर्य का नखलिस्तान है।

कैसे जाएँ?

हवाई मार्ग से : उदयपुर हवाई अड्डा इसके सबसे नजदीक है। यह माउंट आबू से 185 किलोमीटर दूर है। यहाँ से पर्यटक सड़क मार्ग से माउंट आबू तक जा सकते हैं।

सड़क मार्ग से : माउंट आबू सड़क मार्ग से जुड़ा हुआ है। ये नेशनल हाइवे नंबर 8 और 14 के नजदीक है। एक छोटी सड़क इस शहर को नेशनल हाइवे नंबर 8 से जोड़ती है। सड़कों की अच्छी स्थिति होने के कारण टैक्सी से भी वहाँ तक जा सकते हैं।

रेल मार्ग से : आबू रोड पर बने रेलवे स्टेशन से माउंट आबू तक आने तक 2 घंटे का समय लगता है। रेल मार्ग से इसका संपर्क देशभर से है। पश्चिम और उत्तर रेलवे की लंबी दूरी वाली महत्वपूर्ण गाड़ियाँ यहाँ अवश्य ठहरती हैं।

क्या खरीदें?

यहाँ भी राजस्थान के अन्य स्थलों की तरह हस्तकला, राजस्थानी खिलौने, सफेद धातु, लकड़ी तथा पीतल की वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं।

कोटा साड़ियाँ, सांगानेरी प्रिंट, लाख की चूड़ियाँ भी खरीदी जा सकती हैं।

सरकारी आवास-सुविधा

सर्किट हाउस, सरकारी काटेज, बीकानेर पैलेस

कंडक्टिड टुअर्स

माउंट आबू एवं निकटवर्ती दर्शनीय स्थलों की सैर हेतु राजस्थान पर्यटन विकास निगम कंडक्टिड टुअर्स की व्यवस्था करता है। यहाँ प्रतिदिन 2 टुअर आयोजित होते हैं, जिनमें पहला टुअर प्रातः 8 बजे से दोपहर साढ़े 10 बजे तक तथा दूसरा डेढ़ बजे से सायं 7 बजे तक संचालित होता है। यह टुअर अचलगढ़, दिलवाड़ा मंदिर समूह, गुरु शिखर, नक्की झील, सनसेट प्वाइंट आदि दर्शनीय स्थलों की सैर कराता है।

V

जी-9, सूर्यपुरम्, नंदनपुरा, झाँसी-284003
मोबाइल : 9415055655,
ई-मेल : vibhakhare12345@gmail.com

स्वास्थ्य एवं सौंदर्य का रहस्य

— वरुण आर्य

सूर्य नमस्कार : एक समग्र स्वास्थ्य की पद्धति

सूर्य नमस्कार को समग्र स्वास्थ्य की पद्धति माना गया है। सूर्य नमस्कार में बारह चरण (स्टैप) होते हैं। यह बारह चरण सात योगासनों के समूह से मिलकर बने हैं। सूर्य नमस्कार में प्रत्येक चरण के साथ मंत्र भी स्मरण किए जाते हैं। ये कुल बारह मंत्र होते हैं।

सात आसन प्राणायाम

1. नमस्कार आसन
2. हस्तोतानासन
3. पादहस्तासन
4. अश्वसंचालनासन
5. पर्वतासन
6. अष्टांग आसन
7. भुजंगासन

बारह मंत्र

1. ॐ मित्राय नमः।
2. ॐ रवये नमः।
3. ॐ सूर्याय नमः।
4. ॐ भानवे नमः।
5. ॐ खगाय नमः।
6. ॐ पूषणे नमः।
7. ॐ हिरण्यगर्भाय नमः।
8. ॐ मरिचये नमः।
9. ॐ आदित्याय नमः।
10. ॐ सवित्राये नमः।
11. ॐ अर्काय नमः।
12. ॐ भास्कराय नमः।

आजकल की जीवन-शैली और व्यस्त दिनचर्या ने लोगों के जीवन को बीमारियों का घर बना दिया है। जो बीमारियाँ पचास वर्ष के उपरांत देखने-सुनने को मिलती थीं आज वही चालीस वर्ष की आयु में देखने को मिलती हैं। आज का युवा वर्ग अपने जीवन के साथ हो रहे खिलवाड़ को समझ भी नहीं पा रहा है, क्योंकि वह अपनी नौकरी में इतना व्यस्त है कि शरीर दिन-प्रतिदिन बीमारियों का घर बनता जा रहा है और वह शरीर से अनजान है। अनजान हो भी क्यों न, क्योंकि आजकल की नौकरियों का समय ही इस प्रकार है, जब सोने का समय हो, तब कार्य करो और जब कार्य करने का समय हो, तब सोया करो और जब कार्य करने का समय हो, तब सोया जाए तो शरीर तो अपने आप ही खराब होगा, परंतु युवा वर्ग करे भी क्या? आजीविका के लिए कार्य तो करना ही पड़ेगा तो ऐसे समय में हम अपने आप को स्वस्थ कैसे रखें। मैं इन सब बातों को देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आजकल की व्यस्त जीवन-शैली में अगर हम मात्र 15 पंद्रह मिनट का समय सूर्य नमस्कार के लिये निकालें तो यह मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि हम असाध्य रोगों से तो बचेंगे ही साथ ही हमें अपने कार्यों को मन लगाकर करने की ऊर्जा भी मिलेगी? सूर्य नमस्कार संपूर्ण शरीर के लिये एक उत्तम यौगिक अभ्यास है। सूर्य नमस्कार में शरीर के सभी अंगों का व्यायाम होता है तथा संपूर्ण शरीर को आरोग्य शक्ति एवं ऊर्जा की प्राप्ति होती है। सूर्य नमस्कार से शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग में क्रियाशीलता आती है और शरीर की समस्त आंतरिक ग्रंथियों के अंतःश्राव (हार्मोन्स) की प्रक्रिया सुचारू रूप से कार्य करती है। क्योंकि पिछले डेढ़ वर्ष से मैं प्रतिदिन दौ से तीन सौ सूर्य नमस्कार प्रतिदिन कर रहा हूँ और मैंने डेढ़ वर्ष में लगभग 109900 सूर्य नमस्कार किए और अपने शरीर के अंदर एक बड़ा बदलाव पाया।

सूर्य नमस्कार करने की विधि

प्रथम विधि

सर्वप्रथम सीधे खड़े होंगे शरीर तनाव मुक्त रहेगा। अब दोनों हाथों से नमस्ते मुद्रा बनाते हुए श्वास अंदर भरिये और प्राणायाम कीजिए मन में ओऽम् मित्राय नमः मंत्र स्मरण कीजिए।

द्वितीय विधि

श्वास अंदर भरते हुए सामने से दोनों हाथों को लाते हुए पीछे की ओर ले जाइए। कमर भी यथा सामर्थ्य पीछे की ओर झुकाइए, दृष्टि आकाश की ओर रहेगी। ओऽम् रवये नमः मंत्र स्मरण कीजिए। हस्तोतानासन बनाइये।

तृतीय विधि

श्वास बाहर निकालकर दोनों हाथों को सामने झुकाते हुए पैरों के पास भूमि पर लगाइए। यह स्थिति हस्तपादासन कहलाती है। कोशिश करें कि दोनों हथेलियाँ पैरों के पीछे लगा सकें। मन में ओऽम् सूर्याय नमः मंत्र स्मरण कीजिए।

चतुर्थ विधि

श्वास अंदर भरते हुए दाएँ पैर को पीछे ले जाइए। ध्यान रहे पीछे जो भी पैर रहे, उसका घुटना हमेशा जमीन पर स्पर्श रहेगा। दोनों हथेलियाँ बाएँ पैर के दोनों ओर जमीन पर स्पर्श रहेंगी। दृष्टि ऊपर की ओर, इस स्थिति को अश्व संचालनासन कहते हैं। ओऽम् मानवे नमः मंत्र का स्मरण कीजिए।

सूर्य नमस्कार की चतुर्थ विधि में प्रारंभ में जो पैर पीछे जाएगा नौंवीं विधि में वही पैर आगे आएगा। इसके बाद जब सूर्य नमस्कार दुबारा करते हैं तो चौथी विधि में पहले बायाँ पैर पीछे जाएगा और नौंवीं विधि में बायाँ पैर ही आगे आएगा। इस तरह से हमें दोनों पैरों को बराबर चलाना है। ताकि दोनों पैरों की मांसपेशियों पर बराबर खिंचाव हो।

पाँचवीं विधि

श्वास बाहर निकालते हुए बाएँ पैर को भी पीछे ले जाएँ और गर्दन और सिर दोनों हाथों के बीच में रहेंगे नितंब (हिप्स्) ऊपर की ओर करते हुए पर्वत की आकृति बनाएँ। इस स्थिति को पर्वतासन कहते हैं। ओऽम् खगाय नमः मंत्र का स्मरण करेंगे। जिन लोगों को सर्वाइकल हो वो गर्दन को दोनों हाथों के बीच में रखेंगे, दृष्टि सामने होगी और जिन्हें सर्वाइकल न हो तो नाभि की ओर दृष्टि रखेंगे।

छठी विधि

इस विधि में श्वास सामान्य रहेगा। हाथों एवं पैरों को जमीन पर स्थिर रखते हुए वक्षस्थल (छाती) और दोनों घुटनों को जमीन पर स्पर्श कराइए। इस प्रकार दोनों हाथ, दोनों पैर दोनों घुटने वक्षस्थल, एवं ठोड़ी (चिन) भूमि पर स्पर्श रहेगी इस स्थिति को अष्टांग आसन तथा अष्टांग नमस्कार भी कहते हैं। क्योंकि इस आसन में शरीर के अंग भूमि का स्पर्श करते हैं। ओऽम् पूषणे नमः मंत्र का स्मरण करेंगे।

सातवीं विधि

श्वास अंदर भरते हुए वक्षस्थल और सिर को ऊपर की ओर उठाते हुए दृष्टि को आकाश की ओर कीजिए। नाभि से पैरों तक का भाग जमीन पर टिका हुआ रहेगा। इस स्थिति को भुजंगासन कहते हैं। ओऽम् हिरण्यगर्भाय नमः मंत्र का स्मरण कीजिए।

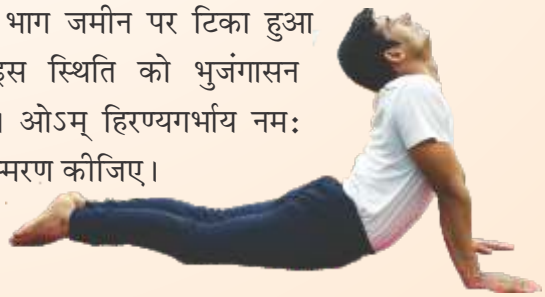

आठवीं विधि

इस विधि में पूर्ववत् श्वास बाहर निकालते हुए पर्वतासन की स्थिति में ओऽम् मरिचये नमः मंत्र का स्मरण कीजिए।

नवमी विधि

इस विधि में श्वास भरते हुए जो पैर चौथी विधि में पीछे लेकर गए थे वही दायाँ पैर आगे की ओर लाएँ और अश्वसंचालन आसन की स्थिति बनाइए। ओऽम् आदित्याय नमः मंत्र का स्मरण कीजिए।

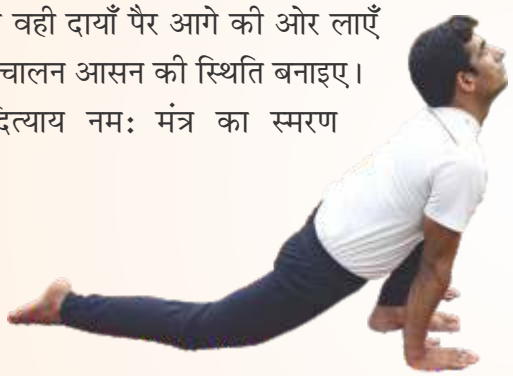

दशमी विधि

श्वास निकालते हुए तीसरी जो विधि है, पादहस्तासन उसमें आएँगे और ओऽम् सावित्राये नमः मंत्र का स्मरण करेंगे।

ग्यारहवीं विधि

फिर से श्वास भरते हुए सूर्य नमस्कार की दूसरी विधि हस्तोतानासन में आएँ और ओऽम् अर्काय नमः मंत्र का स्मरण करेंगे।

बारहवीं विधि

अब कमर को सीधा करते हुए श्वास बाहर निकाल दीजिए। दोनों हाथों को प्रथम विधि की तरह प्रणामासन में ले आइए। ओऽम् भास्कराय नमः मंत्र का स्मरण कीजिए।

विशेष लाभ

सूर्य नमस्कार अपने आप में ही पूर्ण व्यायाम है। यदि हम नियमित रूप से सूर्य नमस्कार का अभ्यास करें और साथ ही भोजन को नियमित रखें तो हम कुछ ही समय बाद अपने शरीर में नयापन पाएँगे।

1. सूर्य नमस्कार चर्म रोगों को दूर कर चेहरे पर चमक (ग्लो) लाता है। जिससे आप लंबे समय तक युवा बने रहेंगे।
2. सूर्य नमस्कार नजला, जुकाम, खाँसी, जोड़ों का दर्द, मधुमेह, मोटापा, एसिडिटी और कब्ज आदि रोगों में रामबाण का कार्य करता है।
3. सूर्य नमस्कार के अभ्यास से हाथ-पैर, भुजा, जंघा, कंधों आदि सभी अंगों की मांसपेशियाँ पुष्ट होती हैं।
4. सूर्य नमस्कार, पेट, आँत, आमाशय, अग्नाशय, हृदय और फेफड़ों को स्वस्थ करता है।
5. सूर्य नमस्कार हमें दीर्घायु बनाकर मन की व्यग्रता को शांत करता है। योग और आयुर्वेद को एक-दूसरे का पूरक माना जाता है, क्योंकि शरीर को बिना किसी हानि के स्वस्थ रखने के लिए दोनों ही पद्धतियाँ अमूल्य हैं।

❖

युवा योग शिक्षक के रूप में ख्याति प्राप्त।
मोबाइल : 9718788006

फिल्मी गानों में हिंदी साहित्यकारों का अवदान

— राजेंद्र बोड़ा

साहित्य की दुनिया के लोग फिल्मी दुनिया को बे-गैरत मानते रहे हैं और फिल्मों के लिए लिखना अपनी हेठी समझते रहे हैं। वैसे भी साहित्य जगत में 'लोकप्रिय साहित्य बनाम सड़क छाप साहित्य' की बहस बहुत पुरानी है और क्योंकि सिनेमा सबसे अधिक लोकप्रिय रहा है, इसलिए साहित्य के लोग इसे 'सड़क छाप साहित्य' की श्रेणी में ही मानते रहे हैं और अपनी श्रेष्ठता का आडंबर बनाए रखते रहे हैं। कुछ खास अपवादों को छोड़ दें तो साहित्य की दुनिया के लोग हिंदुस्तानी फिल्मों के दर्शकों को भी ऐसा ही नासमझ और साहित्यिक दृष्टि से हेय समझते रहे हैं। मगर हम जानते हैं कि भले ही साहित्य जगत ने सिनेमा से परहेज किया है, मगर सिनेमा ने किसी से कभी कोई परहेज नहीं किया। सिनेकार को अपनी बात कहने के लिए किसी भी साहित्यकार के योगदान की जरूरत महसूस हुई तो उसने उन्हें आगे बढ़कर बुलाया और अपनाया।

वर्ष 1931 में सवाक् फिल्मों के पदार्पण के साथ ही हिंदुस्तानी सिनेमा में गानों का चलन भी शुरू हो गया। पहली सवाक् फिल्म 'आलम आरा' की याद के साथ उसके दो गानों—निसार का गाया 'दे दे खुदा के नाम पे' और जुबैदा का गाया 'बदला दिल...' की याद भी जुड़ी है। वास्तव में सवाक् फिल्मों के शुरुआती दौर में गानों की भरमार रहती थी। शुरुआती दौर की फिल्मों की भाषा उर्दू ही होती थी। इसलिए तब की फिल्मों में उर्दू के रचनाकार अधिक पाए जाते हैं। इसका कारण फिल्मों के शुरुआती दौर पर पारसी रंगमंच का प्रभाव भी रहा जो उर्दू के रंग में ही रंगा था। इसीलिए हम पाते हैं कि उर्दू अदीबों का हिंदुस्तानी सिनेमा को हिंदी के साहित्यकारों से अधिक अवदान रहा है, खासकर गीत-संगीत को।

हिंदी साहित्य जगत ने शुरू से ही फिल्मों से दूरी बनाए रखी, लेकिन एक महत्वपूर्ण नाम अमृतलाल नागर का है जिन्होंने करीब सात वर्ष, 1940 से 1947 तक, फिल्मों में अपनी लेखनी आजमाई और बाद में फिल्मी दुनिया को छोड़कर पूरी तरह साहित्यिक जगत के हो लिए। बंबई, कोल्हापुर और मद्रास में उन्होंने फिल्मों के लिए पटकथाएँ और संवाद लिखे। वे हिंदुस्तान में फिल्मों की डबिंग के प्रणेताओं में से थे। उन्होंने रूसी फिल्में 'नसीरूद्दीन इन बुखारा' और 'ज़ोया' तथा एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी की तमिल फिल्म 'मीरा' को हिंदी में डब किया था।

1941 में आई फिल्म 'संगम' में अमृतलाल नागर के लिखे 13 गीत थे।

विश्वेश्वर शर्मा

फिल्म के गुणी संगीतकार थे दादा चाँदेकर। इसी फिल्म से हम हिंदी साहित्यिक जगत के एक बड़े नाम जयशंकर प्रसाद का भी लिखा एक बड़ा ही सुंदर गीत 'अरे कहीं देखा है तुम्हें' मिलता है जिसे मीनाक्षी ने गाया था।

अकादमिक और बौद्धिक ऊँचाइयों वाले कुमार साहनी जैसे सिनेकारों की फिल्मों में गानों की कोई जगह नहीं होती। यों भी कह सकते हैं कि उनके वहाँ होने की कोई वजह भी नहीं होती। लेकिन साहनी को अपनी फिल्म 'तरंग' (1984) के लिए एक गीत की जरूरत हुई तो उन्होंने गैर फिल्मी और साहित्य जगत के रघुवीर सहाय की रचना का उपयोग किया : 'बरसे घर सारी रात संग सो जा'। प्रतिष्ठित पत्रिका 'दिनमान' के संपादक रहे और साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त रघुवीर सहाय के इस गीत को लता मंगेशकर ने गाया और संगीतकार वनराज भाटिया ने लयबद्ध किया था।

पद्मश्री और पद्मभूषण से अलंकृत गोपाल दास 'नीरज' साहित्य जगत से फिल्मों में आए जहाँ अपना पूरा रुतबा जमाया और हिंदुस्तानी फिल्म संगीत को बेशकीमती मोती दिए और फिर शिखर पर रहते हुए ग्लैमरस फिल्मी दुनिया छोड़कर वापिस साहित्य जगत में लौट गए। फिल्म 'नई उम्र की नई फसल' में उनका गीत 'कारवाँ गुज़र गया गुबार देखते रहे' जो उन्होंने फिल्म के लिए नहीं लिखा था, बल्कि उनकी कविताओं की किताब में था, उसे अभिनेता भारत भूषण के फिल्म निर्माता भाई ने नीरज से अनुमति लेकर अपनी फिल्म में रख लिया। इस गाने को कालजयी बनाने में रोशन की संगीत रचना और मोहम्मद रफी की आवाज की भी प्रमुख भूमिका रही। बाद में जब वे फिल्मों के लिए लिखने लगे, तब भी कम-से-कम दो गीत उन्होंने अपनी पुरानी कविताओं को थोड़े फेर-बदल के साथ फिल्म संगीत में गूँथे। राज कपूर की अति महत्वाकांक्षी फिल्म 'मेरा नाम जोकर' का गाना 'ए भाई जरा देख के चलो, आगे ही नहीं पीछे भी, ऊपर भी नहीं नीचे भी' वास्तव में नीरज की एक पुरानी रचना थी जिसका शीर्षक था 'राजपथ'।

अमृतलाल नागर

अमृता प्रीतम

इसी प्रकार देव आनंद निर्देशित पहली फिल्म 'प्रेम पुजारी' (1970) का सचिनदेव बर्मन का संगीतबद्ध हमेशा जवाँ गाना याद करें 'शोखियों में घोला जाए फूलों का शबाब, उसमें फिर मिलाई जाए थोड़ी-सी शराब, होगा यूँ नशा जो तैयार वो प्यार है'। यह नीरज की एक बहुत पुरानी कविता, जिसके मुखड़े में थोड़ी-सी हेर-फेर करके गीतकार ने उसके अंतरे फिल्म की सिचुएशन के हिसाब से फिर लिखे थे। मूल कविता थी जिसके मुखड़े में शोखियों की जगह चाँदनी शब्द था। 'चांदनी में घोला जाए फूलों का शबाब, उसमें फिर मिलाई जाए थोड़ी-सी शराब, होगा यूँ नशा जो तैयार वो प्यार है, वो प्यार है, वो प्यार'।

नीरज की ही भाँति एक अन्य मंचीय कवि संतोषानंद भी साहित्य जगत के अलावा फिल्मों में भी सफल रहे। अभिनेता-निर्माता-निर्देशक मनोज कुमार ने पहली बार अपनी फिल्म 'पूरब और पश्चिम' (1970) के लिए उनका एक गीत लिया 'पुरवा सुहानी आई रे' जो खूब चला। इसे लता मंगेशकर, महेंद्र कपूर और मनहर उधास ने कल्याणजी आनंदजी की धुन पर गाया था। मनोज कुमार की ही 1972 में आई फिल्म 'शोर' में उनके गीत 'एक प्यार का नगमा है, मौजों की रवानी है, जिंदगी और कुछ भी नहीं तेरी मेरी कहानी है' ने उनको फिल्म संगीत में अमर कर दिया। इसे मुकेश ने लक्ष्मीकांत प्यारेलाल की धुन पर अपनी सोजपूर्ण आवाज से बुलंदी दी थी।

ऐसे ही राजस्थान के उदयपुर के सफल मंच कवि विश्वेश्वर शर्मा शंकर जयकिशन की धुन पर फिल्म 'संन्यासी' (1975) के लिए 'चल संन्यासी मंदिर में' लिखकर छा गए और बरसों तक फिल्म नगरी में रमे रहे।

एक अन्य कवि जिसने साहित्य, राजनीति और फिल्म तीनों में दखल दिया, वे थे बालकवि बैरागी जो ओजपूर्ण मंच कवि तो थे ही साथ ही मध्य प्रदेश शासन में मंत्री तथा

लोकसभा के सदस्य भी रहे। बैरागी का एक अनुपम गीत 'तू चंदा मैं चाँदनी, तू तरुवर मैं पात रे' सुनील दत्त की राजस्थान के रेगिस्तान की पृष्ठभूमि पर बनी फिल्म 'रेशमा और शेरा' (1975) में जयदेव के संगीत से सजकर ऐसा गूँजा कि आज भी भुलाया नहीं जा सकता। एक बार फिर राजस्थान की रेतीली धरती की पृष्ठभूमि पर बनी ख्वाजा अहमद अब्बास की फिल्म 'दो बूँद पानी' में जयदेव की धुन पर ही बैरागी का गीत 'बननी तेरी बिंदिया की लेले रे बलैयाँ' भी तो कहाँ भुलाया जा सकता है। 'तितली उड़ी' की गायिका शारदा के संगीत से सजी फिल्म 'क्षितिज' (1974) में बैरागी का गीत सुनिए जो फिल्मी गाना नहीं कविता ही लगता है। किशोर कुमार की आवाज में यह खूबसूरत गीत है 'अंधे सफर में हम भी तुम भी, जीवन की राहें लंबी, क्या तेरा क्या मेरा, माया का है फेरा, काहे को भूले धरम भी'।

साहित्य और राजनीति में दखल देने वाली राजस्थान की एक कवयित्री प्रभा ठाकुर ने भी 1974 से 2006 के बीच कई फिल्मों के लिए गीत लिखे। वे लोकसभा तथा राज्यसभा की सदस्य रहीं। शंकर जयकिशन के संगीत में फिल्म 'पापी पेट का सवाल है' के लिए प्रभा ठाकुर ने अपना ही लिखा गीत 'मोसे चटनी पिसावे, छैलो चटनी पिसावे, कैसा बेदर्दी समझे ना मेरे जी की बात' गाया भी था। उनकी कुछ प्रमुख फिल्में रहीं—'अलबेली' (1974), 'दुनियादारी' (1977), 'आत्माराम' (1979), 'घुँघरू' (1983) और 'कच्ची सड़क' (2006)।

हमारे अपने जयपुर के हिंदी और संस्कृत साहित्य के पुरोधा हरिराम आचार्य के गीत भी कुछ फिल्मों में गूँजे। सबसे पहले उनसे गीत लिखवाए विलक्षण संगीतकार जयपुर के ही दानसिंह ने फिल्म 'भूल न जाना' के लिए। मगर यह फिल्म डिब्बों में बंद रह गई और कभी रिलीज़ नहीं हुई। मगर उसके गानों के रिकार्ड बाज़ार में आए और लोगों पर छा गए। इस फिल्म में आचार्य ने दो नगमें लिखे। दिलचस्प बात यह है कि ये दोनों नगमें उर्दू में हैं। एक है गीता दत्त का गाया कालजयी गीत 'मेरे हमनशीं मेरे हमनवां, मेरे पास आ मुझे थाम ले' और दूसरा है मुकेश का गाया 'गम-ए-दिल किससे कहूँ, कोई भी गमख्वार नहीं, हैं सभी गैर यहाँ।' बाद में 1982 में संगीतकार लक्ष्मीकांत प्यारेलाल ने आचार्य के गीतों को धुनों में बाँधा फिल्म 'मेंहदी रंग लाएगी' (1982) में। आचार्य ने एक बार फिर वर्ष 2000 में दान सिंह के ही संगीत निर्देशन में जगमोहन मूँदड़ा की फिल्म 'बवंडर' के लिए गीत लिखे।

हरिवंश राय बच्चन जिनकी लंबी कविता 'मधुशाला' ने समूचे देश में धूम मचा दी थी का एक अत्यंत भावपूर्ण गीत 1977 की फिल्म 'आलाप' में लिया गया था, जिसे येशुदास ने जयदेव के संगीत निर्देशन में गाया था : 'कोई गाता मैं सो जाता, संसृति के विस्तृत सागर में, सपनों की नौका के अंदर, सुख-दुख की लहरों में उठ गिर, बहता जाता, मैं सो जाता'। हालाँकि इस कविता के नाम से एक गीत फिल्म 'सिलसिला' (1981) में भी है जिसे उनके ही अभिनेता पुत्र अमिताभ बच्चन ने आवाज दी थी। मगर वह उत्तर प्रदेश का एक लोकप्रिय लोकगीत है 'रंग बरसे भीगे चुनर वाली, रंग बरसे'।

हिंदी और डोगरी भाषा की बड़ी कवयित्री और उपन्यासकार पद्मा सचदेव जिन्हें साहित्य का बड़ा सम्मान साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है और जो पद्मश्री से भी अलंकृत हैं के कुछ गीत फिल्मों में भी आए। वर्ष 1979 की फिल्म 'आँखिन देखी' में सुलक्षणा पंडित तथा मोहम्मद रफी का गाया और जे.पी. कौशिक का संगीतबद्ध किया गीत 'सोना रे तुझे कैसे मिलूँ' आज भी जुबान पर आ जाता है।

साहित्य के क्षेत्र में ऐसे ही एक कवि थे पद्श्री से अलंकृत इंद्रजीत सिंह 'तुलसी' जिन्हें पंजाब सरकार ने 'राजकवि' की पदवी से सम्मानित किया था। उन्होंने 1972 से 1982 के बीच करीब एक दर्जन से अधिक फिल्मों के लिए गीत लिखे। राज कपूर के लिए फिल्म 'बॉबी' के लिए नरेंद्र चंचल का गाया और लक्ष्मीकांत प्यारेलाल का संगीतबद्ध किया गीत 'बेशक मंदिर-मस्जिद तोड़ो बुल्ले शाह है कहता, पर प्यार भरा दिल कभी ना तोड़ो, इसमें रब रहता' कौन भूल सकता है। वैसे तुलसी से मनोज कुमार ने सबसे पहले अपनी फिल्म 'शो' (1972) के लिए गाने लिखवाए थे—'पानी रे पानी तेरा रंग कैसा' और 'जीवन चलने का नाम, चलते रहो सुबहो शाम'।

फिल्म 'कादंबरी' (1976) में अमृता प्रीतम का एक अत्यंत ही खूबसूरत गीत हमें सुनने को मिलता है, 'अंबर की एक पाक सुराही, बादल का एक जाम उठाकर, घूँट चाँदनी पी है हमने, बात कुफर की की है हमने'। फिल्म के लिए इसे गाया था आशा भोंसले ने और संगीत से निबद्ध किया था प्रसिद्ध सितारवादक विलायत अली खान ने जिन्होंने सत्यजीत राय की बेहतरीन फिल्म 'जलसाघर' (1958) और मर्चेन्ट-आइवरी की अंग्रेजी फिल्म 'द गुरु' (1969) के लिए भी संगीत कम्पोज़ किया था। विलायत अली खान अपने समकालीन रविशंकर के पाए के सितार वादक थे और उनकी चर्चा इसलिए भी होगी कि देश के बड़े नागरिक अलंकरण पद्मश्री और पद्म विभूषण उन्हें देने की घोषणा की गई मगर उन्होंने उन्हें स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार उन्होंने संगीत नाटक अकादमी का प्रतिष्ठित पुरस्कार लेने से भी इंकार कर दिया। खान साहिब, जिन्होंने 'नाथ पिया' उपनाम से खयाल की कई बंदिशें रचीं, ने सिर्फ दो पुरस्कार स्वीकार किए। एक था आर्टिस्ट्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया का 'भारत सितार सम्राट' और दूसरा राष्ट्रपति फख़रुद्दीन अली अहमद के हाथों मिला खिताब 'आफताब-ए-सितार'।

बालकवि बैरागी

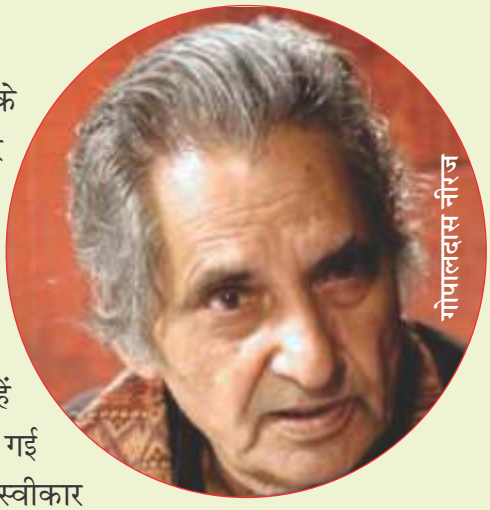
गोपालदास नीरज

राजस्थान की धोरों की धरती के अनूठे गीतकार हरीश भादानी का एक गीत—'सभी सुख दूर से गुज़रें गुज़रते ही चले जाएँ, मगर पीड़ा उम्र भर साथ चलने को उतारू है' 1976 की फिल्म 'आरंभ' में उपयोग में लिया गया, जिसे गाया था आनंद शकर के संगीत निर्देशन में दर्द भरे गीतों के बादशाह मुकेश ने।

मध्यकाल के संत कवियों और कवयित्रियों को हिंदी साहित्य जगत पूरा मान देता है। उनकी अनेकों प्रचलित रचनाओं को हिंदुस्तानी फिल्मों में भरपूर स्थान मिला है। जैसे मीरा और कबीर। इन दो संत कवियों पर तो फिल्में भी बन चुकी हैं। यहाँ हमने शैलेंद्र, भारत व्यास, राजेंद्र कृष्ण जैसे अनेकों हिंदी के कवियों को शुमार नहीं किया है क्योंकि इन सबने पूरी तरह फिल्मी गीतकार बने रहकर न केवल अपना नाम कमाया, बल्कि साहित्य जगत को भी मजबूर किया कि वह उनका नोटिस ले।

द्वारा हेमजीत मालू
हल्दिया हाउस, जौहरी बाजार, जयपुर-302003

श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' मानव संसाधन विकास मंत्री दीप प्रज्ज्वलित करते हुए।

दिनांक 10 फरवरी 2020 को श्री दिनेश के. पटनायक, महानिदेशक, भा.सां.सं.प. एवं प्रो. अलेजांद्रो गारे, पुरातत्वविद् ग्वाटेमाला से भेंट।

3 फरवरी 2020 को श्री दिनेश के. पटनायक, महानिदेशक, आईसीसीआर और प्रो. क्लॉस लारस, प्रतिष्ठित प्रोफेसर, यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ कैरोलिना यूनिवर्सिटी, चैपल हिल, यूएसए की नई दिल्ली में मुलाकात।

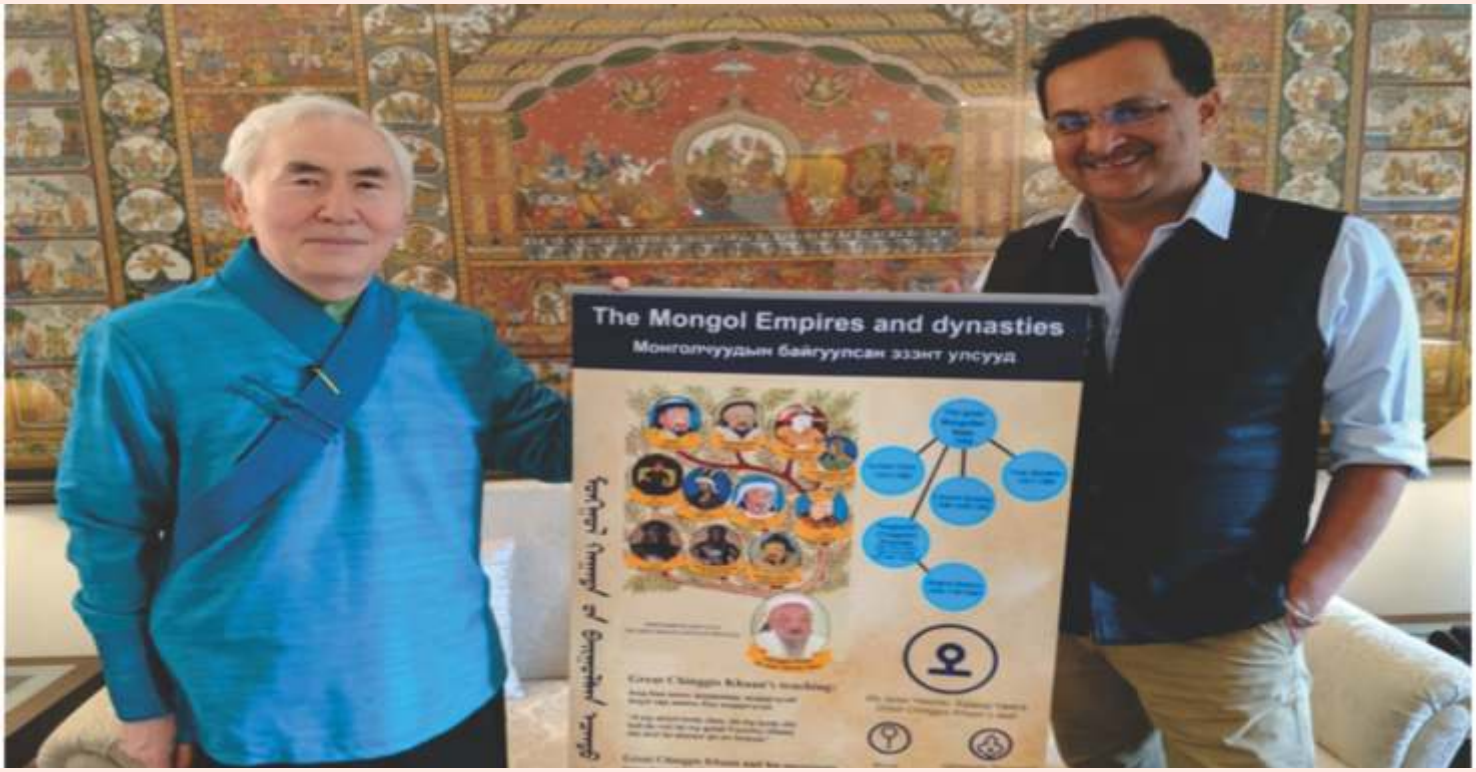

दिनांक 12 मार्च 2020 को श्री दिनेश के. पटनायक, महानिदेशक, भा.सां.सं.प. की प्रो. ओ. न्यामदव, निदेशक, भारतीय अध्ययन केंद्र एवं मंगोलिया के पूर्व राजदूत के साथ मुलाकात।

सुश्री दक्षा संजय मशरूवाला के नेतृत्व में ओडिसी समूह 'कैशिकी डांस अकादमी' ने (23 जनवरी - 5 फरवरी 2020) गणतंत्र दिवस के अवसर पर चाड (Chad) देश में नृत्य प्रदर्शन देते हुए।

सुश्री दक्षा संजय मशरूवाला के नेतृत्व में ओडिसी समूह 'कैशिकी डांस अकादमी' ने (23 जनवरी - 5 फरवरी 2020) गणतंत्र दिवस के अवसर पर री-यूनियन आइलैंड देश में नृत्य प्रदर्शन देते हुए।

सुश्री जे. योगा वंदना के नेतृत्व में वीणा समूह ने (21–28 जनवरी 2020) गणतंत्र दिवस समारोह के अवसर पर हांबांटोटा, श्रीलंका में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क			प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	`	500 (भारत)		
		US$	100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	`	1200 (भारत)		
		US$	250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%		
	पुस्तक विक्रेता		25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 42 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 2268/2272

गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

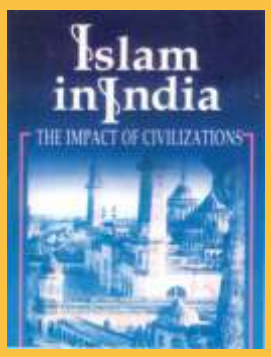

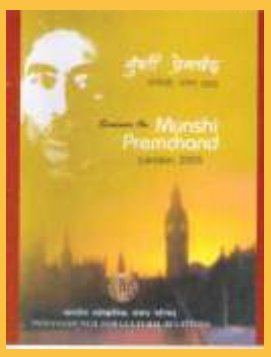

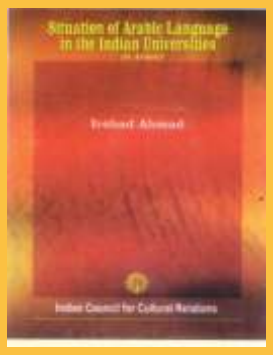

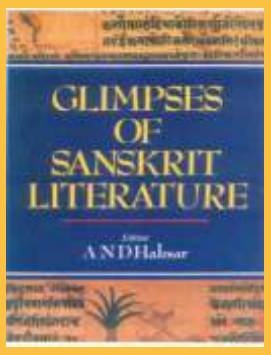

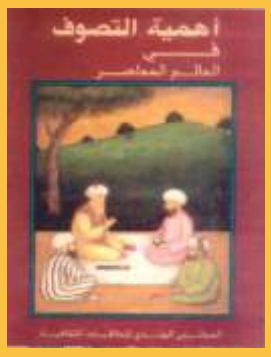

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
Qksu % 91-11-23379309, 23379310
bZ&esy % pohindi.iccr@nic.in
osclkbV % www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गायनका